CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

13.6

तत्त्वार्थसूत्र
(मोक्षशास्त्र)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाशचंद्र जी शास्त्री
... श्री स्याद्वाद महाविद्यालय, वाराणसी

वर्ग संख्या 2 / स०.89 प्राप्ति-संख्या 205

ग्रन्थ-कार्ड
श्री गणेश वर्णी दि० जैन (शोध) संस्थान
ग्रन्थागार
नरिया, वाराणसी-५

ग्रन्थ नाम मोक्षशास्त्र (तत्त्वार्थसूत्र)
लेखक उमास्वामी

लेनेवाले का नाम	देनेकी तिथि	लेनेवालेका हस्ताक्षर	लौटानेकी तिथि

सदालोचनार्थं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समालोचनार्थ
श्री गणेश वर्णी दि. जैन (शोध) संस्थान
पुस्तक सं. ......
दिनांक ...205...
नरिया (जि. वि. वि.) वाराणसी
सं. 205

श्री उमास्वामी विरचित

मोक्षशास्त्र

[तत्त्वार्थसूत्र]

सचित्र और सटीक

(पं० फूलचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्रीकृत ५६ प्रश्नोत्तर सहित)

टीकाकार—
पं० पन्नालालजी जैन 'वसन्त' साहित्याचार्य—सागर

प्रकाशक—
मूलचन्द किसनदास कापड़िया,
दिगम्बर जैन पुस्तकालय, गांधीचौक-सूरत

मुद्रक—मूलचन्द किसनदास कापड़िया,
'जैनविजय' प्रि० प्रेस, गांधीचौक-सूरत

आठवी आवृत्ति] सर्व हक स्वाधीन [वीर सं. २४९६

मूल्य रु. ४-००

समालोचनार्थ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकाशकीय निवेदन

जैनसमाजको यह बतानेकी आवश्यकता नहीं है कि मोक्ष-शास्त्र (तत्त्वार्थसूत्रजी) कितना महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। तत्त्वार्थसूत्र पर बीसों छोटी बड़ी टीकाएँ हुई हैं, और इसीके आधार पर कई ग्रंथ लिखे गये हैं—सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक, अर्थप्रकाशिका आदि ग्रन्थ इसकी टीकाएं हैं। इस मोक्षशास्त्रको बालकोंसे लेकर महा पंडित तक पढ़ते हैं। बहुत समयसे इसकी बालकोपयोगी टीकाकी आवश्यकता थी। अतः सर्वप्रथम स्व० पं० पन्नालालजी बाकलीवालने इसकी बालबोधिनी टीका की। इसके बाद भी १-२ टीकाएं प्रगट हुईं, मगर वे बहुत अपूर्ण थीं।

इसलिये हमारे अनुरोधसे साहित्याचार्य पं० पन्नालालजी जैन 'बसन्त' सागरने यह सुबोध सरल एवं सर्वांग-सुन्दर टीका तैयार की। यह टीका इतनी उत्तम सिद्ध हुई है कि अल्प समयमें ही इसकी सात आवृत्तियां समाप्त हो गईं। अतः इस अपार मंहगाईमें भी हम इसकी आठवीं आवृत्ति प्रकट कर रहे हैं।

तीसरी आवृत्तिसे इसमें श्री. पं० फूलचंदजी जैन सिद्धांतशास्त्री वाराणसीकृत ५६ प्रश्नोत्तर जोड़ दिये गये थे जो इस आवृत्तिमें भी प्रकट किये गये हैं, जिससे छात्रों व स्वाध्यायप्रेमियोंको तत्त्वार्थसूत्रके गहन विषयोंका ज्ञान हो सकेगा।

चित्र, नक्शे, चार्ट, नोट, प्रश्नोत्तर, तत्त्वार्थसूत्र मूल, लक्षण-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संग्रह, विषयसूची, तीन परीक्षाओंके प्रश्नपत्र आदिसे यह आठवीं आवृत्ति ऐसी सर्वांग सुन्दर बनाई गई है कि यह ग्रन्थ छात्रोंके समझनेमें बहुत सुलभ हो जायगा और इन्हें ध्यानसे समझनेवाले छात्र कभी अनुत्तीर्ण नहीं हो सकेंगे।

इस ग्रन्थके विद्वान टीकाकार श्री० पं० पन्नालालजी साहित्याचार्य जैन "वसंत" सागर तथा प्रश्नोत्तर तैयार करनेवाले श्री० पं० फूलचन्दजी जैन सिद्धान्तशास्त्री बनारसने इसके संकलनमें जो अनथक परिश्रम किया है उसके लिये हम तथा जैन समाज आपकी चिरकाल तक अत्यन्त आभारी रहेगी। हर्ष है कि अब तो सभी दिगम्बर जैन शिक्षा-संस्थाओंमें यही टीका चालू हो गई है।

वीर सं० २४९६
श्रावण सुदी ३
सूरत
ता० ५-८-७०

निवेदक—
मूलचन्द किसनदास कापड़िया,
—प्रकाशक।

२०५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुवादकके दो शब्द

"तत्वार्थसूत्र" जैनागमका अत्यन्त प्रसिद्ध शास्त्र है। इसकी रचनाशैलीने तात्कालिक तथा उसके बादके समस्त विद्वानोंको अपनी ओर आकृष्ट किया है। यही कारण है कि उसके ऊपर पूज्यपाद, अकलंकस्वामी तथा विद्यानन्द आदि आचार्योंने महाभाष्य रचे हैं। तत्वार्थसूत्र जिस तरह दिगम्बर आम्नायमें सर्वमान्य है उसी तरह श्वेताम्बर आम्नायमें भी सर्वमान्य है।

इस ग्रन्थमें आचार्य उमास्वामीने पथभ्रांत संसारी पुरुषोंको मोक्षका सच्चा मार्ग बतलाया है—"सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः" अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, और सम्यक्चारित्र इन तीनोंकी एकता ही मोक्षका मार्ग है। मोक्षमार्गका प्ररूपण होनेके कारण ही इसका दूसरा नाम 'मोक्षशास्त्र' भी प्रचलित हो गया है। मोक्षमार्ग—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका इस ग्रन्थमें विशद विवेचन किया गया है।

प्रथम अध्यायमें सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानका विवेचन है।

दूसरे अध्यायमें सम्यग्दर्शनके विषयभूत जीवतत्त्वके असाधारण भाव, लक्षण, इन्द्रियां, योनि, जन्म तथा शरीरादिका वर्णन है।

तीसरे अध्यायमें जीवतत्त्वका निवासस्थान बतलानेके लिये नरकलोक, और मध्यलोकका सुन्दर प्ररूपण है।

चतुर्थ अध्यायमें ऊर्ध्वलोक तथा चार प्रकारके देवोंके निवासस्थान, भेद, आयु, शरीर आदिका वर्णन किया गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पाँचवें अध्यायमें अजीव तत्त्वका सुन्दर निरूपण है।

छठवें अध्यायमें आस्रवका वर्णन करते हुए आठों कर्मोंके आस्रवके कारण बतलाये हैं जो सर्वथा मौलिक हैं।

सातवें अध्यायमें शुभास्रवका वर्णन करनेके लिए सर्वप्रथम व्रतसामान्यका स्वरूप बतलाकर श्रावकाचारका स्पष्ट वर्णन किया गया है।

आठवें अध्यायमें बन्धतत्त्वके प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश नामक भेदोंका रोचक व्याख्यान है।

नवमें अध्यायमें संवर और निर्जरा तत्त्वका वर्णन है। इन दोनों तत्त्वोंका वर्णन अपने ढंगका निराला ही है। और दशवें अध्यायमें मोक्षतत्त्वका सरल संक्षिप्त विवेचन किया गया है।

संक्षेपमें इस ग्रन्थमें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र तथा उनके विषयभूत जीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्षतत्त्वका वर्णन है।

अभीतक जैन सम्प्रदायमें धर्मशास्त्रके जितने ग्रन्थ देखनेमें आये हैं उन सबमें तत्त्वोंका निरूपण दो रीतियोंसे किया गया है। एक रीति तो वह है जिसे आचार्य श्री उमास्वामीने प्रचलित किया है और दूसरी रीति वह है जिसे आचार्य नेमिचन्द्राचार्यने षट्खण्डसिद्धांतके आधारपर गोम्मटसारमें जीव प्ररूपणाओंका वर्णन करते हुए प्रचलित किया है। तत्त्वनिरूपणकी दोनों रीतियां उत्तम हैं, अपनेर ढङ्गकी अनुपम हैं इसमें संदेह नहीं, परन्तु आचार्य उमास्वामी द्वारा प्रचलित हुयी रीतिको उनके बादके विद्वानोंने जितना अपनाया है—अपनी रचनाओंमें उस रीतिको स्थान दिया है उतना दूसरी रीतिको नहीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गोम्मटसारकी शैलीका गोम्मटसार ही है अथवा उसका मूलभूत धवलसिद्धांत, परन्तु उमास्वामीकी शैलीसे तत्त्वप्रतिपादन करनेवाले अनेक ग्रन्थ हैं।

पूज्यपाद, अकलंक, विद्यानन्द तो उनके व्याख्याकार-भाष्यकार ही कहलाये, परन्तु अमृतचन्द्रसूरी, अमितगत्याचार्य, जिनसेन आदिने भी अपने ग्रन्थोंमें उसी पद्धतिको अपनाया है। अस्तु, इन सब बातोंसे प्रकृत ग्रन्थ और आचार्य उमास्वामीका गौरव अत्यन्त बढ़ गया है।

मोक्षशास्त्र-तत्त्वार्थसूत्रके ऊपर अनेक टीकायें प्रकाशित हो चुकी हैं, जो एकसे एक उत्तम हैं। परन्तु फिर भी छात्रोंको कई विषय समझनेमें कठिनाई पड़ती थी अतः उनकी कठिनाईयोंको कुछ अंशोंमें दूर करनेके लिए मैंने यह प्रयत्न किया है।

पुस्तकको टिप्पणी, नोट, चार्ट, नकशा तथा आवश्यक भावार्थ वगैरहसे सरल और रोचक बनानेका उद्योग किया गया है। साथमें पं० फूलचन्द्रजी सिद्धांतशास्त्री बनारस द्वारा लिखित परिशिष्ट भी संयुक्त कर दिया है जिससे स्वाध्याय-प्रेमी सज्जन भी यथोचित लाभ उठा सकते हैं।

अल्पकालमें ही आठवीं आवृत्ति निकालनेका जो अवसर प्राप्त हुआ है उससे हमारे पाठकोंका आचार्यश्री उमास्वामी और उनके इस अनुपम ग्रंथरत्नपर स्वाभाविक प्रेम प्रकट होता है। यदि छात्रोंको कुछ अंशोंमें लाभ हुआ तो मैं अपने परिश्रमको सफल समझूँगा।

एक बात और है वह यह कि इस ग्रन्थका प्रचार देख कुछ लोगोंने इसमेंसे कितने ही अंश ले-लेकर अपनी पुस्तकोंमें आत्म-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सात् कर लिये हैं और उसपर कुछ उल्लेख भी नहीं किया है जो ठीक नहीं है। विद्वानोंमें इतनी कृतज्ञता तो चाहिये ही।

प्रमाद एवं अज्ञानसे अनेक त्रुटियोंका रह जाना सम्भव है अतः विद्वद्गण मुझे क्षमा करते हुए सौहार्दभावसे उन त्रुटियोंसे सूचित करनेकी कृपा करें, जिससे आगामी संस्करणमें वे त्रुटियां न रह सकें।

वर्णी भवन, सागर
वीर सं० २४९६
श्रावण सुदी १२

विनीत—
पन्नालाल जैन।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय-सूची

विषय	अध्याय	सूत्र
मोक्षकी प्राप्तिका उपाय	१	१
सम्यग्दर्शनका लक्षण	१	२
सम्यग्दर्शनके भेद	१	३
सात तत्त्व	१	४
चार निक्षेप	१	५
सम्यग्दर्शन आदिके— जाननेके उपाय	१ से	६-७-८
सम्यग्दर्शनके भेद व नाम	१	९
प्रमाणका स्वरूप	१	१०
परोक्ष प्रमाण	१	११
प्रत्यक्ष प्रमाण	१	१२
मतिज्ञानके दूसरे नाम	१	१३
मतिज्ञानकी उत्पत्ति. कारण व स्वरूप	१	१४
मतिज्ञानके भेद	१	१५
अवग्रहके विषयभूत पदार्थ	१	१६
बहुआदि पदार्थके भेद	१	१७
अवग्रहमें विशेषता	१	१८–१९
श्रुतज्ञानकी उत्पत्ति, भेद	१	२०
भवप्रत्यय अवधिज्ञानके स्वामी	१	२१
क्षयोपशम निमित्तक अवधिज्ञानके भेद	१	२२
मनःपर्यय ज्ञानके भेद	१	२३
ऋजुमति और विपुलमतिमें विशेषता	१	२४
अवधि और मनःपर्यय ज्ञानमें विशेषता	१	२५
मतिश्रुतज्ञानका विषय	१	२६
अवधिज्ञानका विषय	१	२७
मनःपर्यय ज्ञानका विषय	१	२८
केवलज्ञानका विषय	१	२९
एकसाथ कितने ज्ञान हो सकते हैं ?	१	३०
मति श्रुत और अवधिज्ञानमें मिथ्यापन	१	३१
मिथ्यादृष्टिका ज्ञान मिथ्याज्ञान है	१	३२
नयोंके भेद	१	३३
प्रश्नावली प्रथम अध्याय।		
जीवके असाधारण भाव	२	१
औपशमिकादि भावोंके भेदोंकी गणना	२	२
औपशमिक भावके भेद	२	३
क्षायिक भावके भेद	२	४
क्षायोपशमिकके भेद	२	५
औदयिक भावके भेद	२	६
पारिणामिक भावके भेद	२	७
जीवका लक्षण	२	८
उपयोगके भेद	२	९
जीवके भेद	२	१०
संसारी जीवोंके भेद	२	११

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय	अध्याय	सूत्र
संसारी जीवोंके भेद	२	१२
स्थावर जीवोंके भेद	२	१३
त्रस जीवोंके भेद	२	१४
इन्द्रियोंकी गणना	२	१५
इन्द्रियोंके मूल भेद	२	१६
द्रव्येन्द्रियका स्वरूप	२	१७
भावेन्द्रियका स्वरूप	२	१८
पांच इन्द्रियोंके नाम	२	१९
पांच इन्द्रियोंके विषय	२	२०
मनका विषय	२	२१
इन्द्रियोंके स्वामी	२	२२–२३
समनस्क परिभाषा	२	२४
विग्रहगतिका वर्णन	२	२५–३०
जन्मके भेद	२	३१
योनियोंके भेद	२	३२
गर्भ जन्मके स्वामी	२	३३
उपपाद जन्मके स्वामी	२	३४
समूर्च्छन जन्मके स्वामी	२	३५
शरीरके नाम व भेद	२	३६
शरीरोंका वर्णन	२	३७–४४
औदारिक शरीरका लक्षण	२	४५
वैक्रियिकका लक्षण	२	४६–४७
तैजस शरीर भी ऋद्धि निमित्तक होता है	२	४८
आहारक शरीरका लक्षण	२	४९
लिङ्गके स्वामी	२	५०–५२
अकाल मृत्यु किनकी नहीं होती	२	५३

प्रश्नावली द्वितीय अध्याय।

विषय	अध्याय	सूत्र
सात नरक	३	१
नरकोंमें बिलोंकी संख्या	३	२
नारकियोंके दुःख	३	३–५
नारकियोंकी आयु	३	६
कुछ द्वीप समुद्रोंके नाम	३	७
द्वीप और समुद्रोंके विस्तार और आकाश	३	८
जम्बूद्वीपका विस्तार	३	९
सात क्षेत्रोंके नाम	३	१०
कुलाचलोंके नाम	३	११
कुलाचलोंका वर्णन	३	१२
कुलाचलोंका आकार	३	१३
सरोवरोंका वर्णन	३	१४
प्रथम सरोवरका नाम	३	१५
प्रथम सरोवरकी गहराई	३	१६
प्रथम सरोवरके कमल	३	१७
महापद्म आदि सरोवर तथा उनमें रहनेवाले कमलोंका वर्णन	३	१८
कमलोंकी देवियां	३	१९
चौदह महानदियोंके नाम	३	२०
नदियोंके बहनेका क्रम		२१–२२
सहायक नदियां	३	२३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय	अध्याय	सूत्र
भरतक्षेत्रका विस्तार	३	२४
आगेके क्षेत्र और पर्वतोंका विस्तार	३	२५
विदेह क्षेत्रके आगेके पर्वत और क्षेत्रोंका विस्तार	३	२६
भरत ऐरावत क्षेत्रमें कालका परिवर्तन	३	२७
अन्य भूमि व्यवस्था	३	२८
हैमवतक आदि क्षेत्रोंमें आयुकी व्यवस्था	३	२९
हैरण्यवतक आदि क्षेत्रोंमें आयुकी व्यवस्था	३	३०
विदेह क्षेत्रमें आयु	३	३१
भरतक्षेत्रका विस्तार	३	३२
धातकीखण्डका वर्णन	३	३३
पुष्करार्धका वर्णन	३	३४
मनुष्य क्षेत्र	३	३५
मनुष्योंके भेद	३	३६
कर्मभूमिका वर्णन	३	३७
मनुष्योंकी उत्कृष्ट और जघन्य स्थिति	३	३८
तिर्यञ्चोंकी उत्कृष्ट स्थिति	३	३९
प्रश्नावली तृतीय अध्याय।		
देवोंके भेद	४	१
भवनत्रिक देवोंमें लेश्याका विभाग	४	२
चार निकायोंके प्रभेद	४	३
देवोंमें सामान्य भेद	४	४-५
देवोंके इन्द्रोंकी व्यवस्था	४	६
देवोंमें स्त्री सुखका वर्णन	४	७-९
भवनवासीके १० भेद	४	१०
व्यन्तर देवोंके ८ भेद	४	११
ज्योतिषी ,, ५ भेद	४	१२
ज्योतिषी देवोंका वर्णन		१३-१५
वैमानिक देवोंका वर्णन	४	१६
वैमानिक देवोंके भेद	४	१७
कल्पोंका स्थितिक्रम	४	१८
स्वर्ग आदिके नाम	४	१९
ग्रैवेयक और अनुदिश	४	१९ टि०
वैमानिक देवोंमें उत्तरोत्तर अधिकता	४	२०
वैमानिक देवोंमें उत्तरोत्तर हीनता	४	२१
वैमानिक देवोंमें लेश्याका वर्णन	४	२२
कल्पसंज्ञा कहांतक ?	४	२३
लौकांतिक देवोंका निवास और नाम	४	२४-२५
अनुदित तथा अनुत्तरवासी देवोंके नियम	४	२६
तिर्यंच कौन हैं ?	४	२७
भवनवासी देवोंकी उत्कृष्ट आयु	४	२८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय	अध्याय	सूत्र
वैमानिक देवोंकी आयु	४	२९-३२
स्वर्गोंमें जघन्य आयु	४	३३-३४
नारकियोंकी आयु	४	३५-३६
भवनवासियोंकी आयु	४	३७
व्यन्तरोंकी जघन्य ,,	४	३८
व्यन्तरोंकी उत्कृष्ट ,,	४	३९
ज्योतिषियोंकी उ० ,,	४	४०
,, जघन्य ,,	४	४१
लौकांतिक देवोंकी ,,	४	४२
प्रश्नावली चतुर्थ अध्याय।		
अजीवास्तिकाय	५	१
द्रव्योंकी गणना	५	२-३-३९
द्रव्योंकी विशेषता	५	४-७
द्रव्योंके प्रदेश वर्णन	५	८-११
द्रव्योंके स्थान	५	१२-१६
द्रव्योंके उपकार वर्णन		१७-२२
पुद्गलका लक्षण	५	२३
पुद्गलकी पर्याय	५	२४
पुद्गलके भेद	५	२५
स्कन्धोंकी उत्पत्तिके कारण	५	२६-२८
द्रव्यका लक्षण	५	२९
सत्का लक्षण	५	३०
नित्यका लक्षण	५	३१
एक ही द्रव्यमें विरुद्ध धर्मोंका संबंध	५	३२

विषय	अध्याय	सूत्र
परमाणुओंमें बन्ध	५	३३-३७
द्रव्यका प्रकारांतरसे लक्षण	५	३८
कालद्रव्यका वर्णन	५	३९-४०
गुणका लक्षण	५	४१
पर्यायका लक्षण	५	४२
प्रश्नावली पञ्चम अध्याय।		
योगके भेद व स्वरूप	६	१
आस्रवका स्वरूप	६	२
आस्रवके भेद	६	३
स्वामीकी अपेक्षा आस्रवके भेद	६	४
साम्परायिक आस्रवके भेद	६	५
आस्रवकी विशेषता	६	६
अधिकरणके भेद	६	७
जीवाधिकरणके भेद	६	८
अजीवाधिकरणके भेद	६	९
ज्ञानावरण और दर्शनावरणके आस्रव	६	१०
असातावेदनीयके ,,	६	११
सातावेदनीयके ,,	६	१२
दर्शनमोहनीयके ,,	६	१३
चारित्रमोहनीयके ,,	६	१४
नरक आयुका आस्रव	६	१५
तिर्यंच आयुका आस्रव	६	१६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय	अध्याय	सूत्र
मनुष्य आयुका आस्रव	६	१७–१८
सब आयुओंका सामान्य आस्रव	६	१९
देव आयुका आस्रव	६	२०–२१
अशुभनामकर्मका आस्रव	६	२२
शुभ नामकर्मका ,,	६	२३
तीर्थङ्कर नामकर्मका ,,	६	२४
नीचगोत्रका आस्रव	६	२५
उच्चगोत्रका आस्रव	६	२६
अन्तरायका आस्रव	६	२७
प्रश्नावली षष्ठ अध्याय ।		
व्रतका लक्षण	७	१
व्रतके भेद	७	२
व्रतोंकी स्थिति	७	३
अहिंसाव्रतकी पांच भावनाएं	७	४
सत्य व्रतकी ,,	७	५
अचौर्य व्रतकी ,,	७	६
ब्रह्मचर्य व्रतकी ,,	७	७
परिग्रह त्यागकी ,,	७	८
हिंसादि पांच पापोंके विषयमें विचार	७	९–१०
निरन्तर चिन्तवन करने-योग्य भावनाएं	७	११
संसार और शरीरके स्वरूपका विचार	७	१२

विषय	अध्याय	सूत्र
हिंसा पापका लक्षण	७	१३
झूठ पापका लक्षण	७	१४
चोरी पापका लक्षण	७	१५
कुशीलका लक्षण	७	१६
परिग्रहका लक्षण	७	१७
व्रतोंकी विशेषता	७	१८
व्रतोंके भेद लक्षण	७	१९
अगारीका लक्षण	७	२०
सात शीलव्रत	७	२१
सल्लेखनाका उपदेश	७	२२
सम्यग्दर्शनके अतिचार	७	२३
पांचव्रत और सात शीलोंके अतिचारोंकी संख्या	७	२४
अहिंसाणुव्रतके अतिचार	७	२५
सत्याणुव्रतके अतिचार	७	२६
अचौर्याणुव्रतके ,,	७	२७
ब्रह्मचर्याणुव्रतके ,,	७	२८
परिग्रहपरिमाणाणु-व्रतके अतिचार	७	२९
दिग्व्रतके अतिचार	७	३०
देशव्रतके अतिचार	७	३१
अनर्थदंड व्रत ,,	७	३२
सामायिक शिक्षाव्रतके अतिचार	७	३३
प्रोषधोपवास अतिचार	७	३४
उपभोगपरिभोगपरिमाण व्रतके अतिचार	७	३५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय	अध्याय	सूत्र
अतिथिसंविभाग ,,	७	३६
सल्लेखना अतिचार	७	३७
दानका लक्षण	७	३८
दानकी विशेषता	७	३९

प्रश्नावली सप्तम अध्याय।

विषय	अध्याय	सूत्र
बन्धके कारण	८	१
बन्धका स्वरूप	८	२
बन्धके भेद	८	३
प्रकृति बंधके मूलभेद	८	४
प्रकृति बंधके उत्तरभेद	८	५
ज्ञानावरणके पांच भेद	८	६
दर्शनावरणके ९ भेद	८	७
वेदनीयके २ भेद	८	८
मोहनीयके २८ भेद	८	९
आयुकर्मके ४ भेद	८	१०
नामकर्मके ४२ भेद	८	११
गोत्रकर्मके २ भेद	८	१२
अन्तरायके ५ भेद	८	१३
ज्ञाना०, दर्शना०, वेदनीय अन्तरायकी स्थिति	८	१४
मोहनीय ,,	८	१४
नाम और गोत्रकी ,,	८	१५
आयु कर्मकी ,,	८	१६
वेदनीयकी जघन्य ,,	८	१७
नाम और गोत्रकी जघन्य स्थिति	८	१९
शेष कर्मोंकी स्थिति	८	२०
अनुभव बंधका लक्षण	८	२१-२२
फलके बाद निर्जरा	८	२३
प्रदेशबंध	८	२४
पुण्यप्रकृतियां	८	२५
पापप्रकृतियां	८	२६

प्रश्नावली अष्टम अध्याय।

विषय	अध्याय	सूत्र
संवरका लक्षण	९	१
संवरके कारण	९	२-३
गुप्तिका लक्षण	९	४
समितिके भेद	९	५
धर्मके भेद	९	६
अनुप्रेक्षाओंके भेद	९	७
परिषह सहन उपदेश	९	८
बाईस परिषह	९	९
गुणस्थानोंकी अपेक्षा परिषहोंका वर्णन	९	१०-१२
परिषहोंमें निमित्त	९	१३-१६
एकसाथ होनेवाले परिषहोंकी संख्या	९	१७
पांच चारित्र	९	१८
बाह्य तपके भेद	९	१९
अन्तरंग तपके भेद	९	२०
अन्तरंग तपके उत्तरभेद	९	२२
प्रायश्चित्तके ९ भेद	९	२२
विनयके ४ भेद	९	[illegible]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय	अध्याय	सूत्र
वैयावृत्त्यके १० भेद	९	२४
स्वाध्यायके ५ भेद	९	२५
व्युत्सर्ग तपके २ भेद	९	२६
ध्यानका लक्षण	९	२७
ध्यानके भेद	९	२८
ध्यानका फल	९	२९
आर्तध्यानके ४ भेद	९	३०-३३
आर्तध्यानके स्वामी	९	३४
रौद्रध्यानके भेद	९	३५
धर्म्यध्यानका स्वरूप	९	३६
शुक्लध्यानका वर्णन	९	३७-४४
पात्रकी अपेक्षा निर्जरामें न्यूनाधिकता	९	४५
निर्ग्रंथ साधुओंके भेद	९	४६
पुलाकादिकी विशेषता	९	४७

प्रश्नावली नवम अध्याय।

विषय	अध्याय	सूत्र
केवलज्ञानकी उत्पत्तिका कारण	१०	१
मोक्षका लक्षण	१०	२
मोक्षमें कर्मोंके सिवाय किसका अभाव	१०	३-४
कर्मोंका क्षय होनेके बाद ऊर्ध्वगमन	१०	५
ऊर्ध्वगमनके कारण	१०	६
उक्त चारों कारणोंके क्रमसे दृष्टांत	१०	७
लोकाग्रके आगे नहीं जानेमें कारण	१०	८
मुक्त जीवोंमें भेद	१०	८
अन्तिम श्लोक		पृष्ठ २०४

प्रश्नावली दशम अध्याय।

शंका-समाधान		पृ० २०५
लक्षणसंग्रह		पृ० २५५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री ... संस्थान
पुस्तक सं. ....
दिनांक..............
(का. हिं. वि.) वाराणसी

मोक्षशास्त्रके कर्ता श्री उमास्वामीका संक्षिप्त जीवनचरित्र

आचार्यप्रवर श्री उमास्वामीका नाम 'तत्त्वार्थसूत्र' नामक ग्रन्थके कारण अजर अमर है। यह ग्रन्थ जैनोंकी 'बाईबल' है। और खूबी यह है कि संस्कृत भाषामें सबसे पहला यही ग्रन्थ है। सचमुच आचार्य उमास्वामीजीने ही जैन सिद्धांतको प्राकृतसे संस्कृत भाषामें प्रगट करनेका श्रीगणेश किया था और फिर तो इस भाषामें अनेकानेक जैनाचार्योंने ग्रंथ रचना की।

श्री उमास्वामीकी मान्यता जैनोंके दोनों सम्प्रदायों–दिगंबर और श्वेतांबरोंमें समान रूपसे है। और उनका 'तत्त्वार्थसूत्र' ग्रन्थ भी दोनों सम्प्रदायोंमें श्रद्धाकी दृष्टिसे देखा जाता है।

किन्तु ऐसे प्रख्यात आचार्यके जीवनकी घटनाओंका ठीक हाल ज्ञात नहीं है। श्वेताम्बरीय शास्त्रोंसे यह जरूर विदित है कि न्यग्रोधिका नामक नगरीमें उमास्वातिका जन्म हुआ था। उनके पिताका नाम स्वाति और माताका नाम वात्सी था। वह कौभीषणी गोत्रके थे; जिससे उनका ब्राह्मण या क्षत्री होना प्रगट है। उनके दीक्षागुरु ग्यारह अङ्गके धारक घोषनन्दि श्रमण थे और विद्याग्रहणकी दृष्टिसे उनके गुरु मूल नामक वाचकाचार्य थे। उमास्वाति भी वाचक कहलाते थे और उन्होंने 'तत्त्वार्थसूत्र' की रचना कुसुमपुर नामक नगरीमें की थी।

दिगम्बर शास्त्रोंमें उनके गृहस्थ जीवनका कुछ भी पता नहीं चलता है। साधु रूपमें वह श्री कुन्दकुन्दाचार्यके पट्टशिष्य बताये गये हैं और श्री 'तत्त्वार्थसूत्र' की रचनाके विषयमें कहा गया है कि सौराष्ट्र देशके मध्य ऊर्जयन्तगिरिके निकट गिरनार नामके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पत्तनमें आसन्न भव्य, स्वहितार्थी, द्विजकुलोत्पन्न श्वेतांबर भक्त "सिद्धय्य" नामक एक विद्वान श्वेतांबर मतके अनुकूल शास्त्र जाननेवाला था उसने 'दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः' यह एक सूत्र बनाया और उसे एक पाटियेपर लिख छोड़ा। एक समय चर्यार्थ श्री गृद्धपिच्छाचार्य 'उमास्वामी' नामके धारक मुनिवर आये और उन्होंने आहार लेनेके पश्चात् पाटियेको देखकर उसमें "सम्यक्" शब्द जोड़ दिया।

जब वह सिद्धय्य विद्वान् वहांसे अपने घर आया और उसने प्रसन्न होकर अपनी मातासे पूछा कि, किन महानुभावने यह शब्द लिखा है? माताने उत्तर दिया कि एक महानुभाव निर्ग्रन्थाचार्यने यह बनाया है। इसपर वह गिरि और अरण्यको ढूँढता हुआ उनके आश्रममें पहुँचा और भक्तिभावसे नम्रभूत होकर उक्त मुनिमहाराजसे पूछने लगा कि आत्माका हित क्या है? मुनिराजने कहा—आत्माका हित 'मोक्ष' है। इसपर मोक्षका स्वरूप और उसकी प्राप्तिका उपाय पूछा गया, जिसके उत्तररूपमें ही इस ग्रन्थका अवतार हुआ है। इसी कारण इस ग्रंथका अपर नाम "मोक्षशास्त्र" भी है। कैसा अच्छा वह समय था, जब दिगम्बर और श्वेतांबर आपसमें प्रेमसे रहते हुए धर्मप्रभावनाके कार्य कर रहे थे। श्वेतांबर उपासक सिद्धय्यके लिए एक निर्ग्रन्थाचार्यका शास्त्ररचना करना इसी वात्सल्यभावका द्योतक है। यह निर्ग्रन्थाचार्य उमास्वामी ही थे। धर्म और उसके लिये उनने क्या क्या किया यह कुछ ज्ञात नहीं होता। इस कारण इन महान् आचार्यके विषयमें इस संक्षिप्त वृत्तांतसे ही सन्तोष धारण करना पड़ता है। दिगंबर सम्प्रदायमें वह श्रुतिमधुर 'उमास्वामी' और श्वेतांबर सम्प्रदायमें वह 'उमास्वाति' के नामसे प्रसिद्ध हैं।—बाबू कामताप्रसादजी कृत 'वीर पाठावलि' से।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मोक्षशास्त्र [तत्त्वार्थसूत्र] मूल

मोक्षमार्गस्य नेतारं, भेत्तारं कर्मभूभृताम् ।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां, वन्दे तद्गुणलब्धये ॥

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ॥ १ ॥ तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ॥२॥ तन्निसर्गादधिगमाद्वा ॥३॥ जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम् ॥४॥ नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यासः ॥५ प्रमाणनयैरधिगमः ॥ ६ ॥ निर्देशस्वामित्वसाधनाऽधिकरणस्थितिविधानतः ॥ ७ ॥ सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शनकालान्तरभावाल्पबहुत्वैश्च ॥८॥ मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि ज्ञानम् ॥९॥ तत्प्रमाणे ॥१०॥ आद्ये परोक्षम् ॥११॥ प्रत्यक्षमन्यत् ॥१२॥ मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताऽभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम् ॥१३॥ तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम् ॥१४॥ अवग्रहेहाऽवायधारणाः ॥ १५ ॥ बहुबहुविधक्षिप्राऽनिःसृताऽनुक्तध्रुवाणां सेतराणाम् ॥१६॥ अर्थस्य ॥१७॥ व्यञ्जनस्यावग्रहः ॥१८॥ न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम् ॥ १९ ॥ श्रुतं मतिपूर्वं द्व्यनेकद्वादशभेदम् ॥२०॥ भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणाम् ॥२१॥ क्षयोपशमनिमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम् ॥२२॥ ऋजुविपुलमती मनःपर्ययः ॥२३॥ विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः ॥२४॥ विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्योऽवधिमनःपर्यययोः ॥२५॥ मतिश्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्वसर्वपर्यायेषु ॥२६॥ रूपिष्ववधेः ॥२७॥ तदनन्तभागे मनःपर्ययस्य ॥२८॥ सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य ॥ २९ ॥ एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥३०॥ मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च ॥ ३१ ॥ सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ॥ ३२ ॥ नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दसमभिरूढैवंभूता नयाः ॥ ३३ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिक-पारिणामिकौ च ॥ १ ॥ द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमम् ॥ २ ॥ सम्यक्त्वचारित्रे ॥ ३ ॥ ज्ञानदर्शनलाभभोगोपभोगवीर्याणि च ॥४॥ ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रित्रिपञ्चभेदाः सम्यक्त्वचारित्र-संयमासंयमाश्च ॥५॥ गतिकषायलिङ्गमिथ्यादर्शनाऽज्ञानाऽसंयताऽसिद्ध-लेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्येकैकैकैकषड्भेदाः ॥ ६ ॥ जीवभव्याऽभव्यत्वानि च ॥ ७ ॥ उपयोगो लक्षणम् ॥ ८ ॥ स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः ॥९॥ संसारिणो मुक्ताश्च ॥१०॥ समनस्काऽमनस्काः ॥११॥ संसारिण-स्त्रसस्थावराः ॥१२॥ पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः ॥ १३ ॥ द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः ॥१४॥ पञ्चेन्द्रियाणि ॥१५॥ द्विविधानि ॥१६॥ निर्वृत्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम् ॥१७॥ लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम् ॥१८॥ स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि ॥१९॥ स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दा-स्तदर्थाः ॥ २० ॥ श्रुतमनिन्द्रियस्य ॥ २१ ॥ वनस्पत्यन्तानामेकम् ॥ २२ ॥ कृमिपिपीलिकाभ्रमरमनुष्यादीनामेकैकवृद्धानि ॥ २३ ॥ संज्ञिनः समनस्काः ॥ २४ ॥ विग्रहगतौ कर्मयोगः ॥ २५ ॥ अनुश्रेणि गतिः ॥ २६ ॥ अविग्रहा जीवस्य ॥ २७ ॥ विग्रहवती च संसारिणः प्राक्चतुर्भ्यः ॥२८॥ एकसमयाऽविग्रहा ॥२९॥ एकं द्वौ त्रीन्वाऽनाहारकः ॥३०॥ सम्मूर्च्छनगर्भोपपादा जन्म ॥३१॥ सचित्तशीतसंवृत्ताः सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः ॥३२॥ जरायुजाण्ड-जपोतानां गर्भः ॥ ३३ ॥ देवनारकाणामुपपादः ॥ ३४ ॥ शेषाणां सम्मूर्च्छनम् ॥३५॥ औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणानि शरी-राणि ॥३६॥ परं परं सूक्ष्मम् ॥३७॥ प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक् तैजसात् ॥३८॥ अनन्तगुणे परे ॥३९॥ अप्रतीघाते ॥४०॥ अनादि-सम्बन्धे च ॥४१॥ सर्वस्य ॥४२॥ तदादीनि भाज्यानि युगपदेक-स्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥४३॥ निरुपभोगमन्त्यम् ॥४४॥ गर्भसम्मूर्छनजमाद्यम् ॥४५॥ औपपादिकं वैक्रियिकम् ॥ ४६ ॥ लब्धिप्रत्ययं च ॥ ४७ ॥ तैजसमपि ॥४८॥ शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

॥ ४९ ॥ नारकसम्मूर्च्छिनो नपुंसकानि ॥५०॥ न देवाः ॥५१॥ शेषास्त्रिवेदाः ॥५२॥ औपपादिकचरमोत्तमदेहाऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः ॥ ५३ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

रत्नशर्करावालुकापङ्कधूमतमोमहातमःप्रभाभूमयो घनाम्बुवाताकाशप्रतिष्ठाः सप्ताधोऽधः ॥१॥ तासु त्रिंशत्पञ्चविंशतिपञ्चदशदशत्रिपञ्चोनैकनरकशतसहस्राणि पञ्च चैव यथाक्रमम् ॥२॥ नारका नित्याऽशुभतरलेश्यापरिणामदेहवेदनाविक्रियाः ॥३॥ परस्परोदीरितदुःखाः ॥४॥ संक्लिष्टाऽसुरोदीरितदुःखाश्च प्राक्चतुर्थ्याः ॥५॥ तेष्वेकत्रिसप्तदशसप्तदशद्वाविंशतित्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा सत्त्वानां परा स्थितिः ॥६॥ जम्बूद्वीपलवणोदादयः शुभनामानो द्वीपसमुद्राः ॥७॥ द्विर्द्विर्विष्कम्भाः पूर्वपूर्वपरिक्षेपिणो वलयाकृतयः ॥८॥ तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीपः ॥९॥ भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि ॥ १० ॥ तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्महाहिमवन्निषधनीलरुक्मिशिखरिणो वर्षधरपर्वताः ॥ ११ ॥ हेमार्जुनतपनीयवैडूर्यरजतहेममयाः ॥१२॥ मणिविचित्रपार्श्वा उपरि मूले च तुल्यविस्ताराः ॥१३॥ पद्ममहापद्मतिगिञ्छकेसरिमहापुण्डरीकपुण्डरीका ह्रदास्तेषामुपरि ॥१४॥ प्रथमो योजनसहस्रायामस्तदर्द्धविष्कम्भो ह्रदः ॥१५॥ दशयोजनावगाहः ॥१६॥ तन्मध्ये योजनं पुष्करम् ॥१७॥ तद्द्विगुणद्विगुणा ह्रदाः पुष्कराणि च ॥१८॥ तन्निवासिन्यो देव्यः श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः ससामानिकपरिषत्काः ॥१९॥ गङ्गासिन्धुरोहिद्रोहितास्याहरिद्धरिकान्तासीतासीतोदानारीनरकान्तासुवर्णरूप्यकूलारक्तारक्तोदाः सरितस्तन्मध्यगाः ॥२०॥ द्वयोर्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगाः ॥ २१ ॥ शेषास्त्वपरगाः ॥२२॥ चतुर्दशनदीसहस्रपरिवृता गङ्गासिन्ध्वादयो नद्यः ॥ २३ ॥ भरतः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

षड्विंशतिपञ्चयोजनशतविस्तारः षट्चैकोनविंशतिभागा योजनस्य ॥ २४ ॥ तद्द्विगुणद्विगुणविस्तारा वर्षधरवर्षा विदेहान्ताः ॥२५॥ उत्तरा दक्षिणतुल्याः ॥२६॥ भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्याम् उत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम् ॥२७॥ ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः॥२८ एकद्वित्रिपल्योपमस्थितयो हैमवतकहारिवर्षकदैवकुरवकाः ॥ २९ ॥ तथोत्तराः ॥३०॥ विदेहेषु संख्येयकालाः ॥३१॥ भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवतिशतभागः ॥३२॥ द्विर्धातकीखण्डे ॥३३॥ पुष्करार्द्धे च ॥३४॥ प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्याः ॥३५॥ आर्याम्लेच्छाश्च ॥३६॥ भरतैरावतविदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्यः ॥ ३७ ॥ नृस्थिती परावरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते ॥३८॥ तिर्यग्योनिजानां च ॥ ३९ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

देवाश्चतुर्णिकायाः ॥ १ ॥ आदितस्त्रिषु पीतान्तलेश्याः ॥ २ ॥ दशाष्टपञ्चद्वादशविकल्पाः कल्पोपपन्नपर्यन्ताः ॥ ३ ॥ इन्द्रसामानिकत्रायस्त्रिंशपारिषदात्मरक्षलोकपालानीकप्रकीर्णकाभियोग्यकिल्बिषिकाश्चैकशः ॥ ४ ॥ त्रायस्त्रिंशलोकपालवर्ज्या व्यन्तरज्योतिष्काः ॥ ५ ॥ पूर्वयोर्द्वीन्द्राः ॥ ६ ॥ कायप्रवीचारा आ ऐशानात् ॥ ७ ॥ शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनः प्रवीचाराः ॥८॥ परेऽप्रवीचाराः ॥९॥ भवनवासिनोऽसुरनागविद्युत्सुपर्णाग्निवातस्तनितोदधिद्वीपदिक्कुमाराः ॥१०॥ व्यन्तराः किन्नरकिम्पुरुषमहोरगगन्धर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचाः ॥११॥ ज्योतिष्काः सूर्याचन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च ॥ १२ ॥ मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ॥१३॥ तत्कृतः कालविभागः ॥१४॥ बहिरवस्थिताः ॥१५॥ वैमानिकाः ॥१६॥ कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च ॥१७॥ उपर्युपरि ॥१८॥ सौधर्म्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलांतवकापिष्ठशुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेष्वानतप्राणतयोरारणाच्युतयो-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नवसु ग्रैवेयकेषु विजयवैजयन्तजयन्तापराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥१९॥ स्थितिप्रभावसुखद्युतिलेश्याविशुद्धीन्द्रियावधिविषयतोऽधिकाः ॥२०॥ गतिशरीरपरिग्रहाऽभिमानतो हीनाः ॥ २१ ॥ पीतपद्मशुक्ललेश्या द्वित्रिशेषेषु ॥ २२ ॥ प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः ॥ २३ ॥ ब्रह्मलोकालया लौकान्तिकाः ॥ २४ ॥ सारस्वतादित्यवह्न्यरुणगर्दतोयतुषिताव्याबाधारिष्टाश्च ॥ २५ ॥ विजयादिषु द्विचरमाः ॥ २६ ॥ औपपादिकमनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः ॥२७॥ स्थितिरसुरनागसुपर्णद्वीपशेषाणां सागरोपमत्रिपल्योपमार्द्धहीनमिताः ॥२८॥ सौधर्मैशानयोः सागरोपमे अधिके ॥ २९ ॥ सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः सप्त ॥ ३० ॥ त्रिसप्तनवैकादशत्रयोदशपञ्चदशभिरधिकानि तु ॥३१॥ आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥३२॥ अपरा पल्योपमधिकम् ॥३३॥ परतः परतः पूर्वानन्तराः ॥३४॥ नारकाणां च द्वितीयादिषु ॥३५॥ दशवर्षसहस्राणि प्रथमायाम् ॥३६॥ भवनेषु च ॥३७॥ व्यन्तराणां च ॥३८॥ परा पल्योपममधिकम् ॥ ३९ ॥ ज्योतिष्काणां च ॥४०॥ तदष्टभागोऽपरा ॥४१॥ लौकान्तिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम् ॥४२॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

अजीवकाया धर्म्माधर्म्माकाशपुद्गलाः ॥ १॥ द्रव्याणि ॥ २ ॥ जीवाश्च ॥३॥ नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥४॥ रूपिणः पुद्गलाः ॥५॥ आ आकाशादेकद्रव्याणि ॥ ६ ॥ निष्क्रियाणि च ॥७॥ असंख्येयाः प्रदेशा धर्म्माधर्म्मैकजीवानाम् ॥८॥ आकाशस्यानन्ताः ॥९॥ संख्येयासंख्येयाश्च पुद्गलानाम् ॥१०॥ नाणोः ॥११॥ लोकाकाशेऽवगाहः ॥१२॥ धर्म्माधर्म्मयोः कृत्स्ने ॥१३॥ एकप्रदेशादिषु भाज्यः पुद्गलानाम् ॥१४॥ असंख्येयभागादिषु जीवानाम् ॥ १५ ॥ प्रदेशसंहारविसर्पाभ्यां प्रदीपवत् ॥ १६ ॥ गतिस्थित्युपग्रहौ धर्म्माधर्म्मयोरुपकारः ॥१७॥ आकाशस्यावगाहः ॥१८॥ शरीरवाङ्मनःप्राणापानाः पुद्गलानाम् ॥१९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुखदुःखजीवितमरणोपग्रहाश्च ॥२०॥ परस्परोपग्रहो जीवानाम् ॥२१॥ वर्तनपरिणामक्रियापरत्वापरत्वे च कालस्य ॥२२॥ स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गलाः ॥२३॥ शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छायातपोद्योतवन्तश्च ॥२४॥ अणवः स्कन्धाश्च ॥२५॥ भेदसंघातेभ्य उत्पद्यन्ते ॥२६॥ भेदादणुः ॥२७॥ भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः ॥२८॥ सद्द्रव्यलक्षणम् ॥२९॥ उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ॥३०॥ तद्भावाव्ययं नित्यम् ॥३१॥ अर्पितानर्पितसिद्धेः ॥३२॥ स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्धः ॥३३॥ न जघन्यगुणानाम् ॥३४॥ गुणसाम्ये सदृशानाम् ॥३५॥ द्व्यधिकादिगुणानां तु ॥३६॥ बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च ॥३७॥ गुणपर्ययवद्द्रव्यम् ॥३८॥ कालश्च ॥३९॥ सोऽनन्तसमयः ॥४०॥ द्रव्याश्रया निर्गुणाः गुणाः ॥४१॥ तद्भावः परिणामः ॥४२॥

इति तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

कायवाङ्मनःकर्म योगः ॥ १ ॥ स आस्रवः ॥ २ ॥ शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य ॥ ३ ॥ सकषायाकषाययोः साम्परायिकेर्यापथयोः ॥ ४ ॥ इन्द्रियकषायाव्रतक्रियाः पञ्चचतुःपञ्चपञ्चविंशतिसंख्या पूर्वस्य भेदाः ॥५॥ तीव्रमन्दज्ञाताज्ञातभावाधिकरणवीर्यविशेषेभ्यस्तद्विशेषः ॥६॥ अधिकरणं जीवाजीवाः ॥७॥ आद्यं संरम्भसमारम्भारम्भयोगकृतकारितानुमतकषायविशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रिश्चतुश्चैकशः ॥ ८ ॥ निर्वर्तनानिक्षेपसंयोगनिसर्गा द्विचतुर्द्वित्रिभेदाः परम् ॥९॥ तत्प्रदोषनिह्नवमात्सर्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञानदर्शनावरणयोः ॥१०॥ दुःखशोकतापाक्रन्दनवधपरिदेवनान्यात्मपरोभयस्थानान्यसद्वेद्यस्य ॥११॥ भूतव्रत्यनुकम्पादानसरागसंयमादियोगः क्षान्तिः शौचमिति सद्वेद्यस्य ॥१२॥ केवलिश्रुतसंघधर्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य ॥१३॥ कषायोदयात्तीव्रपरिणामश्चारित्रमोहस्य ॥१४॥ बह्वारम्भपरिग्रहत्वं नारकस्यायुषः ॥१५॥ माया तैर्यग्योनस्य ॥१६॥ अल्पारम्भपरिग्रहत्वं मानुषस्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

॥१७॥ स्वभावमार्दवं च ॥१८॥ निःशीलव्रतत्वं च सर्वेषाम् ॥१९॥ सरागसंयमसंयमासंयमाऽकामनिर्जराबालतपांसि दैवस्य ॥ २० ॥ सम्यक्त्वं च ॥२१॥ योगवक्रताविसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः ॥२२॥ तद्विपरीतं शुभस्य ॥२३॥ दर्शनविशुद्धिर्विनयसम्पन्नता शीलव्रतेष्वनतीचारोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौ शक्तितस्त्यागतपसी साधुसमाधिर्वैयावृत्त्यकरणमर्हदाचार्यबहुश्रुतप्रवचनभक्तिरावश्यकापरिहाणिर्मार्गप्रभावना प्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थंकरत्वस्य ॥२४॥ परात्मनिन्दाप्रशंसे सदसद्गुणोच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य ॥२५॥ तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य ॥२६॥ विघ्नकरणमन्तरायस्य ॥२७॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

हिंसाऽनृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम् ॥१॥ देशसर्वतोऽणुमहती ॥ २ ॥ तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पञ्च पञ्च ॥३॥ वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपानभोजनानि पञ्च ॥४॥ क्रोधलोभभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचिभाषणं च पञ्च ॥५॥ शून्यागारविमोचितावासपरोपरोधाकरणभैक्ष्यशुद्धिसधर्माऽविसंवादाः पञ्च ॥६॥ स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहराङ्गनिरीक्षणपूर्वरतानुस्मरणवृष्येष्टरसस्वशरीरसंस्कारत्यागाः पञ्च ॥७॥ मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रियविषयरागद्वेषवर्जनानि पञ्च ॥८॥ हिंसादिष्विहामुत्रापायावद्यदर्शनम् ॥ ९ ॥ दुःखमेव वा ॥१०॥ मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थ्यानि च सत्त्वगुणाधिकक्लिश्यमानाविनयेषु ॥ ११ ॥ जगत्कायस्वभावौ वा संवेगवैराग्यार्थम् ॥ १२ ॥ प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा ॥१३। असदभिधानमनृतम् ॥१४ अदत्तादानं स्तेयम् ॥१५। मैथुनमब्रह्म ॥१६। मूर्छा परिग्रहः ॥१७। निःशल्यो व्रती ॥ १८ ॥ अगार्यनगारश्च । १९ ॥ अणुव्रतोऽगारी ।२०। दिग्देशानर्थदण्डविरतिसामायिकप्रोषधोपवासोपभोगपरिमाणातिथिसंविभागव्रतसम्पन्नश्च ।२१॥ मारणांतिकीं सल्लेखनां जोषिता ॥२२। शङ्काकांक्षाविचिकित्साऽन्यदृष्टिप्रशंसासंस्तवाः सम्यग्दृष्टेरति-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चाराः ॥२३॥ व्रतशीलेषु पञ्च पञ्च यथाक्रमम् ॥ २४ ॥ बन्ध-
वधच्छेदातिभारारोपणान्नपाननिरोधाः ॥ २५ ॥ मिथ्योपदेशरहो-
भ्याख्यानकूटलेखक्रियान्यासापहारसाकारमन्त्रभेदाः ॥२६॥ स्तेनप्र-
योगतदाहृतादानविरुद्धराज्यातिक्रमहीनाधिकमानोन्मानप्रतिरूपकव्य-
वहाराः ॥२७॥ परविवाहकरणेत्वरिकापरिगृहीताऽपरिगृहीतागमनानं-
गक्रीडाकामतीव्राभिनिवेशाः ॥२८॥ क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णधनधान्य-
दासीदासकुप्यप्रमाणाऽतिक्रमाः ॥ २९ ॥ ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्व्यतिक्रम-
क्षेत्रवृद्धिस्मृत्यन्तराधानानि ॥ ३० ॥ आनयनप्रेष्यप्रयोगशब्दरूपानु-
पातपुद्गलक्षेपाः ॥३१॥ कन्दर्पकौत्कुच्यमौखर्यासमीक्ष्याधिकरणोप-
भोगपरिभोगानर्थक्यानि ॥ ३२ ॥ योगदुष्प्रणिधानानादरस्मृत्यनुप-
स्थानानि ॥ ३३ ॥ अप्रत्यवेक्षिताऽप्रमार्जितोत्सर्गादानसंस्तरोप-
क्रमणानादरस्मृत्यनुपस्थानानि ॥ ३४ ॥ सचित्तसम्बन्धसम्मिश्र-
श्राभिषवदुःपक्वाहाराः ॥ ३५ ॥ सचित्तनिक्षेपापिधानपरव्यपदेश-
मात्सर्यकालातिक्रमाः ॥ ३६ ॥ जीवितमरणाशंसामित्रानुरागसुखानु-
बन्धनिदानानि ॥ ३७ । अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम् ॥ ३८ ॥
विधिद्रव्यदातृपात्रविशेषात्तद्विशेषः ॥ ३९ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बन्धहेतवः ॥१॥ सकषा-
यत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान्पुद्गलानादत्ते स बन्धः ॥ २ ॥ प्रकृति-
स्थित्यनुभागप्रदेशास्तद्विधयः ॥३॥ आद्यो ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयमोह-
नीयायुर्नामगोत्रान्तरायाः ॥४॥ पञ्चनवद्व्यष्टाविंशतिचतुर्द्विचत्वारिंश-
द्द्विपञ्चभेदा यथाक्रमम् ॥५॥ मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानाम्
॥६॥ चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानां निद्रानिद्रानिद्राप्रचलाप्रचलाप्रचला-
स्त्यानगृद्धयश्च ॥७॥ सदसद्वेद्ये ॥८॥ दर्शनचारित्रमोहनीयाकषाय-
कषायवेदनीयाख्यास्त्रिद्विनवषोडशभेदाः सम्यक्त्वमिथ्यात्वतदुभयान्यक-
षायकषायौ हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सास्त्रीपुन्नपुंसकवेदाः अनंता-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसंज्वलनविकल्पाश्चैकशः क्रोधमानमाया-लोभाः ॥ ९ ॥ नारकतैर्यग्योनमानुषदैवानि ॥ १० ॥ गतिजाति-शरीराङ्गोपाङ्गनिर्माणबन्धनसंघातसंस्थानसंहननस्पर्शरसगंधवर्णानुपू-र्व्यागुरुलघूपघातपरघातातपोद्योतोच्छ्वासविहायोगतयः प्रत्येकशरीर-त्रससुभगसुस्वरशुभसूक्ष्मपर्याप्तिस्थिरादेययशःकीर्तिसेतराणि तीर्थंकरत्वं च ॥११॥ उच्चैर्नीचैश्च ॥१२॥ दानलाभभोगोपभोगवीर्याणाम् ॥१३॥ आदितस्तिसृणामंतरायस्य च त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्यः परा स्थितिः ॥१४॥ सप्ततिर्मोहनीयस्य ॥१५॥ विंशतिर्नामगोत्रयोः ॥१६॥ त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुषः ॥१७॥ अपरा द्वादशमुहूर्ताः वेदनीयस्य ॥१८॥ नामगोत्रयोरष्टौ ॥ १९ ॥ शेषाणामंतर्मुहूर्ताः ॥२०॥ विपाकोऽनुभवः ॥ २१ ॥ स यथानाम ॥ २२ ॥ ततश्च निर्जरा ॥ २३ ॥ नामप्रत्ययाः सर्वतो योगविशेषात्सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहस्थिताः सर्वात्मप्रदेशेष्वनन्तानन्तप्रदेशाः ॥२४॥ सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्राणि पुण्यम् ॥२५॥ अतोऽन्यत्पापम् ॥ २६ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

आस्रवनिरोधः संवरः ॥ १ ॥ स गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षा-परीषहजयचारित्रैः ॥ २ ॥ तपसा निर्जरा च ॥ ३ ॥ सम्यग्योग-निग्रहो गुप्तिः ॥ ४ ॥ ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गाः समितयः ॥ ५ ॥ उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिञ्चन्य-ब्रह्मचर्याणि धर्मः ॥६॥ अनित्याशरणसंसारैकत्वान्यत्वाशुच्यास्रव-संवरनिर्जरालोकबोधिदुर्लभधर्मस्वाख्यातत्वानुचिन्तनमनुप्रेक्षाः ॥७॥ मार्गाच्यवननिर्जरार्थं परिषोढव्याः परीषहाः ॥८॥ क्षुत्पिपासाशीतोष्ण-दंशमशकनाग्न्यारतिस्त्रीचर्यानिषद्याशय्याक्रोशवधयाचनालाभरोगतृण-स्पर्शमलसत्कारपुरस्कारप्रज्ञाऽज्ञानादर्शनानि ॥९॥ सूक्ष्मसांपरायछद्म-स्थवीतरागयोश्चतुर्दश ॥१०॥ एकादश जिने ॥११॥ बादरसाम्पराये सर्वे ॥१२॥ ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने ॥१३॥ दर्शनमोहान्तराययोरदर्शना-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लाभौ ॥१४॥ चारित्रमोहे नाग्न्यारतिस्त्रीनिषद्याक्रोशयाचनासत्कार-पुरस्कारः ॥१५॥ वेदनीये शेषाः ॥ १६ ॥ एकादयो भाज्या युगपदेकस्मिन्नेकोनविंशतिः ॥ १७ ॥ सामायिकच्छेदोपस्थापनापरिहार-विशुद्धिसूक्ष्मसाम्परायययथाख्यातमिति चारित्रम् ॥१८॥ अनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशा बाह्यं तपः ॥१९॥ प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्त्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानान्युत्तरम् ॥२०॥ नवचतुर्दशपञ्चद्विभेदा यथाक्रमं प्राग्ध्यानात् ॥२१॥ आलोचनाप्रतिक्रमणतदुभयविवेकव्युत्सर्गतपश्छेदपरिहारोपस्थापनाः ॥२२ ज्ञानदर्शनचारित्रोपचाराः ॥२३॥ आचार्योपाध्यायतपस्विशैक्ष्यग्लान-गणकुलसंघसाधुमनोज्ञानाम् ॥२४॥ वाचनापृच्छनानुप्रेक्षाम्नायधर्मोपदेशाः ॥ २५ ॥ बाह्याभ्यन्तरोपध्योः ॥२६॥ उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिन्तानिरोधो ध्यानमान्तर्मुहूर्तात् ॥ २७ ॥ आर्तरौद्रधर्म्यशुक्लानि ॥२८॥ परे मोक्षहेतू ॥ २९ ॥ आर्तममनोज्ञस्य सम्प्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृतिसमन्वाहारः ॥३०॥ विपरीतं मनोज्ञस्य ॥३१॥ वेदनायाश्च ॥३२॥ निदानं च ॥३३॥ तदविरतदेशविरतप्रमत्तसंयतानाम् ॥३४॥ हिंसानृतस्तेयविषयसंरक्षणेभ्यो रौद्रमविरतदेशविरतयोः ॥३५॥ आज्ञापायविपाकसंस्थानविचयाय धर्म्यम् ॥३६॥ शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः ॥३७॥ परे केवलिनः ॥३८॥ पृथक्त्वैकत्ववितर्कसूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिव्युपरतक्रियानिवर्तीनि ॥३९॥ त्र्येकयोगकाययोगायोगानाम् ॥४०॥ एकाश्रये सवितर्कवीचारे पूर्वे ॥४१॥ अवीचारं द्वितीयम् ॥४२॥ वितर्कः श्रुतम् ॥४३॥ वीचारोऽर्थव्यञ्जनयोगसंक्रांतिः ॥४४॥ सम्यग्दृष्टिश्रावकविरतानन्तवियोजकदर्शनमोहक्षपकोपशमकोपशांतमोहक्षपकक्षीणमोहजिनाः क्रमशोऽसंख्येयगुणनिर्जराः ॥४५॥ पुलाकबकुशकुशीलनिर्ग्रन्थस्नातका निर्ग्रन्थाः ॥४६॥ संयमश्रुतप्रतिसेवनातीर्थलिंगलेश्योपपादस्थानविकल्पतः साध्याः ॥ ४७ ॥

इति तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे नवमोऽध्याय ॥ ९ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलम् ॥ १ ॥ बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः ॥२॥ औपशमिकादिभव्यत्वानां च ।३। अन्यत्र केवलसम्यक्त्वज्ञानदर्शनसिद्धत्वेभ्यः ॥ ४ ॥ तदनन्तरमूर्ध्वं गच्छत्यालोकान्तात् ॥ ५ ॥ पूर्वप्रयोगादसंगत्वाद्बन्धछेदात्तथागतिपरिणामाच्च ॥६॥ आविद्धकुलालचक्रवद्व्यपगतलेपालाबुवदेरण्डबीजवदग्निशिखावच्च ॥७॥ धर्मास्तिकायाभावात् क्षेत्रकालगतिलिंगतीर्थचारित्रप्रत्येकबुद्धबोधितज्ञानावगाहनान्तरसंख्याल्पबहुत्वतः साध्याः ॥ ९ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे दशमोऽध्याय ॥१०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मोक्षशास्त्र (तत्वार्थसूत्र) की
बड़ी बड़ी टीकाएँ

सर्वार्थसिद्धि टीका सार्थ (पूज्यपाद) १२)

श्लोकवार्तिकालंकार टीका

६ भाग पं० माणिकचन्दजी न्यायाचार्य ६०)

मोक्षशास्त्र टीका (पं० फूलचन्दजी शास्त्री) ५)

राजवार्तिक टीका १—२ भाग

पं० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य २४)

तत्त्वार्थवृत्ति टीका " १८)

स्वाध्यायार्थ एक एक प्रति अवश्य मंगाईये

मैनेजर,

दिगम्बर जैन पुस्तकालय, सूरत १

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीवीतरागाय नमः

श्रीउमास्वामीविरचित—

मोक्षशास्त्र सटीक

प्रथम अध्याय

मङ्गलाचरण

दोहा—वीरवदन-हिमगिरिनिकसि, फैली जो जग रङ्ग।
नय तरङ्ग युत गङ्ग वह, क्षालै पाप अभङ्ग॥

मोक्षमार्गस्य ×नेतारं, भेत्तारं *कर्मभूभृताम्।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां, वन्दे तद्गुणलब्धये॥

अर्थ—मैं मोक्षमार्गके नेता, कर्मरूपी पर्वतोंके भेदन करनेवाले और समस्त तत्त्वोंको जाननेवाले आप्तको उनके गुणोंकी प्राप्तिके लिये वन्दना करता हूँ।

विशेष—यद्यपि इस श्लोकमें विशेष्य-आप्तका निर्देश नहीं किया गया है तथापि विशेषणों द्वारा उसका बोध हो जाता है, क्योंकि मोक्षमार्गका नेतृत्व, कर्मरूपी पर्वतोंका भेत्तत्व और समस्त कर्मोंका ज्ञातृत्व आप्त अर्थात् अर्हन्त देवमें ही सम्भव होता है। यहां विशेष्यका उल्लेख न कर मात्र विशेषणोंका निर्देश कर वन्दना करनेवाले आचार्यने अपना यह अभिप्राय प्रकट किया है कि मैं

×जो स्वयं मार्गपर चल कर अन्य पुरुषोंको मार्ग प्रदर्शन करता है वह नेता कहलाता है। *इष्टसिद्धिमें पर्वतोंके समान बाधक होनेके कारण कर्मोंमें पर्वतोंका आरोप किया गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्यक्तिविशेषका पूजक न होकर गुणोंका पूजक हूं जिसमें मोक्षमार्गका नेतृत्व-हितोपदेशीपना, कर्मभूभृद्भेतृत्व-वीतरागता और विश्वतत्वज्ञातृत्व-सर्वज्ञता ये तीन गुण हों, मैं उसीका पूजक हूं, वही मेरा आराध्य देव है ।+

मोक्षप्राप्तिका उपाय—

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः* ॥ १ ॥

अर्थ—(सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ये तीनों मिलकर (मोक्षमार्गः) मोक्षके मार्ग अर्थात् मोक्षकी प्राप्तिके उपाय हैं ।

सम्यग्ज्ञान—[1]संशय, [2]विपर्यय और [3]अनध्यवसायरहित जीवादि पदार्थोंका जानना सम्यग्ज्ञान कहलाता है ।

+आप्तेनोच्छिन्नदोषेण, सर्वज्ञेनागमेशिना ।
भवितव्यं नियोगेन, नान्यथा ह्याप्तता भवेत् ॥ (समन्तभद्र)

राग आदि दोष रहित सर्वज्ञ और हितोपदेशी ही आप्त हो सकता है ।

यद्यपि इस श्लोकके उमास्वामी द्वारा रचित होनेमें अभी विद्वानोंका मतभेद है तथापि आचार्य विद्यानन्दकी मान्यता और प्रसिद्धिका ख्याल कर इस आवृत्तिमें इसका अर्थ जोड़ दिया गया है ।

*'मोक्षमार्गः' इस पदमें व्याकरणके नियमके अनुसार बहुवचन होना चाहिये था पर आचार्यने एकवचन ही रखा है, इससे सूचित होता है कि सम्यग्दर्शन आदि तीनोंका मिलना ही मोक्षका मार्ग है ।

१—अनिश्चित ज्ञान, जैसे यह सीप है या चांदी । २—उल्टा ज्ञान, जैसे रस्सीमें सांपका ज्ञान । ३—अनिश्चित तथा विकल्परहित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यक्चारित्र—मिथ्यादर्शन, कषाय तथा हिंसा आदि संसारके कारणोंसे विरक्त होना सम्यक्चारित्र कहलाता है। सम्यग्दर्शनका लक्षण आगेके सूत्रमें कहते हैं ॥ १ ॥

सम्यग्दर्शनका लक्षण—

तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ॥२॥

अर्थ—(तत्त्वार्थश्रद्धानम्) तत्त्व—वस्तुके स्वरूप सहित अर्थ—जीवादि पदार्थोंका श्रद्धान करना (सम्यग्दर्शनम्) सम्यग्दर्शन [अस्ति] है।

भावार्थ—चौथे सूत्रमें कहे जानेवाले जीव आदि सात तत्त्वोंका जैसा स्वरूप वीतराग-सर्वज्ञ भगवानने कहा है उसका उसी प्रकार श्रद्धान करना सो सम्यग्दर्शन है।

सम्यग्दर्शनके, उत्पत्तिकी अपेक्षा भेद—

तन्निसर्गादधिगमाद्वा ॥३॥

अर्थ—(तत्) वह सम्यग्दर्शन (निसर्गात्) स्वभावसे (वा) अथवा (अधिगमात्) परके उपदेश आदिसे [उत्पद्यते] उत्पन्न होता है। इस प्रकार सम्यग्दर्शनके, उत्पत्तिकी अपेक्षा दो भेद हैं—(१) निसर्गज, (२) अधिगमज।

निसर्गज—जो परके उपदेशके बिना अपने आप (पूर्वभवके संस्कारसे) उत्पन्न हो उसे निसर्गज सम्यग्दर्शन कहते हैं।

ज्ञान, जैसे चलते समय पावोंसे छुये हुये पत्थर वगैरहमें "कुछ है" इस प्रकारका ज्ञान।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अधिगमज—जो परके उपदेश आदिसे होता है उसे अधिगमज सम्यग्दर्शन कहते हैं* ॥ ३ ॥

तत्त्वोंके नाम—

जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम् ॥ ॥

अर्थ—(जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षाः) जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात (तत्त्वम्) तत्त्व (सन्ति] हैं।

जीव—जिसमें ज्ञानदर्शनरूप चेतना पाई जावे उसे जीव कहते हैं।

अजीव—जिसमें चेतना न पाई जावे उसे अजीव कहते हैं।

आस्रव—बन्धके कारणको आस्रव कहते हैं।

बन्ध—आत्माके प्रदेशोंके साथ कर्मोंका दूध-पानीकी तरह मिल जाना सो बन्ध है।

संवर—आस्रवके रुकनेको संवर कहते हैं।

निर्जरा—आत्माके प्रदेशोंसे पहलेके बन्धे हुए कर्मोंका एकदेश क्षय होना सो निर्जरा है।

मोक्ष—समस्त कर्मोंके बिलकुल क्षय हो जानेको मोक्ष कहते हैं+ ॥ ४ ॥

---

* उक्त दोनों भेदोंमें मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व-प्रकृति और अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ इन सात कर्म-प्रकृतियोंका उपशम, क्षय अथवा क्षयोपशमका होना आवश्यक है।

+इन्हीं सात तत्त्वोंमें पुण्य और पाप मिला देनेसे ९ पदार्थ हो जाते हैं। यहां उनका आस्रव और बन्धमें अन्तर्भाव होजानेसे अलग कथन नहीं किया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सात तत्त्व तथा सम्यग्दर्शन आदिके व्यवहारके कारण—

नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यासः ॥ ५ ॥

अर्थ—(नामस्थापनाद्रव्यभावतः) नाम, स्थापना, द्रव्य और भावसे (तत् न्यासः) उन सात तत्त्वों तथा सम्यग्दर्शन आदिका लोकव्यवहार [भवति] होता है। नाम आदि चार पदार्थ ही चार निक्षेप× कहलाते हैं।

नामनिक्षेप—गुण, जाति, द्रव्य और क्रियाकी अपेक्षाके बिना ही इच्छानुसार किसीका नाम रखनेको नामनिक्षेप कहते हैं। जैसे किसीका नाम 'जिनदत्त' है। यद्यपि वह जिनदेवके द्वारा नहीं दिया गया है तथापि लोकव्यवहार चलानेके लिये उसका जिनदत्त नाम रख लिया गया है।

स्थापनानिक्षेप—धातु, काष्ठ, पाषाण आदिकी प्रतिमा तथा अन्य पदार्थमें 'यह वह है' इस प्रकार किसीको कल्पना करना सो स्थापनानिक्षेप है। इसके दो भेद हैं—१-तदाकार स्थापना और २-अतदाकार स्थापना। जिस पदार्थका जैसा आकार है उसमें उसी आकारवालेकी कल्पना करना सो तदाकार स्थापना है—जैसे पार्श्वनाथकी प्रतिमामें पार्श्वनाथकी कल्पना करना। और भिन्न आकारवाले पदार्थोंमें किसी भिन्न आकारवालेकी कल्पना करना सो अतदाकार स्थापना है। जैसे शतरंजकी गोटोंमें बादशाह, वजीर वगैरहकी कल्पना करना।+

× प्रमाण और नयके अनुसार प्रचलित हुए लोकव्यवहारको निक्षेप कहते हैं।

+ नामनिक्षेप और स्थापनानिक्षेपमें अन्तर-नामनिक्षेपमें पूज्य अपूज्यका व्यवहार नहीं होता, पर स्थापनानिक्षेपमें पूज्य अपूज्यका व्यवहार होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्रव्यनिक्षेप—भूत भविष्यत् पर्यायकी मुख्यता लेकर वर्तमानमें कहना सो द्रव्यनिक्षेप है। जैसे पहले कभी पूजा करनेवाले पुरुषको वर्तमानमें पुजारी कहना और भविष्यत्में राजा होने-वाले राजपुत्रको राजा कहना।

भावनिक्षेप—केवल वर्तमान पर्यायकी मुख्यतासे अर्थात् जो पदार्थ जैसा है उसको उसी रूप कहना सो भावनिक्षेप है। जैसे—काष्ठको काष्ठ अवस्थामें काष्ठ, आग होनेपर आग और कोयला हो जानेपर कोयला ॥ ५ ॥

सम्यग्दर्शन आदि तथा तत्वोंके जाननेके उपाय—

प्रमाणनयैरधिगमः ॥ ६ ॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन आदि रत्नत्रय और जीव आदि तत्वोंका (अधिगमः) ज्ञान (प्रमाणनयैः) प्रमाण और नयोंसे [भवति] होता है।

प्रमाण—जो पदार्थके सर्वदेशको ग्रहण करे उसे प्रमाण कहते हैं। इसके दो भेद हैं—१-प्रत्यक्षप्रमाण और २-परोक्षप्रमाण। आत्मा जिस ज्ञानके द्वारा किसी बाह्य निमित्तकी सहायताके बिना ही पदार्थोंको स्पष्ट जाने उसे प्रत्यक्षप्रमाण कहते हैं और इन्द्रिय तथा प्रकाश आदिकी सहायतासे पदार्थोंको एक-देश जाने उसे परोक्ष प्रमाण कहते हैं।

नय—जो पदार्थके एकदेशको विषय करे—जाने उसे नय कहते हैं। इसका दो भेद हैं—१-द्रव्यार्थिक, २-पर्यायार्थिक। जो मुख्य रूपसे द्रव्यको विषय करे उसे द्रव्यार्थिक और जो मुख्य रूपसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर्यायको विषय करे उसे पर्यायार्थिक नय कहते हैं× ॥ ६ ॥

निर्देशस्वामित्वसाधनाधिकरणस्थितिविधानतः ।७।

अर्थ—निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति और विधान इनसे भी जीवादिक तत्त्व तथा सम्यग्दर्शन आदिका व्यवहार होता है।

निर्देश—वस्तुके स्वरूपका कथन करना सो निर्देश है।

स्वामित्व—वस्तुके अधिकारको स्वामित्व कहते हैं।

साधन—वस्तुकी उत्पत्तिके कारणको साधन कहते हैं।

अधिकरण—वस्तुके आधारको अधिकरण कहते हैं।

स्थिति—वस्तुके कालकी अवधिको स्थिति कहते हैं।

विधान—वस्तुके भेदोंको विधान कहते हैं ॥ ७ ॥ 🐚

सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शनकालांतरभावाल्पबहुत्वैश्च ॥८॥

× इन अवांतर भेदोंकी विवक्षासे ही सूत्रमें द्विवचनके स्थान पर बहुवचनका प्रयोग किया गया है।

🐚 ऊपर कहे हुये छह अनुयोगोंसे सम्यग्दर्शनका वर्णन इस प्रकार है—

निर्देश—जीव आदि तत्त्वोंका यथार्थ श्रद्धान करना।

स्वामित्व—जीव।

साधन—साधनके दो भेद हैं—१. अन्तरंग व २. बाह्य। दर्शनमोहके उपशम क्षय अथवा क्षयोपशमको अन्तरङ्ग साधन कहते हैं, यह सबके एकसा होता है। बाह्य साधन कई प्रकारका होता है। जैसे नरक गतिमें तीसरे नरकतक 'जातिस्मरण' 'धर्मश्रवण' और 'दुःखानुभव' ये तीन तथा चौथेसे सातवेंतक 'जातिस्मरण' और 'दुःखानुभव' ये दो साधन हैं। तिर्यञ्च और मनुष्यगतिमें 'जातिस्मरण' 'धर्मश्रवण' और 'जिनबिंब-दर्शन'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—(च) और सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व इन आठ अनुयोगोंके द्वारा भी पदार्थका ज्ञान [भवति] होता है।

सत्—वस्तुके अस्तित्वको सत् कहते हैं।

संख्या—वस्तुके परिणामोंकी गिनतीको संख्या कहते हैं।

क्षेत्र—वस्तुके वर्तमान कालके निवासको क्षेत्र कहते हैं।

स्पर्शन—वस्तुके तीनों काल सम्बन्धी निवासको स्पर्शन कहते हैं।

काल—वस्तुके ठहरनेकी मर्यादाको काल कहते हैं।

अन्तर—वस्तुके विरहकालको अन्तर कहते हैं।

ये तीन साधन हैं। देवगतिमें बारहवें स्वर्गके पहले 'जातिस्मरण' 'धर्मश्रवण', 'जिनकल्याणक दर्शन' और 'देवर्द्धिदर्शन' ये चार, उनके आगे सोलहवें स्वर्ग तक 'देवर्द्धिदर्शन' को छोड़कर तीन तथा नवग्रैवेयकोंमें 'जातिस्मरण' और 'धर्मश्रवण' ये दो साधन हैं। इसके आगे सम्यग्दृष्टि जीव ही उत्पन्न होते हैं।

अधिकरण—अधिकरणके दो भेद हैं–१–अभ्यंतर और २–बाह्य। सम्यग्दर्शनका आभ्यन्तर अधिकरण आत्मा है और बाह्य अधिकरण एक रज्जु चौड़ी और चौदह रज्जु लम्बी त्रसनाडी है।

विधान—सम्यग्दर्शनके तीन भेद हैं–१–औपशमिक, २–क्षायोपशमिक, और ३–क्षायिक।

स्थिति–तीनों प्रकारके सम्यग्दर्शनोंकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त है तथा औपशमिक सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त है। क्षायोपशमिककी उत्कृष्ट स्थिति ६६ सागर और क्षायिककी संसारमें रहनेकी उत्कृष्ट स्थिति ३३ सागर तथा अन्तर्मुहूर्त सहित आठ वर्ष कम दो कोटिवर्ष पूर्वकी है।

इसी तरह सम्यक्चारित्र तथा जीव आदि तत्त्वोंका भी वर्णन यथायोग्य रूपसे लगा लेना चाहिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भाव—औपशमिक, क्षायिक आदि परिणामोंको भाव कहते हैं।

अल्पबहुत्व—अन्य पदार्थकी अपेक्षा किसी वस्तुकी हीनाधिकता वर्णन करनेको अल्पबहुत्व कहते हैं।

सम्यग्ज्ञानका वर्णन, ज्ञानके भेद और नाम—

मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि ज्ञानम् ॥ ९ ॥

अर्थ—(मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि) मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवल ये पांच प्रकारके (ज्ञानं) ज्ञान [सन्ति] हैं।

मतिज्ञान—जो पांच इन्द्रियों और मनकी सहायतासे पदार्थको जाने उसे मतिज्ञान कहते हैं।

श्रुतज्ञान—जो पांच इन्द्रियों और मनकी सहायतासे मतिज्ञानके द्वारा जाने हुए पदार्थको विशेष रूपसे जानता है उसे श्रुतज्ञान कहते हैं।

अवधिज्ञान—जो इन्द्रियोंकी सहायताके बिना ही रूपी पदार्थोंको द्रव्य क्षेत्र काल भावकी मर्यादा लिये हुए स्पष्ट जाने उसे अवधिज्ञान कहते हैं।

मनःपर्ययज्ञान—जो किसीकी सहायताके बिना ही अन्य पुरुषके मनमें स्थित, रूपी पदार्थोंको स्पष्ट जाने उसे मनःपर्ययज्ञान कहते हैं॥ ९॥

केवलज्ञान—जो सब द्रव्यों तथा उनकी पर्यायोंको एक-साथ स्पष्ट जाने उसे केवलज्ञान कहते हैं॥ ९॥

प्रमाणका लक्षण और भेद—

तत्प्रमाणे ॥ १० ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—(तत्) ऊपर कहा हुआ पांच प्रकारका ज्ञान ही (प्रमाणे) प्रमाण [अस्ति] है।

भावार्थ—सम्यग्दर्शनको प्रमाण कहते हैं। उसके दो भेद हैं—१-प्रत्यक्ष, २-परोक्ष ॥ १० ॥

परोक्षप्रमाणके भेद—

आद्ये परोक्षम् ॥ ११ ॥

अर्थ—(आद्ये) आदिके दो अर्थात् मतिज्ञान और श्रुतज्ञान (परोक्षम्) परोक्ष प्रमाण [स्तः] हैं॥ ११ ॥

प्रत्यक्षप्रमाणके भेद—

प्रत्यक्षमन्यत् ॥ १२ ॥

अर्थ—(अन्यत्) शेष तीन अर्थात् अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञान (प्रत्यक्षम्) प्रत्यक्ष प्रमाण हैं॥ १२ ॥

मतिज्ञानके दूसरे नाम—

मतिःस्मृतिःसंज्ञाचिन्ताभिनिबोधइत्यनर्थान्तरम् १३

अर्थ—मति, स्मृति, संज्ञा, चिंता और अभिनिबोध इत्यादि अन्य पदार्थ नहीं हैं अर्थात् मतिज्ञानके ही नामान्तर हैं।

मति—मन और इन्द्रियोंसे वर्तमानकालके पदार्थोंका जानना मति है।

स्मृति—पहले जाने हुए पदार्थोंका वर्तमानमें स्मरण आनेको स्मृति कहते हैं।

संज्ञा—वर्तमानमें किसी पदार्थको देखकर 'यह वही है' इसप्रकार स्मरण और प्रत्यक्षके जोड़रूप ज्ञानको संज्ञा कहते हैं। इसीका दूसरा नाम 'प्रत्यभिज्ञान' है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चिंता—'जहां जहां धूम होता है वहां वहां अग्नि अवश्य होती है-जैसे रसोईघर' इस प्रकारके व्याप्ति ज्ञानको चिन्ता कहते हैं।

अभिनिबोध—साधनसे साध्यका ज्ञान होनेको अभिनिबोध कहते हैं-जैसे 'उस पहाड़में अग्नि है, क्योंकि उसपर धूम है' इसीका दूसरा नाम 'अनुमान, है।※

मतिज्ञानकी उत्पत्तिका कारण और स्वरूप—

तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम् ॥ १४ ॥

अर्थ—(तत्) वह मतिज्ञान (इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम्) पांच इन्द्रिय और मनके निमित्तसे होता है ॥ १४ ॥

मतिज्ञानके भेद—

अवग्रहेहावायधारणाः ॥ १५ ॥

अर्थ—मतिज्ञानके अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा ये चार भेद हैं।

अवग्रह—+दर्शनके बाद शुक्ल कृष्ण आदि रूपविशेषका ज्ञान होना अवग्रह है।

ईहा—अवग्रहके द्वारा जाने हुए पदार्थको विशेषरूपसे जाननेकी चेष्टा करना ईहा है। जैसे—वह शुक्लरूप बगुला है या पताका।

ईहा ज्ञानको 'यह चांदी है या सीप' इत्यादिकी तरह संशयरूप

※ ये सब ज्ञान मतिज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमसे होते हैं इसलिये निमित्त सामान्यकी अपेक्षासे सबको एक कहा है परन्तु इन सबमें स्वरूप भेद-अर्थभेद अवश्य है।

+ छद्मस्थ जीवोंके ज्ञानके पहले दर्शन होता है। किसी वस्तुकी सत्ता मात्रके देखनेको दर्शन कहते हैं। इसका विषय बहुत सूक्ष्म होता है जो कि उदाहरणसे नहीं समझाया जा सकता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

न समझाना चाहिये, क्योंकि संशयमें अनिश्चित अनेक कोटियोंका अवलंबन रहता है जो कि यहां नहीं है यहां बगुलाका और पताकाका कथन दो उदाहरणोंकी अपेक्षा है। उसका स्पष्ट भाव यह है-यदि वह बगुला है तो बगुला होना चाहिये और यदि पताका है तो पताका होना चाहिये। ईहामें भवितव्यतारूप प्रत्यय ज्ञान होता है।

अवाय—विशेष चिह्न देखनेसे उसका निश्चय हो जाना सो अवाय है। जैसे-उस शुक्ल पदार्थमें पंखोंका फड़फड़ाना उड़ना आदि चिह्न देखनेसे बगुलाका निश्चय होना।

धारणा—अवायसे निश्चय किये हुए पदार्थको कालान्तरमें नहीं भूलना सो धारणा है॥ १५॥

अवग्रह आदिके विषयभूत पदार्थ—

बहुबहुविधक्षिप्रानिःसृतानुक्तध्रुवाणांसेतराणां॥१६

अर्थ—(सेतराणाम्—बहुबहुविधक्षिप्रानिःसृतानुक्तध्रुवाणाम्) अपने उल्टे भेदों सहित बहु, आदि अर्थात् बहु, बहुविध, क्षिप्र, अनिःसृत, अनुक्त, ध्रुव और इनसे उल्टे एक, एकविध, अक्षिप्र, निःसृत उक्त तथा अध्रुव इन बारह प्रकारके पदार्थोंका अवग्रह ईहादिरूप ज्ञान होता है।

१. +बहु-एकसाथ बहुत पदार्थोंका अवग्रहादि होना। जैसे-गेंहूकी राशि देखनेसे बहुतसे गेंहूओंका ज्ञान।

२. बहुविध—बहुत प्रकारके पदार्थोंका अवग्रहादि होना। जैसे-गेंहू, चना, चावल आदि कई पदार्थोंका ज्ञान।

३. क्षिप्र—शीघ्रतासे पदार्थका ज्ञान होना।

+यद्यपि बहु आदि बारह प्रकारके पदार्थ हैं तथापि सुविधाकी दृष्टिसे यहां उनका ज्ञानपरक लक्षण लिखा गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४. अनि:सृत—एकदेशके ज्ञानसे सर्वदेशका ज्ञान होना—जैसे—बाहर निकली हुई सूंड देखकर जलमें डूबे हुए पूरे हाथीका ज्ञान होना।

५. अनुक्त—वचनसे कहे, बिना अभिप्रायसे ज्ञान लेना। जैसे—मुँहकी सूरत तथा हाथ आदिके इशारेसे प्यासे मनुष्यका ज्ञान होना।

६. ध्रुव—बहुत कालतक जैसाका तैसा ज्ञान होते रहना।

७. एक—अल्प वा एक पदार्थका ज्ञान। जैसे—एकसदृश गेंहुओंका ज्ञान।

९. अक्षिप्र—चिरग्रहण—किसी पदार्थको धीरे धीरे बहुत समयमें जानना।

१०. निसृत—बाहर निकले हुये प्रकट पदार्थोंका ज्ञान होना।

११. उक्त—शब्द सुननेके बाद ज्ञान होना।

१२. अध्रुव—जो क्षण क्षण हीन अधिक होता रहे उसे अध्रुव ज्ञान कहते हैं॥ १६॥

अर्थस्य ॥ १७ ॥

अर्थ—ऊपर कहे हुए बहु आदि बारह भेद पदार्थ-द्रव्यके हैं अर्थात् बहु आदि विशेषण विशिष्ट पदार्थके ही अवग्रह आदि ज्ञान होते हैं*॥ १७॥

---

* किसीका मत है कि चक्षु आदि इन्द्रियां, रूप, आदि गुणोंको ही जानती है क्योंकि इन्द्रियोंका सन्निकर्ष (सम्बन्ध) उन्हींके साथ होता है। उस मतका खण्डन करनेके लिए ही ग्रन्थकर्ताने 'अर्थस्य' यह सूत्र लिखा है। इससे सिद्ध होता है कि इन्द्रियोंका सम्बन्ध पदार्थके ही साथ होता है, केवल गुणके साथ नहीं होता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अवग्रह ज्ञानमें विशेषता—

व्यंजनस्यावग्रहः ॥ १८ ॥

अर्थ—(व्यञ्जनस्य) अप्रकट रूप शब्दादि पदार्थोंका (अवग्रहः) सिर्फ अवग्रह ज्ञान होता है। ईहादिक तीन ज्ञान नहीं होते।

भावार्थ—अवग्रहके दो भेद हैं—१. व्यञ्जनावग्रह और २. अर्थावग्रह।

व्यञ्जनावग्रह—अव्यक्त-अप्रकट पदार्थके अवग्रहको व्यञ्जनावग्रह कहते हैं।

अर्थावग्रह—व्यक्त-प्रकट पदार्थके अवग्रहको अर्थावग्रह कहते हैं॥ १८॥

न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम् ॥ १९ ॥

अर्थ—(चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम्) नेत्र और मनसे व्यञ्जनावग्रह (न) नहीं होता है❀॥ १९॥

श्रुतज्ञानका वर्णन; श्रुतज्ञानकी उत्पत्तिका क्रम और भेद—

श्रुतं मतिपूर्वं द्व्यनेकद्वादशभेदम् ॥ २० ॥

❀ बहु आदि १२ पदार्थोंके अवग्रह आदि ४ प्रकारके ज्ञान, पांच इन्द्रियां और मन इन छहकी सहायतासे होते हैं, इसलिये १२×४=४८×६=२८८ भेद हुये। इनमें व्यञ्जनावग्रहके १२×४=४८ भेद जोड़नेसे कुल २८८+४८=३३६ मतिज्ञानके भेद होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—(श्रुतम्) श्रुतज्ञान (मतिपूर्वम्*) मतिज्ञानपूर्वक होता है अर्थात् मतिज्ञानके पश्चात् होता है। और वह श्रुतज्ञान (द्व्यनेकद्वादश-भेदम्) दो, अनेक तथा बारह भेदवाला है।

भावार्थ—श्रुतज्ञान मतिज्ञानके बादमें होता है। उसके दो भेद हैं १–अङ्ग बाह्य और अङ्ग प्रविष्ट। उनमेंसे अङ्ग बाह्यके अनेक भेद हैं और अङ्ग प्रविष्टके १–आचारांग, २–सूत्रकृताङ्ग, ३–स्थानाङ्ग, ४–समवायाङ्ग, ५–व्याख्याप्रज्ञप्ति अङ्ग, ६–ज्ञातृधर्मकथाङ्ग, ७–उपासकाध्ययनाङ्ग, ८–अन्तकृद्दशाङ्ग, ९–अनुत्तरोपपादिकदशाङ्ग, १०–प्रश्नव्याकरणाङ्ग, ११–विपाकसूत्राङ्ग, और १२–दृष्टिप्रवादाङ्ग ये बारह भेद हैं। इनमेंसे दृष्टिप्रवाद नामक बारहवें अङ्गके ५ भेद हैं—१–परिकर्म, २–सूत्र ३–प्रथमानुयोग, ४–पूर्वगत और ५–चूलिका। परिकर्मके ५ भेद हैं। १–व्याख्याप्रज्ञप्ति, २–द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, ३–जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, ४–सूर्यप्रज्ञप्ति और ५–चन्द्रप्रज्ञप्ति। चूलिकाके ५ भेद हैं—१–जलगता, २–स्थलगता, ३–मायागता, ४–आकाशगता और ५–रूपगता। सूत्रगत और प्रथमानुयोगके एक२ ही भेद हैं। पूर्वगतके १४ भेद हैं—१–उत्पाद २–अग्रायणी, ३–वीर्यानुवाद, ४–अस्तिनास्तिप्रवाद, ५–ज्ञानप्रवाद, ६–सत्यप्रवाद, ७–आत्मप्रवाद, ८–कर्मप्रवाद, ९–प्रत्याख्यान, १०–विद्यानुवाद, ११–कल्याणानुवाद, १२–प्राणावायप्रवाद, १३–क्रियाविशाल और १४–लोकबिन्दु। इन सबके पदोंका प्रमाण तथा विषय वगैरह राजवार्तिक आदि उच्च ग्रन्थोंसे जानना चाहिये।

---

* पूर्वका अर्थ कारण भी होता है, इसलिये 'मतिपूर्वक' इस पदका अर्थ 'मतिज्ञान है कारण जिसका' यह भी हो सकता है। 'मतिः पूर्वमस्य मतिपूर्वं–मतिकारणं इत्यर्थः।'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मतिज्ञानके ३३६ भेद

मतिज्ञान

	१ अवग्रह		२ ईहा	३ अवाय	४ धारणा
	व्यञ्जनावग्रह	अर्थावग्रह			
	बहु	बहु	बहु	बहु	बहु
	बहुविध	बहुविध	बहुविध	बहुविध	बहुविध
	क्षिप्र	क्षिप्र	क्षिप्र	क्षिप्र	क्षिप्र
	अनि:सृत	अनि:सृत	अनि:सृत	अनि:सृत	अनि:सृत
	अनुक्त	अनुक्त	अनुक्त	अनुक्त	अनुक्त
	ध्रुव	ध्रुव	ध्रुव	ध्रुव	ध्रुव
	एक	एक	एक	एक	एक
	एकविध	एकविध	एकविध	एकविध	एकविध
	अक्षिप्र	अक्षिप्र	अक्षिप्र	अक्षिप्र	अक्षिप्र
	नि:सृत	नि:सृत	नि:सृत	नि;सृत	नि:सृत
	उक्त	उक्त	उक्त	उक्त	उक्त
	अध्रुव	अध्रुव	अध्रुव	अध्रुव	अध्रुव
इन्द्रियाँ	स्पर्शन, रसना, घ्राण, कर्ण	स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण, मन ।	स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण, मन ।	स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण, मन ।	स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण, मन ।
	१२×४	१२×६	१२×६	१२×६	१२×६
	४८ +	७२ +	७२ +	७२ +	७२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

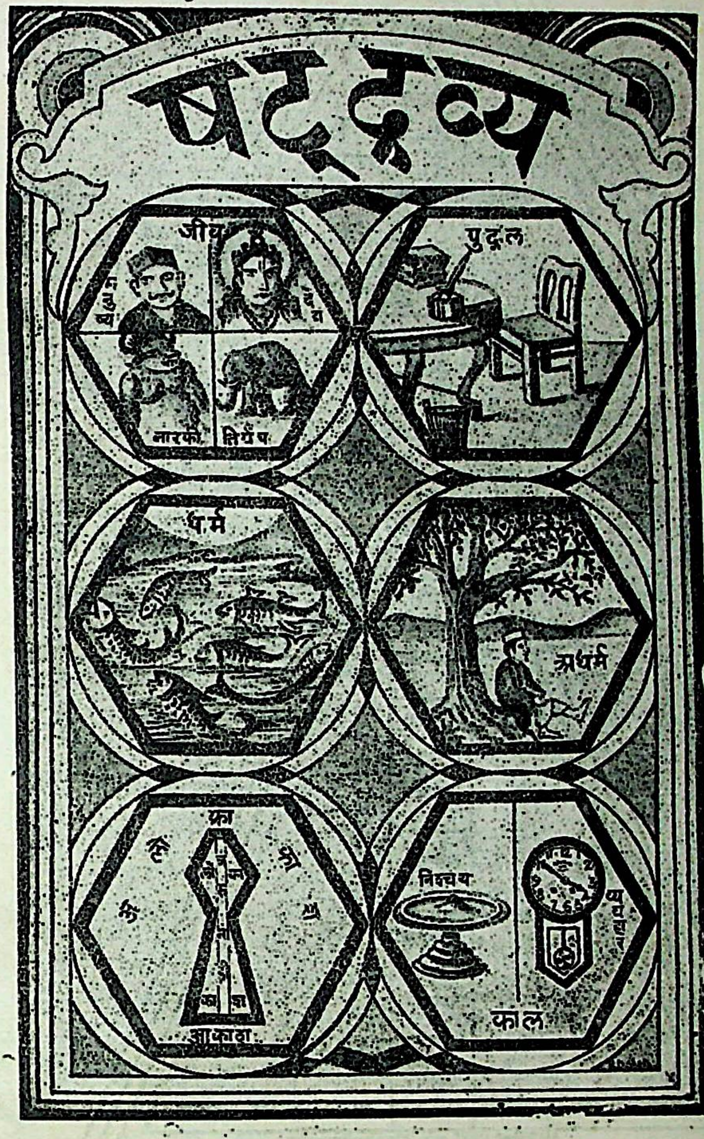

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तीन लोक की रचना

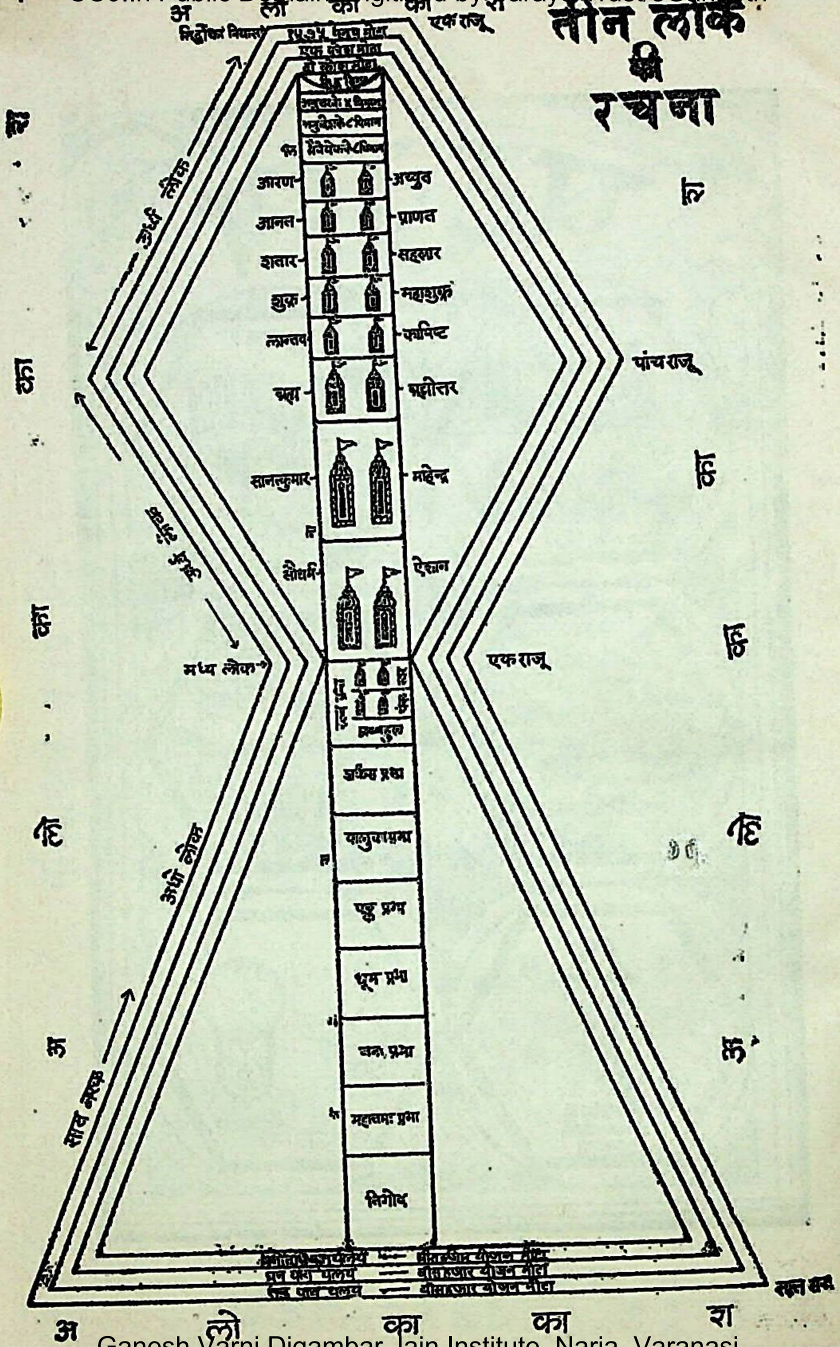

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

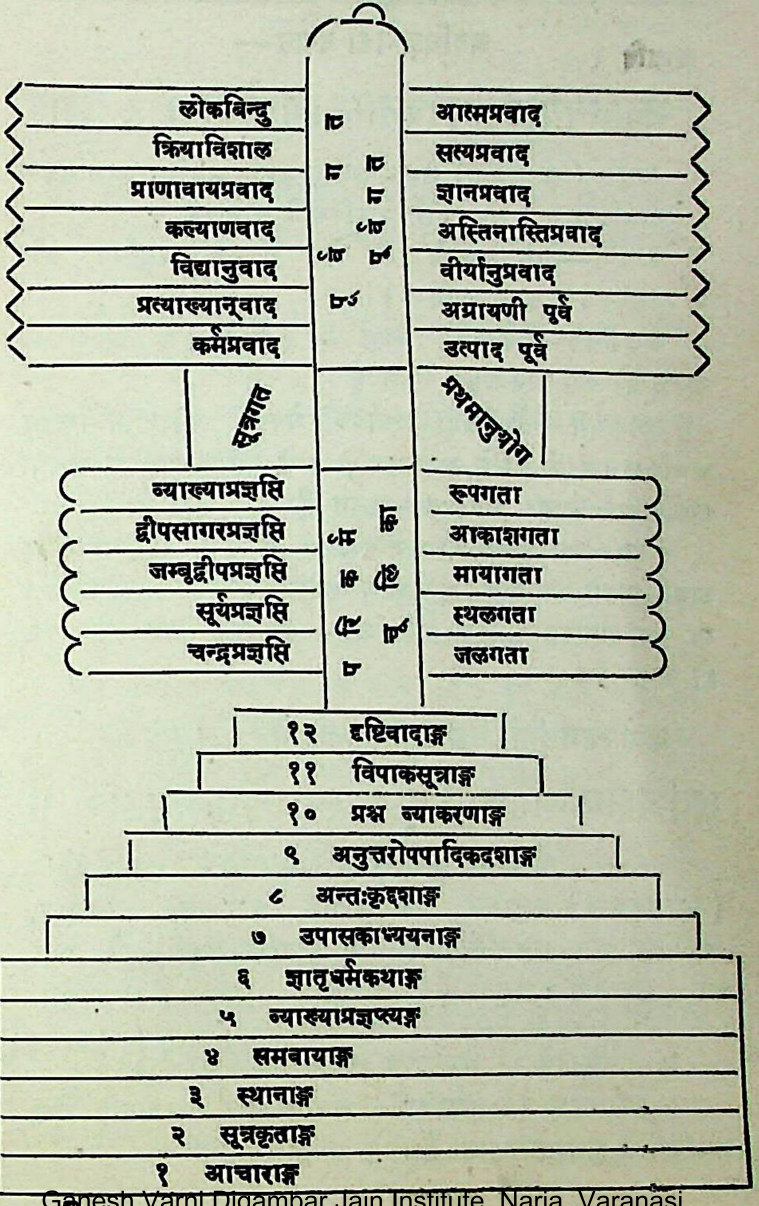

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अवधिज्ञानका वर्णन—

भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणाम्* ॥ २१ ॥

अर्थ—(भवप्रत्ययः) भवप्रत्यय नामका (अवधिः) अवधिज्ञान (देवनारकाणाम्) देव और नारकियोंके होता है।÷

भावार्थ—अवधिज्ञानके दो भेद हैं—१ भवप्रत्यय और २ गुणप्रत्यय (क्षायोपशमिक)।

भवप्रत्यय—देव और नरक भव (पर्याय) के कारण जो उत्पन्न हो उसे भवप्रत्यय कहते हैं।

गुणप्रत्यय—जो किसी पर्याय-विशेषकी अपेक्षा न रखकर अवधिज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमसे होवे उसे गुणप्रत्यय अथवा क्षयोपशमनिमित्तक अवधिज्ञान कहते हैं।

नोट—यहां इतना स्मरण रखना चाहिये कि भवप्रत्यय अवधिज्ञानमें भी अवधिज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम रहता है। पर वह क्षयोपशम देव और नरक पर्यायमें नियमसे प्रकट हो जाता है।

क्षयोपशम निमित्तक अवधिज्ञानके भेद और स्वामी—

क्षयोपशमनिमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम् ॥ २२ ॥

अर्थ—(क्षयोपशमनिमित्तः) क्षयोपशम निमित्तक अवधिज्ञान (षड्विकल्पः) अनुगामी, अननुगामी, वर्धमान, हीयमान, अवस्थित और अनवस्थित इस प्रकार छह भेदवाला है और वह (शेषाणाम्) मनुष्य तथा तिर्यञ्चोंके [भवाद] होता है।

---

* तीर्थङ्करोंके भी भवप्रत्यय अवधिज्ञान होता है।

÷ सम्यग्दृष्टि देव नारकियोंके अवधि और मिथ्यादृष्टि देव नारकियोंके कुअवधि होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुगामी—जो अवधिज्ञान सूर्यके प्रकाशकी तरह जीवके साथ साथ जावे उसे अनुगामी कहते हैं। इसके तीन भेद हैं—१-क्षेत्रानुगामी, २-भवानुगामी और ३-उभयानुगामी।

अननुगामी—जो अवधिज्ञान साथ नहीं जावे उसे अननुगामी कहते हैं। इसके तीन भेद हैं—क्षेत्राननुगामी, २-भवाननुगामी, और ३-उभयाननुगामी।

वर्द्धमान—जो शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी कलाओंकी तरह बढ़ता रहे उसे वर्द्धमान कहते हैं।

हीयमान—जो कृष्णपक्षके चन्द्रमाकी कलाओंकी तरह घटता रहे उसे हीयमान कहते हैं।

अवस्थित—जो अवधिज्ञान एकसा रहे, न घटे न बढ़े उसे अवस्थित कहते हैं। जैसे सूर्य अथवा तिल आदिके चिह्न।

अनवस्थित—जो हवासे प्रेरित जलकी तरङ्गकी तरह घटता बढ़ता रहे-एकसा न रहे उसे अनवस्थित अवधिज्ञान कहते हैं ॥२२॥

दूसरे ग्रन्थोंमें अवधिज्ञानके नीचे लिखे हुए तीन भेद भी बतलाये हैं : १-देशावधि, २-परमावधि, ३-सर्वावधि। इनका स्वरूप और विषय अन्य ग्रन्थोंसे जानना चाहिये।

मनःपर्यय ज्ञानके भेद—

ऋजुविपुलमती मनःपर्ययः ॥२३॥

अर्थ—(मनःपर्ययः) मनःपर्ययज्ञान (ऋजुविपुलमती) ऋजुमति और विपुलमतिके भेदसे दो प्रकारका है।

ऋजुमति—जो मन वचन कायकी सरलतासे चिंतित, दूसरेके मनमें स्थित पदार्थको जाने, उसे ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विपुलमति—जो सरल तथा कुटिलरूपसे चिंतित परके मनमें स्थित पदार्थको जाने उसे विपुलमति मनःपर्ययज्ञान कहते हैं ॥२३॥

ऋजुमति और विपुलमतिमें अन्तर—

विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः ॥ २४ ॥

अर्थ—(विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्याम्) परिणामोंकी शुद्धता और अप्रतिपात-केवलज्ञान होनेके पहले नहीं छूटना, इन दो बातोंसे (तद्विशेषः)—ऋजुमति और विपुलमतिमें विशेषता है।

भावार्थ—ऋजुमतिकी अपेक्षा विपुलमतिमें आत्माके भावोंकी शुद्धता अधिक होती है। तथा ऋजुमति होकर छूट भी जाता है, पर विपुलमति केवलज्ञानके पहले नहीं छूटता। ऋजुमति उन मुनियोंके भी हो जाता जो ऊपरके गुणस्थानोंसे गिरकर नीचे आ जाते हैं पर विपुलमति जिन्हें होता है उन मुनियोंका नीचेके गुणस्थानोंमें पतन नहीं होता। दोनों भेदोंमें मनःपर्यय ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमकी अपेक्षा ही हीनाधिकता रहती है ॥ २४ ॥

अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानमें विशेषता—

विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्योऽवधिमनःपर्यययोः।२५

अर्थ—(अवधिमनःपर्यययोः) अवधि और मनःपर्ययज्ञानमें (विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्यः) विशुद्धता, क्षेत्र, स्वामी+ और विषयकी अपेक्षा [विशेषः भवति] विशेषता होती है।

भावार्थ—विशुद्धि आदिकी न्यूनाधिकतासे अवधि और मनःपर्ययज्ञानमें भेद होता है ॥ २५ ॥

\+ मनःपर्ययज्ञान उत्तम ऋद्धिधारी मुनियोंके ही होता है, पर अवधिज्ञान चारों गतियोंके जीवोंको हो सकता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अवधिज्ञानके भेद

[क]

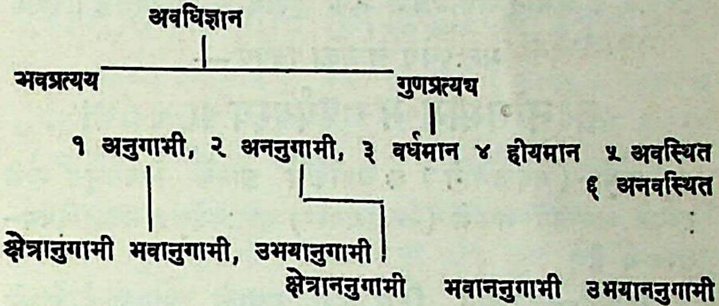

[ख]

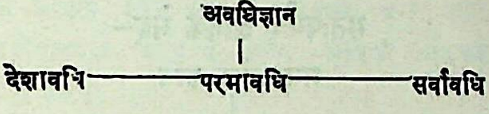

मति और श्रुतज्ञानका विषय—

मतिश्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्वसर्वपर्यायेषु ॥ २६ ॥

अर्थ—(मतिश्रुतयोः) मतिज्ञान और श्रुतज्ञानका (निबन्धः) विषयसम्बन्ध (असर्वपर्यायेषु) सब पर्यायोंसे रहित (द्रव्येषु) जीव पुद्गल आदि सब द्रव्योंमें [अस्ति] है।

भावार्थ—इन्द्रिय और मनकी सहायतासे उत्पन्न हुए मति-श्रुतज्ञान, रूपी अरूपी सभी द्रव्योंको जानते हैं पर उनकी सभी पर्यायोंको नहीं जान पाते। इसलिये उनका विषय सम्बंध द्रव्योंकी कुछ पर्यायोंके साथ होता है॥ २६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अवधिज्ञानका विषय

रूपिष्ववधेः ॥ २७ ॥

अर्थ—(अवधेः) अवधिज्ञानका विषय–सम्बन्ध (रूपिषु) ×रूपी द्रव्योंमें है अर्थात् अवधिज्ञान रूपी पदार्थोंको जानता है ॥२७॥

मनःपर्यय ज्ञानका विषय—

तदनन्तभागे मनःपर्ययस्य ॥ २८ ॥

अर्थ—(तदन्तभागे) *सर्वावधि ज्ञानके विषयभूत रूपी द्रव्यके अनन्तवें भागमें (मनःपर्ययस्य) मनःपर्यय ज्ञानका विषय–सम्बन्ध है।

भावार्थ—सर्वावधि जिस रूपी द्रव्यको जानता है उससे बहुत सूक्ष्म रूपी द्रव्यको मनःपर्यय ज्ञान जानता है ॥ २८ ॥

मनःपर्यय ज्ञानके भेद—

मनःपर्यय ज्ञान

१ ऋजुमति — २ विपुलमति

केवलज्ञानका विषय—

सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य ॥ २९ ॥

अर्थ—(केवलस्य) केवलज्ञानका विषय–सम्बन्ध (सर्वद्रव्य-

×जिसमें रूप रस गन्ध स्पर्श शब्द पाया जावे ऐसे पुद्गल-द्रव्य तथा पुद्गलद्रव्यसे सम्बन्ध रखनेवाले संसारी जीव भी रूपी कहलाते हैं। *अवधिज्ञानका सबसे ऊँचा भेद।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर्यायेषु) सब द्रव्य और उनकी सब पर्यायोंमें है। अर्थात् केवलज्ञान एकसाथ सब पदार्थोंको जानता है ॥ २९ ॥

एक जीवके एकसाथ कितने ज्ञान हो सकते हैं ?—

एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः॥३०

अर्थ—(एकस्मिन्) एक जीवमें (युगपत्) एकसाथ (एकादीनि) एकको आदि लेकर (आचतुर्भ्यः) चार ज्ञानतक (भाज्यानि) विभक्त करनेके योग्य हैं अर्थात् हो सकते हैं।

भावार्थ—यदि एक ज्ञान हो तो केवलज्ञान होता है। दो हों तो मति श्रुत होते हैं। तीन हों तो मति श्रुत अवधि अथवा मति श्रुत और मनःपर्यय होते हैं। यदि चार हों तो मति श्रुत अवधि और मनःपर्यय ज्ञान होते हैं। एकसाथ पांचों ज्ञान किसी भी जीवके नहीं होते। प्रारम्भके चार ज्ञान ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमसे होते हैं और अन्तका केवलज्ञान क्षयसे होता है ॥ ३० ॥

मति श्रुत और अवधिज्ञानमें मिथ्यापन—

मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च ॥ ३१ ॥

अर्थ—(मतिश्रुतावधयो) मति श्रुत और अवधि ये तीन ज्ञान (विपर्ययः च) विपर्यय भी होते हैं। ऊपर कहे हुए पांचों ज्ञान सम्यग्ज्ञान होते हैं परन्तु मति श्रुत और अवधि ये तीन ज्ञान मिथ्याज्ञान भी होते हैं। इन्हें क्रमसे कुमति ज्ञान, कुश्रुत ज्ञान और कुअवधि ज्ञान (विभङ्गावधि) कहते हैं+।

+ ५ सम्यक् और ३ मिथ्या इस प्रकार सब मिलाकर ज्ञानोपयोगके ८ भेद होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नोट—इन तीन ज्ञानोंमें मिथ्यापन मिथ्यादर्शनके संसर्गसे होता है। जैसे मीठे दूधमें कडुआपन कडुवी तूम्बड़ीके संसर्गसे होता है॥ ३१ ॥

प्रश्न—जिस प्रकार पदार्थोंको सम्यग्दृष्टि जानता है उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि भी जानता है, फिर सम्यग्दृष्टिका ज्ञान सम्यग्ज्ञान और मिथ्यादृष्टिका ज्ञान मिथ्याज्ञान क्यों कहलाता है ?

उत्तर—

सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ॥ ३२ ॥

अर्थ—(यदृच्छोपलब्धेः) अपनी इच्छानुसार जैसा तैसा जाननेके कारण (सदसतोः) सत् और असत् पदार्थोंमें (अविशेषात्) विशेष ज्ञान न होनेसे (उन्मत्तवत्) पागल पुरुषके ज्ञानकी तरह मिथ्यादृष्टिका ज्ञान मिथ्याज्ञान ही होता है।

भावार्थ—जैसे पागल पुरुष जब स्त्रीको स्त्री और माताको माता समझ रहा है तब भी उसका ज्ञान मिथ्या ज्ञान कहलाता है, क्योंकि उसके माता और स्त्रीके बीचमें कोई स्थिर अंतर नहीं है, वैसे ही मिथ्यादृष्टि जब पदार्थोंको ठीक जान रहा है तब भी सत् असत्का निर्णय नहीं होनेसे उनका ज्ञान मिथ्याज्ञान ही कहलाता है॥ ३२ ॥

नयोंके भेद—

नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दसमभिरूढैवं-भूता नयाः ॥ ३३ ॥

अर्थ—नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवंभूत ये सात नय हैं*।

---

* वस्तुके अनेक धर्मोंमेंसे किसी एककी मुख्यता कर अन्य धर्मोंका विरोध न करते हुए पदार्थका जानना सो नय है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नैगम नय—जो अनिष्पन्न अर्थके संकल्प मात्रको ग्रहण करता है वह नैगम नय है। जैसे लकड़ी पानी आदि सामग्री इकट्ठी करनेवाले पुरुषसे कोई पूछता है कि आप क्या कर रहे हैं, तब वह उत्तर देता है कि रोटी बना रहा हूं। यद्यपि उस समय वह रोटी नहीं बना रहा है तथापि नैगम नय उसके इस उत्तरको सत्यार्थ मानता है।

संग्रह नय—जो नय अपनी जातिका विरोध न करता हुआ एकपनेसे समस्त पदार्थोंको ग्रहण करता है उसे संग्रह नय कहते हैं। जैसे सत्, द्रव्य, घट इत्यादि।

व्यवहार नय—जो नय संग्रह नयके द्वारा ग्रहण किये हुए पदार्थोंको विधिपूर्वक भेद करता है वह व्यवहार नय है। जैसे सत् दो प्रकारका है—द्रव्य और गुण। द्रव्यके ६ भेद हैं—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल। गुणके दो भेद हैं—सामान्य और विशेष। इस तरह यह नय वहां तक भेद करता जाता है जहां तक भेद हो सकते हैं।

ऋजूसूत्र नय—जो सिर्फ वर्तमान कालके पदार्थोंको ग्रहण करे उसे ऋजूसूत्र नय कहते हैं।

शब्द नय—जो नय लिङ्ग संख्या कारक आदिके व्यभिचारको दूर करता है वह शब्द नय है। यह नय लिङ्गादिके भेदसे पदार्थको भेदरूप ग्रहण करता है। जैसे दार (पु०) भार्या (स्त्री०) कलत्र (न०) ये तीनों शब्द भिन्न लिङ्गवाले होकर भी एक ही स्त्री पदार्थके वाचक हैं पर यह नय स्त्री पदार्थको लिङ्गके भेदसे तीन रूप मानता है।

समभिरूढ नय—जो नय नाना अर्थोंका उलङ्घन कर एक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थको रूढ़िसे ग्रहण करता है उसे समभिरूढ़ नय कहते हैं। जैसे बचन आदि अनेक× अर्थोंका वाचक गो शब्द किसी प्रकरणमें गाय अर्थका बाचक होता है। यह नय पर्यायके भेदसे अर्थको भेदरूप ग्रहण करता है। जैसे-इन्द्र शक्र पुरन्दर ये तीनों शब्द इन्द्रके नाम हैं पर यह नय इन तीनोंके भिन्न२ अर्थ ग्रहण करता है।

एवंभूत—जिस शब्दका जिस क्रियारूप अर्थ है उसी क्रिया-रूप परिणमते हुए पदार्थको जो मन ग्रहण करता है उसे एवंभूत नय कहते हैं। जैसे पुजारीको पूजा करते समय ही पुजारी कहना।*

इतिश्री उमास्वामिविराचिते मोक्षशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः।

प्रश्नावली

(१) तत्त्व कमसे कम कितने हो सकते हैं ?
(२) सिर्फ सम्यक्चारित्रसे मोक्ष प्राप्त हो सकता है या नहीं ?
(३) निक्षेप किसे कहते हैं ?

×गौः पुमान् वृषभे स्वर्गे खण्डवज्रहिमांशुषु।
स्त्री गवि भूमिदिग्नेत्रवाग्बाणसलिले स्त्रियः॥
इति विश्वलोचनः।

गो शब्दके ११ अर्थ हैं—बल, २ स्वर्ग, ३ खण्ड, ४ वज्र, ५ चन्द्रमा, ६ गाय, ७ भूमि, ८ दिशा, ९ नेत्र, १० वाणी (स्त्री) और जल (स्त्री बहुवचनांत)

*नय और निक्षेपमें अंतरः-नय ज्ञानके भेद हैं और निक्षेप उस ज्ञानके अनुसार किये गये व्यवहारको कहते हैं। इनमें ज्ञान और ज्ञेय, विषयी अथवा विषयका भेद है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(४) नय और प्रमाणमें कितना अन्तर है ?

(५) श्रुतज्ञान पहले होता है या मतिज्ञान ?

(६) क्षयोपशम निमित्तक अवधिज्ञानके भेद गिनाओ ।

(७) मनःपर्यय और अवधिज्ञानमें क्या अन्तर है ?

(८) क्या अवधिज्ञानके विना भी मनःपर्यय ज्ञान हो सकता है ?

(९) संग्रह नयका क्या स्वरूप है ? उदाहरण सहित बताओ ।

(१०) नय और निक्षेपमें क्या अन्तर है ?

(११) क्या नय भी मिथ्या होते हैं ? यदि होते हैं तो कब ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वितीय अध्याय

जीवके असाधारण भाव—

**औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य।
स्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ च ॥ १ ॥**

अर्थ:—(जीवस्य) जीवके (औपशमिकक्षायिकौ) औपशमिक और क्षायिक (भावौ) भाव (च मिश्रः) और मिश्र तथा (औदयिकपारिणामिकौ च) औदयिक और पारिणामिक ये पांचों ही भाव (स्वतत्त्वम्) निजके भाव हैं अर्थात् जीवको छोड़कर अन्य किसीमें नहीं पाये जाते।

उपशम तथा औपशमिक भाव—द्रव्य क्षेत्र काल भावके निमित्तसे कर्मकी शक्तिके प्रकट न होनेको उपशम कहते हैं और कर्मोंके उपशमसे आत्माका जो भाव होता है उसे औपशमिक भाव कहते हैं। जैसे निर्मलीके संयोगसे पानीकी कीचड़ नीचे बैठ जाती है और पानी साफ हो जाता है।

क्षय तथा क्षायिकभाव—कर्मोंके समूल बिनाश होनेको क्षय कहते हैं। जैसे पूर्व उदाहरणमें जो कीचड़ नीचे बैठ गई थी उस कीचड़का बिलकुल अलग हो जाना। कर्मोंके क्षयसे जो भाव होता है उसे क्षायिक भाव कहते हैं।

क्षयोपशम तथा क्षायोपशमिक भाव (मिश्र) का लक्षण—वर्तमानकालमें उदय आनेवाले [१]सर्वघाति-स्पर्द्धकोंका [२]उदयाभावी

१—जो जीवके सम्यक्त्व तथा ज्ञानादि अनुजीवी गुणोंको पूरी तौरसे घाते उसे सर्वघाती कहते हैं। २—बिना फल दिये हुए

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्षय तथा उन्हींके आगामीकालमें उदय आनेवाले [3]निषेकोंका सदवस्थारूप उपशम और [4]देशघातिस्पर्द्धकोंका उदय होनेको क्षयोपशम कहते हैं। जैसे पानीकी स्वच्छताको बिलकुल नष्ट करनेवाले कीचड़के परमाणुओंके नीचे बैठ जाने तथा कुछ हलके कीचड़के परमाणुओंके मिले रहनेपर पानीमें स्वच्छास्वच्छ अवस्था होती है। कर्मोंके क्षयोपशमसे जो भाव होता है उसे क्षायोपशमिक भाव कहते हैं।

उदय तथा औदयिक भाव—स्थितिको पूरी करके कर्मोंके फल देनेको उदय कहते हैं और कर्मोंके उदयसे जो भाव होता है उसे औदयिक भाव कहते हैं।

पारिणामिक भाव—जो भाव कर्मोंके उपशम क्षय क्षयोपशम तथा उदयकी अपेक्षा न रखता हुआ आत्माका स्वभाव मात्र हो उसे पारिणामिक भाव कहते हैं.❀

भावोंके भेद—

द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमम् ॥२॥

अर्थ—ऊपर कहे हुए पांचों भाव (यथाक्रमम्) क्रमसे (द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदः) दो, नव, अठारह, इक्कीस और तीन भेदवाले हैं॥ २॥

उदयागत कर्मोंका खिर जाना। ३-एक समयमें जितने कर्म-परमाणु उदयमें आवें उन सबके समूहको निषेक कहते हैं। ४-जो जीवके ज्ञानादि गुणोंको एकदेश घाते।

❀ ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय इन तीन घातिया कर्मोंकी उदय, क्षय और क्षयोपशम ये तीन, मोहनीय कर्मकी उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशम ये चारों तथा शेष कर्मोंकी उदय और क्षय ये दो अवस्थाएँ होती हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

औपशमिकभावके दो भेद—

सम्यक्त्वचारित्रे ॥ ३ ॥

अर्थ—औपशमिक सम्यक्त्व और औपशमिक चारित्र ये दो औपशमिक भावके भेद हैं।

औपशमिक सम्यक्त्व—अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ और मिथ्यात्व, सम्यङ्मिथ्यात्व तथा सम्यक्त्वप्रकृति इन +सात प्रकृतियोंके उपशमसे जो सम्यक्त्व होता है उसे औपशमिक सम्यक्त्व कहते हैं।

औपशमिक चारित्र—अप्रत्याख्यानावरणादि चारित्रमोहनीयकी २१ प्रकृतियोंके उपशमसे जो चारित्र होता है उसे औपशमिक चारित्र कहते हैं॥ ३॥

क्षायिकभावके नौ भेद—

ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि च

अर्थ—केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायिकदान, क्षायिकलाभ, क्षायिकभोग, क्षायिकउपभोग, क्षायिकवीर्य तथा चकारसे क्षायिक-सम्यक्त्व और क्षायिकचारित्र ये नौ क्षायिकभावके भेद हैं।*

केवलज्ञान—जो ज्ञानावरणके क्षयसे हो। केवलदर्शन—जो दर्शनावरणके क्षयसे हो। क्षायिकदान आदि पांच भाव—अंतराय कर्मके ५ भेदोंके क्षयसे होते हैं। क्षायिक सम्यक्त्व—जो ऊपर कही हुई सात प्रकृतियोंके क्षयसे हो। क्षायिकचारित्र—जो ऊपर कही हुई २१ प्रकृतियोंके क्षयसे हो।

+ अनादि मिथ्यादृष्टि और किसी किसी सादि मिथ्यादृष्टिके अनंतानुबंधीको ४ और मिथ्यात्व १ इन पांच प्रकृतियोंके उपशमसे होता है।

* इन नौ भावोंको नौ लब्धियां भी कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्षयोपशमिकभावके अठारह भेद—

ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रित्रिपञ्चभेदाः सम्यक्त्वचारित्रसंयमासंयमाश्च ॥ ५ ॥

अर्थ—(ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रित्रिपञ्चभेदाः) मति श्रुत अवधि मनःपर्यय ये चार ज्ञान, कुमति कुश्रुत कुअवधि ये तीन अज्ञान, चक्षुर्दर्शन, अचक्षुर्दर्शन, अवधिदर्शन ये तीन दर्शन; क्षयोपशमिक दान लाभ भोग उपभोग और वीर्य ये पांच लब्धियां तथा (सम्यक्त्वचारित्रसंयमासंयमाश्च) क्षयोपशमिक सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक चारित्र और संयमासंयम ये अठारह भाव क्षायोपशमिक भाव हैं।

क्षायोपशमिक सम्यक्त्व—अनन्तानुबन्धी क्रोध मान, माया, लोभ तथा मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्व इन सर्वघाति प्रकृतियोंके वर्तमानकालमें उदय आनेवाले निषेकोंका उदयाभावी क्षय तथा उन्हींके आगामी कालमें उदय आनेवाले निषेकोंका सदवस्थारूप उपशम और देशघाति सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय होनेपर सम्यग्दर्शन प्रगट होता है उसे क्षायोपशमिक सम्यक्त्व कहते हैं। इसीका दूसरा नाम वेदक सम्यक्त्व भी है।

क्षायोपशमिक चारित्र—अनन्तानुबन्धी आदि बारह कषायका उदयाभावी क्षय तथा उन्हींके निषेकोंको सदवस्थारूप उपशम और संज्वलन तथा नोकषायका यथासम्भव उदय होनेपर जो चारित्र होता है उसे क्षायोपशमिक चारित्र कहते हैं। इसीका दूसरा नाम सराग-संयम है।

संयमासंयम—अनंतानुबंधी आदि ८ प्रकृतियोंका उदयाभावी क्षय और उन्हींके निषेकोंका सदवस्थारूप उपशम तथा प्रत्याख्याना-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वरणादि १७ प्रकृतियोंका यथासम्भव उदय होनेपर आत्माकी जो विरताविरत अवस्था होती है उसे संयमासंयम कहते हैं॥ ५॥

औदायिकभावके इक्कीस भेद—

गतिकषायलिंगमिथ्यादर्शनाज्ञानासंयतासिद्धलेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्येकैकैकैकषड्भेदाः।६।

अर्थ—नरक तिर्यञ्च मनुष्य और देव ये चार गति; क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार कषाय; स्त्रीवेद, पुंवेद और नपुंसकवेद ये तीन लिंग; मिथ्यादर्शन, ×अज्ञान, असंयम, असिद्धत्व और कृष्ण, नील, कापोत, पीत पद्म शुक्ल ये छह *लेश्याएँ इस तरह सब मिलाकर औदयिकभावके इक्कीस भेद हैं॥ ६॥

पारिणामिकभावके भेद—

जीवभव्याभव्यत्वानि च ॥ ७ ॥

अर्थ—जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व ये तीन पारिणामिक भाव हैं।

नोट—सूत्रमें आये हुए 'च' शब्दसे अस्तित्व वस्तुत्व प्रमेयत्व आदि सामान्य गुणोंका भी ग्रहण होता है।

इस तरह जीवके सब मिलाकर कुल २+९+१८+२१+३=५३ त्रेपन भेद होते हैं॥ ७॥

×औदयिकभावमें जो अज्ञानभाव है वह अभावरूप होता है और क्षायोपशमिक अज्ञानभाव मिथ्यादर्शनके कारण दूषित होता है।

*कषायके उदयसे मिली हुई योगोंकी प्रवृत्तिको लेश्या कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५३ भाव

भाव

- **२ औपशमिक**
  - १ सम्यक्त्व, २ चारित्र
- **९ क्षायिक**
  - १ केवलज्ञान
  - २ केवलदर्शन
  - ३ क्षायिक दान
  - ४ ,, लाभ
  - ५ ,, भोग
  - ६ ,, उपभोग
  - ७ ,, वीर्य
  - ८ ,, सम्यक्त्व
  - ९ ,, चारित्र
- **१८ क्षयोपशमिक**
  - ज्ञान: १ मति, २ श्रुत, ३ अवधि, ४ मनःपर्यय
  - अज्ञान: १ कुमति, २ कुश्रुत, ३ कुअवधि
  - दर्शन: १ चक्षु, २ अचक्षु, ३ अवधि
  - लब्धि: १ दान, २ लाभ, ३ भोग, ४ उपभोग, ५ वीर्य
  - क्षा० सम्यक्त्व-चारित्र
  - संयमासंयम
- **२१ औदयिक**
  - गति: १ नरक, २ तिर्यंच, ३ मनुष्य, ४ देव
  - कषाय: १ क्रोध, २ मान, ३ माया, ४ लोभ
  - लिंग: १ स्त्री, २ पुरुष, ३ नपुंसक
  - मिथ्यादर्शन
  - अज्ञान
  - असंयत
  - असिद्धत्व
  - लेश्या: १ कृष्ण, २ नील, ३ कापोत, ४ पीत, ५ पद्म, ६ शुक्ल
- **३ पारिणामिक** = ५३
  - १ जीवत्व
  - २ भव्यत्व
  - ३ अभव्यत्व

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीवका लक्षण—

उपयोगो लक्षणम्

अर्थ—जीवका (लक्षणम्) लक्षण (उपयोगः) उपयोग [अस्ति] है।

उपयोग—आत्माके चैतन्य गुणसे सम्बन्ध रखनेवाले परिणामको उपयोग कहते हैं। उपयोग जीवका तद्भूत लक्षण है।

उपयोगके भेद—

स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः ॥ ९ ॥

अर्थ—(सः) वह उपयोग मूलमें (द्विविधः) ज्ञानोपयोग+ और दर्शनोपयोगके+के भेदसे दो प्रकारका है। फिर क्रमसे (अष्टचतुर्भेदः) आठ और चार भेदसे सहित है, अर्थात् ज्ञानोपयोगके मति श्रुत अवधि मनःपर्यय और केवलज्ञान तथा कुमति कुश्रुत और कुअवधि ये आठ भेद हैं। एवं दर्शनोपयोगके चक्षुर्दर्शन अचक्षुर्दर्शन अवधिदर्शन और केवलदर्शन ये चार भेद हैं। इस प्रकार दोनों भेदोंके मिलानेसे उपयोगके बारह भेद हो जाते हैं॥ ९॥

+ ज्ञानोपयोग पदार्थको विकल्प सहित जानता है और दर्शनोपयोग विकल्परहित जानता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपयोगके भेद

- उपयोग
  - दर्शनोपयोग
    - १ चक्षुर्दर्शन
    - २ अचक्षुर्दर्शन
    - ३ अवधिदर्शन
    - ४ केवलदर्शन
  - ज्ञानोपयोग
    - मतिज्ञान
      - ५ कुमति
      - ६ सुमति
    - श्रुतज्ञान
      - ७ कुश्रुत
      - ८ सुश्रुत
    - अवधिज्ञान
      - ९ कुअवधि
      - १० सुअवधि
    - ११ मन:पर्यय
    - १२ केवलज्ञान

दर्शनोपयोग ४
ज्ञानोपयोग ८
१२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीवके भेद—

संसारिणो मुक्ताश्च ॥ १० ॥

अर्थ—वे जीव (संसारिण:) संसारी (च) और (मुक्ता:) मुक्त इस प्रकार दो भेदवाले हैं। कर्म सहित जीवोंको संसारी और कर्मरहित जीवोंको मुक्त कहते हैं॥ १० ॥

संसारी जीवोंके भेद—

समनस्काऽमनस्का: ॥ ११ ॥

अर्थ—संसारी जीव समनस्क-सैनी और अमनस्क-असैनीके भेदसे दो प्रकारके होते हैं।

समनस्क—मनसहित जीव।

अमनस्क—मनरहित जीव॥ ११ ॥+

संसारी जीवोंके अन्य प्रकारसे भेद—

संसारिणस्त्रसस्थावरा: ॥ १२ ॥

अर्थ—(संसारिण:) संसारी जीव (त्रस स्थावरा:) त्रस और स्थावरके भेदसे दो प्रकारके हैं।

स्थावरोंके—

पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतय: स्थावरा: ॥ १३ ॥

अर्थ—पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक

+ एकेन्द्रियसे लेकर चतुरिन्द्रिय तक जीव नियमसे असैनी होते हैं। तिर्यञ्च पंचेन्द्रियोंमें सैनी असैनी दोनों होते हैं। शेष तीन गतियोंके जीव नियमसे सैनी ही होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और वनस्पतिकायिक ये पांच प्रकारके स्थावर हैं। इनके सिर्फ स्पर्शन इन्द्रिय होती है।

स्थावर—स्थावर नामकर्मके उदयसे प्राप्त हुई जीवकी अवस्था-विशेषको स्थावर कहते हैं ॥१३॥

त्रस जीवोंके भेद—

द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः ॥ १४ ॥

अर्थ—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीव त्रस कहलाते हैं।

त्रस—त्रस नामकर्मके उदयसे प्राप्त हुई जीवकी अवस्था-विशेषको त्रस कहते हैं ॥१४॥

इन्द्रियोंकी गणना—

पंचेन्द्रियाणि ॥ १५ ॥

अर्थ—सब इन्द्रियां पांच हैं।

इन्द्रिय—जिनसे जीवकी पहिचान हो उन्हें इन्द्रियां कहते हैं ॥ १५ ॥

इन्द्रियोंके मूल भेद—

द्विविधानि ॥ १६ ॥

अर्थ—सब इन्द्रियां द्रव्य इन्द्रिय और भाव इन्द्रियके भेदसे दो दो प्रकारकी हैं ॥१६॥

द्रव्येन्द्रियका स्वरूप—

निर्वृत्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम् ॥१७॥

अर्थ—निर्वृति और उपकरणको द्रव्येन्द्रिय कहते हैं।

निर्वृति—पुद्गलविपाकी नामकर्मके उदयसे निर्वृत-रची गई नियत आकारवाली पुद्गलकी रचनाविशेषको निर्वृति कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसके २ भेद हैं-१ आभ्यान्तर निर्वृत्ति और २-वाह्य निर्वृत्ति। उत्सेधांगुलके असंख्येय भाग प्रमाण शुद्ध आत्माके प्रदेशोंका चक्षु आदि इन्द्रियोंके आकार होनेवाले परिणमनको आभ्यन्तर निर्वृत्ति कहा है, तथा इन्द्रिय व्यपदेशको प्राप्त हुए आत्माके उन प्रदेशोंमें नामकर्मके उदयसे होनेवाले चक्षु आदि इन्द्रियोंके आकार परिणत पुद्गल प्रचयको वाह्य निर्वृत्ति कहते हैं।

उपकरण—जो निर्वृत्तिका उपकार करे उसे उपकरण कहते हैं, इसके भी दो भेद हैं-१ आभ्यन्तर उपकरण और २ बाह्य उपकरण जैसे चक्षु इन्द्रियमें जो कृष्ण-शुक्ल मण्डल है वह आभ्यन्तर उपकरण है। और पलकें तथा विरूनी वगैरह बाह्य उपकरण हैं ॥७॥

भाव इन्द्रियका स्वरूप—

लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम् ॥ १८ ॥

अर्थ—लब्धि और उपयोगको भावेन्द्रिय कहते हैं।

लब्धि—ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमविशेषको लब्धि कहते हैं।

उपयोग—जिसके निमित्तसे आत्मा द्रव्येन्द्रियकी निर्वृत्तिके प्रति व्यापार करता है उस निमित्तसे होनेवाले आत्माके परिणामको उपयोग कहते हैं ॥१८॥

पञ्च इन्द्रियोंके नाम—

स्पर्शनरसनाघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि ॥ १९ ॥

अर्थ—स्पर्शन (त्वचा) रसना (जीभ) घ्राण (नाक) चक्षुः (आंख) और श्रोत्र (कान) ये पांच इन्द्रियां हैं ॥१९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन्द्रियोंके विषय—

स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दास्तदर्थाः ॥ २० ॥

अर्थ—स्पर्श, रस, गन्ध, रूप और शब्द ये पांच क्रमसे ऊपर कही हुई पांच इन्द्रियोंके विषय हैं। अर्थात् उक्त इन्द्रियां इन विषयोंको जानती हैं ॥२०॥

मनका विषय—

श्रुतमनिन्द्रियस्य ॥ २१ ॥

अर्थ—(अनिन्द्रियस्य) मनका विषय (श्रुतम्) श्रुतज्ञान-गोचर पदार्थ है। अथवा मनका प्रयोजन श्रुतज्ञान है ॥२१॥

इन्द्रियोंके स्वामी—

वनस्पत्यन्तानमेकम् ॥ २२ ॥

अर्थ—(वनस्पत्यन्तानाम्) वनस्पतिकाय है अन्तमें जिनके ऐसे जीवोंके अर्थात् पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक जीवोंके (एकम्) एक स्पर्शन इन्द्रिय होती है ॥२२॥

कृमिपिपीलिकाभ्रमरमनुष्यादीनामेकैकवृद्धानि ॥ २३

अर्थ—लट आदि, चिऊँटी आदि, भौंरा आदि तथा मनुष्य आदिके क्रमसे एक एक इन्द्रिय बढती हुई हैं। अर्थात् लट आदिके प्रारम्भकी दो, चिऊँटी आदिके तीन, भौंरा आदिके चार और मनुष्य आदिके पांचों इन्द्रियां होती हैं ॥२३॥

समनस्ककी परिभाषा—

संज्ञिनः समनस्काः ॥ २४ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—(समनस्काः) मन सहित जीव (संज्ञिनः) संज्ञी× कहलाते हैं।

संज्ञा—हित अहितकी परीक्षा तथा गुणदोषका विचार वा स्मरणादिक करनेको संज्ञा कहते हैं ॥२४॥

प्रश्न—जबकि जीवोंकी हिताहितमें प्रवृत्ति मनकी सहायतासे ही होती है, तब वे विग्रहगतिमें मनके बिना भी नवीन शरीरकी प्राप्तिके लिये गमन क्यों करते हैं ?

उत्तर—

विग्रहगतौ कर्मयोगः ॥ २५ ॥

अर्थ—(विग्रहगतौ) विग्रहगतिमें (कर्मयोगः) कार्मण काययोग होता है। उसीकी सहायतासे जीव एक गतिसे दूसरी गतिमें गमन करता है।

विग्रहगति—एक शरीरको छोडकर दूसरे शरीरकी प्राप्तिके लिये गमन करना विग्रहगति÷ है।

कर्मयोग—ज्ञानावरणादि कर्मोंके समूहको कार्मण कहते हैं उसके निमित्तसे आत्माके प्रदेशोंमें जो हलन चलन होता है उसे कर्मयोग अथवा कार्मणयोग कहते हैं ॥२५॥

गमन किस प्रकार होता है ?

अनुश्रेणि गतिः ॥ २६ ॥

×संज्ञी जीव पंचेन्द्रिय ही होते हैं। ÷"विग्रहार्था गतिर्विग्रह-गतिः" विग्रह-शरीरके लिये जो गति हो वह विग्रह गति है। "शरीरं वर्ष्म विग्रहः" इत्यमरः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—(गतिः) जीव और पुद्गलोंका गमन (अनुश्रेणि) श्रेणिके अनुसार ही होता है।

श्रेणि—लोकके मध्यभागसे ऊपर, नीचे तथा तिर्यक् दिशामें क्रमसे सन्निवेश (रचना) को प्राप्त हुए आकाश-प्रदेशोंकी पंक्तिको श्रेणि कहते हैं।

नोटः—जो जीव मरकर दूसरे शरीरके लिये गमन करता है उसीका गमन विग्रहगतिमें श्रेणिके अनुसार होता है, अन्यका नहीं। इसी तरह जो पुद्गलका शुद्ध परमाणु एक समयमें चौदह राजु गमन करता है उसीका श्रेणिके अनुसार गमन होता है, सब पुद्गलोंका नहीं।

मुक्त जीवोंकी गति—

अविग्रहा जीवस्य ॥ २७ ॥

अर्थ—(जीवस्य) मुक्त× जीवकी गति (अविग्रहा) वक्रता रहित-सीधी होती है।

भावार्थ—श्रेणिके अनुसार होनेवाली गतिके दो भेद हैं—१ विग्रहवती (जिसमें मुड़ना पड़े) और २ अविग्रहा (जिसमें मुड़ना न पड़े।) इनमेंसे कर्मोंका क्षयकर सिद्धशिलाके प्रति गमन करनेवाले जीवोंके अविग्रहा गति होती है।

संसारी जीवोंकी गति और समय—

विग्रहवती च संसारिणः प्राक्चतुर्भ्यः ॥ २८ ॥

× आगेके सूत्रमें संसारी जीवका ग्रहण है इसलिये यहांपर 'जीवस्य' इस सामान्य पदसे भी मुक्त जीवका ग्रहण होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—(संसारिणः) संसारी जीवकी गति (चतुर्भ्यः प्राक्) चार समयसे पहले पहले (विग्रहवती च) विग्रहवती और अविग्रहवती दोनों प्रकारकी होती है।

भावार्थ—संसारी जीवकी गति मोड़ा रहित भी होती है और मोड़ा सहित भी। जो मोड़ा रहित होती है उसमें एक समय लगता है। जिसमें एक मोड़ा लेना पडता है उसमें दो समय, जिसमें दो मोड़ा लेना पडते हैं उसमें तीन समय और जिसमें तीन मोड़ा लेना पडते हैं उसमें चार समय लगते हैं। पर यह जीव चौथे समयमें कहीं न कहीं नवीन शरीर नियमसे धारण कर लेता है, इसलिये विग्रह गतिका समय चार समयके पहले पहले तक कहा गया है। *

अविग्रहा गतिका समय—

एक समयाऽविग्रहा ॥ २९ ॥

अर्थ—(अविग्रहा) मोडा रहित गति (एकसमया) एक समय मात्र होती है अर्थात् उसमें एक समय ही लगता है ॥२९॥

विग्रहगतिमें आहारक अनाहारककी व्यवस्था—

एकं द्वौ त्रीन्वानाहारकः ॥ ३० ॥

अर्थ—विग्रह गतिमें जीव एक दो अथवा तीन समय तक अनाहारक रहता है।

आहार—औदारिक, वैक्रियिक और आहारक शरीर तथा ६ पर्याप्तियोंके योग्य पुद्गल परमाणुओंके ग्रहणको आहार कहते हैं।

* उक्त गतियोंके ४ भेद हैं—ऋजुगति (इषुगति), २ पाणिमुक्ता गति, ३ लाङ्गलिका गति, ४ गोमूत्रिका गति।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ—जबतक जीव ऊपर कहे हुए आहारको ग्रहण नहीं, करता तबतक वह अनाहारक कहलाता है। संसारी जीव अविग्रहा गतिमें आहारक ही होता है। किन्तु एक दो और तीन मोड़ावाली गतियोंमें क्रमसे एक दो और तीन समयतक अनाहारक रहता है। चौथे समयमें नियमसे आहारक हो जाता है ॥ ३० ॥

जन्मके भेद—

सम्मूर्च्छनगर्भोपपादा जन्म ॥ ३१ ॥

अर्थ—(जन्म) जन्म* (सम्मूर्च्छनगर्भोपपादा) सम्मूर्च्छन गर्भ और उपपादके भेदसे तीन प्रकारका होता है।

सम्मूर्च्छन जन्म—अपने शरीरके योग्य पुद्गल परमाणुओंके द्वारा मातापिताके रज और वीर्यके बिना ही अवयवोंकी रचना होनेको सम्मूर्च्छन जन्म कहते हैं।

गर्भजन्म—स्त्रीके उदरमें रज और वीर्यके मिलनेसे जो जन्म होता है उसे गर्भजन्म कहते हैं।

उपपाद जन्म—माता-पिताके रज और वीर्यके बिना देव नारकियोंके निश्चित स्थान-विशेषपर उत्पन्न होनेको उपपाद जन्म कहते हैं।

योनियोंके भेद—

सचित्तशीतसंवृताः सेतरा मिश्रा-श्चैकशस्तद्योनयः ॥ ३२ ॥

अर्थ—(सचित्तशीतसंवृताः) सचित शीत संवृत तीन (सेतराः) इनसे उल्टी तीन अचित उष्ण विवृत (च) और (एकशः) एकर

* नवीन शरीर धारण करना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर (मिश्राः) क्रमसे मिली हुई तीन सचित्ताचित्त, शीतोष्ण, संवृत विवृत ये नौ (तद्योनयः) सम्मूर्च्छन आदि जन्मोंकी योनियां हैं।

सचित्तयोनि—जीव सहित योनिको सचित्तयोनि कहते हैं।

संवृतयोनि—जो किसीके देखनेमें न आवे ऐसे जीवके उत्पत्ति स्थानको संवृतयोनि कहते हैं।

विवृतयोनि—जो सबके देखनेमें आवे उस उत्पत्ति स्थानको विवृतयोनि कहते हैं। शेष योनियोंका अर्थ स्पष्ट है॥ ३२॥

नोट—कौन योनि किस जीवके होती है, इस विषयको आगेके चित्रपर देखिये।

योनिभेद और उनके स्वामी

योनि नाम	स्वामी
१. सचित्त	साधारण शरीर
२. अचित्त	देव नारकी
३. सचित्ताचित्त	गर्भज
४. शीत	तेजस्कायिक और देवनारकियोंको छोड़कर
५. उष्ण	तेजस्कायिक
६. शीतोष्ण	देवनारकी
७. संवृत	देव, नारकी, एकेन्द्रिय,
८. विवृत	विकलेन्द्रिय
९. संवृतविवृत	गर्भज

१-जीवोंकी उत्पत्ति-स्थानको योनि कहते हैं। योनि और जन्ममें आधार आधेयका अन्तर है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गर्भजन्म किसके होता है ?—

जरायुजाण्डजपोतानां गर्भः ॥ ३३ ॥

अर्थ—जरायुज, अण्डज, और पोत इन तीन प्रकारके जीवोंके गर्भजन्म ही होता है। अथवा गर्भजन्म उक्त जीवोंके ही होता है।

जरायुज—जालके समान मांस और खूनसे व्याप्त एक प्रकारकी थैलीसे लिपटे हुये जो जीव पैदा होते हैं उन्हें जरायुज कहते हैं। जैसे-गाय भैंस मनुष्य वगैरह।

अण्डज—जो जीव अण्डेसे उत्पन्न हों, उन्हें अण्डज कहते हैं। जैसे-चील, कबूतर वगैरह।

पोत—पैदा होते समय जिन जीवोंपर किसी प्रकारका आवरण नहीं हो और जो पैदा होते ही चलने फिरने लग जावें उन्हें पोत कहते हैं; जैसे-हरिण, सिंह वगैरह ॥ ३३ ॥

उपपाद जन्म किससे होता है ?—

देवनारकाणामुपपादः ॥ ३४ ॥

अर्थ—(देवनारकाणाम्) देव और नारकियोंके (उपपादः) उपपाद जन्म ही होता है अथवा उपपाद जन्म देव और नारकियोंके ही होता है।

सम्मूर्च्छन जन्म किसके होता है ?—

शेषाणां सम्मूर्च्छनम् ॥ ३५ ॥

अर्थ—(शेषाणां) गर्भ और उपपाद जन्मवालोंसे बाकी बचे हुए जीवोंके (सम्मूर्च्छनम्) सम्मूर्च्छन जन्म ही होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथवा सम्मूर्च्छन जन्म शेष जीवोंके ही होता है।+

नोट—एकेन्द्रियसे लेकर असैनी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चोंका नियमसे सम्मूर्च्छन जन्म होता है। बाकी तिर्यंचोंके गर्भ और सम्मूर्च्छन दोनों होते हैं। लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंका भी सम्मूर्च्छन जन्म होता है॥ ३५॥

शरीरोंके नाम व भेद—

औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजस-कार्मणानि शरीराणि ॥ ३५ ॥

अर्थ—औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मण ये पांच शरीर हैं।

औदारिक शरीर—स्थूल शरीर (जो दूसरेको छेदे और दूसरेसे छिद सके) को औदारिक शरीर कहते हैं। यह मनुष्य और तिर्यञ्चोंके होता है।

वैक्रियिक शरीर—जिसमें हलके भारी तथा कई प्रकारके रूप बनानेकी शक्ति हो उसे वैक्रियिक शरीर कहते हैं। यह देव और नारकियोंके होता है। विक्रिया ऋद्धि इससे भिन्न है।

आहारक शरीर—सूक्ष्मपदार्थके निर्णयके लिये या संयमकी रक्षाके लिये छठवें गुणस्थानवर्ती जीवके मस्तकसे एक हाथका जो सफेद रंगका पुतला निकलता है उसे आहारक शरीर कहते हैं।

तैजस शरीर—जिसके कारण शरीरमें तेज रहे उसे तैजस शरीर कहते हैं।

+ ऊपर कहे हुए तीनों सूत्रोंमें "पार्थ एवं धनुर्धरः" की तरह दोनों ओरसे नियम है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कार्मण शरीर—ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंके समूहको कार्मण शरीर कहते हैं।

शरीरोंकी सूक्ष्मताका वर्णन—

परं परं सूक्ष्मम् ॥ ३७ ॥

अर्थ—पूर्वसे (परं परम्) आगे आगेके शरीर (सूक्ष्मम्) सूक्ष्म सूक्ष्म हैं। अर्थात् औदारिकसे वैक्रियिक, वैक्रियिकसे आहारक, आहारकसे तैजस और तैजससे कार्मण शरीर सूक्ष्म है ॥ ३७ ॥

शरीरके प्रदेशोंका विचार—

प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक्तैजसात् ॥ ३८ ॥

अर्थ—(प्रदेशतः) प्रदेशोंकी अपेक्षा (तैजसात् प्राक्) तैजस शरीरसे पहले पहलेके शरीर (असंख्येयगुणम्) असंख्यातगुणे हैं।

भावार्थ—औदारिक शरीरकी अपेक्षा असंख्यातगुणे प्रदेश (परमाणु) वैक्रियिकमें और वैक्रियिककी अपेक्षा असंख्यातगुणे आहारकमें हैं।

अनन्तगुणे परे ॥ ३९

अर्थ—(परे) बाकीके दो शरीर (अनन्तगुणे) अनन्तगुणे प्रदेशवाले हैं। अर्थात् आहारक शरीरसे अनन्तगुणे प्रदेश तैजस शरीरमें और तैजस शरीरकी अपेक्षा अनन्तगुणे प्रदेश कार्मण शरीरमें हैं।*

---

* आगे आगेके शरीरोंमें प्रदेशोंकी अधिकता होनेपर भी उनका सन्निवेश लोहपिण्डकी तरह सघन होता है इसलिये वे बाह्यमें अल्परूप होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तैजस और कार्मण शरीरकी विशेषता—

अप्रतिघाते ॥ ४० ॥

अर्थ—तैजस और कार्मण ये दोनों शरीर अप्रतिघात–बाधा–रहित हैं अर्थात् किसी भी मूर्तिक पदार्थसे न स्वयं रुकते हैं और न किसीको रोकते हैं।

अनादिसम्बन्धे च ॥ ४१ ॥

अर्थ—ये दोनों शरीर आत्माके साथ अनादिकालसे सम्बन्ध रखनेवाले हैं।

नोट—यह कथन सामान्य तैजस और कार्मणकी अपेक्षासे है, विशेषकी अपेक्षा पहलेके शरीरोंका सम्बन्ध नष्ट होकर उनके स्थानमें नये नये शरीरोंका सम्बन्ध होता रहता है।

सर्वस्य ॥ ४२ ॥

अर्थ—ये दोनों शरीर समस्त संसारी जीवोंके होते हैं ॥४२॥

एकसाथ एक जीवके कितने शरीर हो सकते हैं ?—

तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्याचतुर्भ्यः ॥ ४३ ॥

अर्थ—(तदादीनि) उन तैजस और कार्मण शरीरको आदि लेकर (युगपद्) एकसाथ (एकस्य) एक जीवके (आचतुर्भ्यः) चार शरीर तक (भाज्यानि) विभक्त करना चाहिए। अर्थात् दो शरीर हों तो तैजस कार्मण, तीन हों तो तैजस कार्मण और औदारिक अथवा तैजस कार्मण और वैक्रियिक, तथा चार हों तो तैजस कार्मण औदारिक और आहारक अथवा तैजस कार्मण औदारिक और वैक्रियिक× होते हैं ॥ ४३ ॥

× लब्धिप्रत्यय वैक्रियिककी अपेक्षा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कार्मण शरीरकी विशेषता—

निरुपभोगमन्त्यम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—(अन्त्यम्) अन्तका कार्मण शरीर (निरुपभोगम्) उपभोग रहित होता है।

उपभोग—इन्द्रियोंके द्वारा शब्दादिकके ग्रहण करनेको उपभोग कहते हैं ॥ ४४ ॥

औदारिक शरीरका लक्षण—

गर्भसम्मूर्च्छनजमाद्यम् ॥ ४५ ॥

अर्थ—(गर्भसम्मूर्च्छनजमाद्यम्) गर्भ और सम्मूर्च्छन जन्मसे उत्पन्न हुआ शरीर (आद्यम्) औदारिक शरीर कहलाता है ॥४५॥

वैक्रियिक शरीरका वर्णन—

औपपादिकं वैक्रियिकम् ॥ ४६ ॥

अर्थ—(औपपादिकम्) उपपाद जन्मसे होनेवाला देव नारकियोंका शरीर (वैक्रियिकम्) वैक्रियिक कहलाता है ॥ ४६ ॥

लब्धिप्रत्ययं च ॥ ४७ ॥

अर्थ—वैक्रियिक शरीर लब्धि निमित्तक भी होता है।

लब्धि—तपोविशेषसे प्राप्त हुई ऋद्धिको लब्धि कहते हैं।

तैजसमपि ॥ ४८ ॥

अर्थ—तैजस शरीर भी लब्धिप्रत्यय (ऋद्धिनिमित्तक) होता है।

नोट—यह तैजस शुभ अशुभके भेदसे दो प्रकारका होता है। शुभ तैजस सफेद रङ्गका होता है और दाहने कन्धेसे निकलता है और अशुभ तैजस सिन्दूरके समान लाल रङ्गका होता है तथा बांये कन्धसे प्रकट होता है।

४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आहारक शरीरका स्वामी व लक्षण—

शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहरकं प्रमत्तसंयतस्यैव ॥

अर्थ—(आहारकम्) आहारक शरीर (शुभम्) शुभ है अर्थात् शुभ कार्यको करता है (विशुद्धम्) विशुद्ध है अर्थात् विशुद्ध कर्मका कार्य है (च) और (अव्याघाति) व्याघातबाधा रहित है तथा (प्रमत्तसंयतस्यैव) प्रमत्तसंयत नामक छठवें गुणस्थानवर्ती मुनिके ही होता है ॥ ४९ ॥

शरीरभेद--स्वामी और जन्म

शरीर	स्वामी	जन्म
१ औदारिक	मनुष्य-तिर्यञ्च	गर्भ-सम्मूर्च्छन
२ वैक्रियिक	देव, नारकी [लब्धि-प्रत्ययकी अपेक्षा मनुष्य भी ।	उपपाद
३ आहारक	छठवें गुणस्थानवर्ती मुनि	——
४ तैजस	समस्त संसारी	——
५ कार्मण	समस्त संसारी	——

लिंग (वेद) के स्वामी—

नारकसम्मूर्छिनो नपुंसकानि ॥ ५० ॥

अर्थ—नारकी और सम्मूर्च्छनजन्मवाले जीव नपुंसक होते हैं।

न देवाः ॥ ५१ ॥

अर्थ—देव नपुंसक नहीं होते। अर्थात् देवोंमें स्त्रीलिंग और पुरुषलिंग ये दो ही लिंग होते हैं ॥ ५१ ॥

शेषास्त्रिवेदाः ॥ ५२ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—शेष बचे हुए मनुष्य और तिर्यञ्च तीनों वेदवाले होते हैं।

अकालमृत्यु किनकी नहीं होती ?

औपपादिकचरमोत्तमदेहाऽसंख्येयवर्षायु-
-षोऽनपवर्त्यायुषः ॥ ५३ ॥

अर्थ—उपपाद जन्मवाले देव नारकी, तद्भवमोक्षगामियोंमें श्रेष्ठ तीर्थङ्कर आदि तथा असंख्यात वर्षोंकी आयुवाले—भोगभूमिके जीव परिपूर्ण आयुवाले होते हैं अर्थात् इन जीवोंको असमयमें मृत्यु नहीं होती ॥ ५३ ॥

भावार्थ—आयुकर्मके निषेकोंका क्रमक्रमसे न खिरकर एकसाथ खिर जाना अकाल मरण कहलाता है। यह अकाल मरण कर्मभूमिके मनुष्य और तिर्यञ्चोंके ही सम्भव होता है। कर्मभूमिमें भी तद्भवमोक्षगामी मनुष्योंके नहीं होता।

इति श्रीमदुमास्वामिविरचिते मोक्षशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥

प्रश्नावली

(१) जीवके असाधारण भाव कितने हैं ?
(२) इस समय तुम्हारे कितने भाव हैं ?
(३) विग्रहगतिमें जीव अनाहारक कबतक और क्यों रहता है ?
(४) योनि और जन्ममें क्या अन्तर है ? (५) मनुष्योंके कौन कौनसे जन्म होते हैं ? (६) तुम्हारे कितने शरीर हैं ?
(७) देवोंके आहारक शरीर हो सकता है या नहीं ?
(८) यदि आगे आगेके शरीर अधिक अधिक प्रदेशवाले हैं तो वे अधिक स्थानको क्यों नहीं घेरते ?
(९) आप यह बात किस प्रकार जानते हैं कि अमुक व्यक्तिकी असमयमें मृत्यु हुई है।
(१०) नारकियोंके कौनसा लिङ्ग होता है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तृतीय अध्याय

अधोलोकका वर्णन

सात पृथिवियां-नरक—

रत्नशर्कराबालुकापङ्कधूमतमोमहातमःप्रभा भूमयो घनाम्बुवाताकाशप्रतिष्ठाः सप्ताऽधोऽधः ॥ १ ॥

अर्थ—(रत्नशर्कराबालुकापङ्कधूमतमोमहातमःप्रभा) रत्नप्रभा,+ शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पङ्कप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और महातमप्रभा, ये भूमियां (सप्त) सात हैं और क्रमसे (अधोऽधः) नीचे नीचे (घनाम्बुवाताकाशप्रतिष्ठाः) घनोदधिवातवलय, घनवातवलय, तनुवातवलय और आकाशके आधार हैं।

विशेष—रत्नप्रभा पृथ्वीके तीन भाग है—१ खरभाग, २ पङ्कभाग और ३ अब्बहुल भाग। इनमेंसे ऊपरके दो भागोंमें व्यंतर तथा भवनवासी देव रहते हैं, और नीचेके अब्बहुल भागमें नारकी रहते हैं। इस पृथ्वीकी कुल मोटाई एक लाख अस्सी हजार योजनकी× है॥ १॥

सात पृथिवियोंमें नरकों (बिलों) की संख्या—

तासुत्रिंशत्पञ्चविंशतिपञ्चदशदशत्रिपञ्चोनैकनरकशतसहस्राणि पञ्च चैव यथाक्रमम् ॥ २ ॥

+ रत्नप्रभा आदि पृथ्वीके नाम सार्थक हैं। रूढ़ नाम इस प्रकार हैं—१ घम्मा, २ वंशा, ३ मेघा, ४ अञ्जना, ५ अरिष्टा, ६ मघवी और ७ माघवी।

× दो हजार कोश।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—(तासु) उन पृथिवियोंमें (यथाक्रमम्) क्रमसे (त्रिंशत् पञ्चविंशति पञ्चदश दश त्रिपञ्चोनैकनरकशतसहस्राणि) तीस लाख, पच्चीस लाख, पन्द्रह लाख, तीन लाख पांच कम एक लाख (च) और (पञ्च एव) पांच ही नरक-बिल हैं। ये बिल जमीनमें गड़े हुए ढक्कीकी पोलके समान होते हैं॥ २॥

नारकियोंके दुःखका वर्णन—

नारका नित्याशुभतरलेश्यापरिणाम-[1]देहवेदनाविक्रियाः॥ ३॥

अर्थ—नारकी जीव हमेशा ही अत्यन्त अशुभ लेश्या, परिमाम, शरीर, वेदना और विक्रियाके धारक होते हैं।

परिणाम—स्पर्श गंध वर्ण और शब्दको परिणाम कहते हैं।

१—यह द्रव्यलेश्याओंका वर्णन है जोकि आयुपर्यन्त रहती हैं। भाव लेश्याएं अन्तर्मुहूर्तमें बदलती रहती हैं। पहली और दूसरी पृथ्वीमें कापोत लेश्यायें, तीसरी पृथ्वीके ऊपरी भागमें कापोती और नीचले भागमें नील, चौथीमें नील, पांचवीके ऊपरी भागमें नील और नीचले भागमें कृष्ण तथा छठवीं और सातवीं पृथ्वीमें भी कृष्णलेश्या होती है। २–देह—पहली पृथ्वीमें देहकी ऊँचाई ७ धनुष, ३ हाथ और ६ अंगुल है। नीचेके नरकोंमें क्रम क्रमसे दूनी दूनी ऊँचाई होती है। ३–वेदना—१, २, ३ और ४ पृथ्वीमें सिर्फ उष्ण वेदना, ५ वीं पृथ्वीके ऊपरी भागमें उष्ण और नीचे भागमें शीत तथा ६ और ७ वीं पृथ्वीमें महाशीतकी वेदना है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परस्परोदीरितदुःखाः ॥ ४ ॥

अर्थ—नारकी जीव परस्परमें एक दूसरेको दुःख उत्पन्न करते हैं—वे कुत्तोंकी तरह परस्परमें लड़ते हैं ॥ ४ ॥

संक्लिष्टाऽसुरोदीरितदुःखाश्च प्राक् चतुर्थ्याः ॥ ५ ॥

अर्थ—(च) और वे नारकी (चतुर्थ्याः प्राक्) चौथी पृथ्वीसे पहले पहले अर्थात् तीसरी पृथ्वी पर्यन्त (संक्लिष्टाऽसुरोदीरितदुःखाः) अत्यन्त संक्लिष्ट परिणामोंके धारक अम्बावरीष जातिके असुरकुमार देवोंके द्वारा उत्पन्न दुःखसे युक्त होते हैं। अर्थात् तीसरे नरक तक जाकर अम्बावरीष-असुरकुमार उन्हें पूर्व बैरका स्मरण दिलाकर आपसमें लड़ते हैं और उन्हें दुःखी देखकर हर्षित होते हैं। उनके इसी प्रकारकी कषायका उदय रहता है।

नरकोंमें उत्कृष्ट आयुका प्रमाण—

तेष्वेकत्रिसप्तदशसप्तदशद्वाविंशतित्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा सत्त्वानां परा स्थितिः ॥ ६ ॥

अर्थ—(तेषु) उन नरकोंमें (सत्त्वानां) नारकी जीवोंकी (परा स्थितिः) उत्कृष्ट स्थिति क्रमसे (एक त्रि सप्त दश सप्तदश द्वाविंशति त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा) एक सागर, तीन सागर, सात सागर, दश सागर, सत्रह सागर, बाईस सागर और तेतीस सागर है।

नोट—नरकोंमें भयानक दुःख होनेपर भी असमयमें मृत्यु नहीं होती ॥ ६ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

नरक व्यवस्था

नं०	पृथिवी	प्रस्तार	बिल	शरीरकी ऊँचाई	लेश्या	शीतोष्ण वेदना	उत्कृष्ट आयु	जघन्य आयु
१	रत्नप्रभा	१३	३००००००	७ धनुष ३ हाथ ६ अंगुल	जघन्य कापोत	उष्ण वेदना	१ सागर	दश हजार वर्ष
२	शर्कराप्रभा	११	२५०००००	१५ धनुष २ हाथ १२ अंगुल	मध्यम कापोत	,,	३ सागर	१ सागर
३	बालुकाप्रभा	९	१५०००००	३१ धनुष १ हाथ	उत्कृष्ट कापोत जघन्य नील	,,	७ सागर	३ सागर
४	पङ्कप्रभा	७	१००००००	६२ धनुष २ हाथ	मध्यम नील	,,	१० सागर	७ सागर
५	धूमःप्रभा	५	३०००००	१२५ धनुष	उत्कृष्ट नील जघन्य कृष्ण	उष्ण शीत	१७ सागर	१० सागर
६	तमःप्रभा	३	९९९९५	२५० धनुष	मध्यम कृष्ण	शीत	२२ सागर	१७ सागर
७	महातमप्रभा	१	५	५०० धनुष	उत्कृष्ट कृष्ण	महाशीत	३३ सागर	२२ सागर

नोट—१ यह लेश्याका क्रम 'स्वायुषः प्रमाणावधृताः द्रव्यलेश्या उक्ताः भावलेश्यास्त्वन्तर्मुहूर्तपरावर्तिन्यः' इस सर्वार्थसिद्धिके मतानुसार लिखा है। गोम्मटसार तथा धवलसिद्धांतके मतानुसार सभी नारकियोंके विग्रह-गतिमें शुक्ल अपर्याप्तक अवस्थामें कापोत तथा अपर्याप्तक अवस्थामें कृष्णद्रव्यलेश्या होती है। और भावलेश्याएं, कृष्ण, नील तथा कापोत होती हैं जिसका क्रम ऊपर चित्रमें बतलाया गया है।

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मध्य लोकका वर्णन

कुछ द्वीप समुद्रके नाम—

जम्बूद्वीपलवणोदादयःशुभनामानोद्वीपसमुद्राः ॥ ७

अर्थ—इस मध्यलोकमें (शुभनामानः) अच्छे अच्छे नामवाले (जम्बूद्वीपलवणोदादयः द्वीपसमुद्राः) जम्बूद्वीप आदि द्वीप और लवणसमुद्र आदि समुद्र हैं।

भावार्थ—सबके बीचमें थालीके आकारका जम्बूद्वीप है, उसके चारों तरफ लवणसमुद्र है, उसके चारों तरफ धातकीखण्ड द्वीप है, उसके चारों तरफ कालोदधि समुद्र है, उसके चारों तरफ पुष्करवर द्वीप है, उसके चारों तरफ पुष्करवर समुद्र है। इस प्रकार एक दूसरेको घेरे हुये असंख्यात द्वीप समुद्र हैं। उसके अन्तके द्वीपका नाम स्वयंभूरमण द्वीप और स्वयंभूरमण समुद्र है॥ ७॥

द्वीप और समुद्रोंका विस्तार और आकार—

द्विर्द्विर्विष्कम्भाःपूर्वपूर्वपरिक्षेपिणो वलयाकृतयः॥८

अर्थ—प्रत्येक द्वीप समुद्र दूने दूने विस्तारवाले, पहले पहलेके द्वीप समुद्रको घेरे हुए तथा चूड़ीके समान आकारवाले हैं।

जम्बूद्वीपका विस्तार और आकार—

तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीपः ॥ ९ ॥

अर्थ—(तन्मध्ये) उन सब द्वीपसमुद्रोंके बीचमें (मेरुनाभिः)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

* सुदर्शन मेरु रूप नाभिसे युक्त (वृत्तः) थालीके समान गोल और (योजनशतसहस्रविष्कम्भः) × एक लाख योजन विस्तार वाला (+ जम्बूद्वीपः) जम्बूद्वीप [अस्ति] है ॥ ९ ॥

सात क्षेत्रोंके नाम—

भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरण्यव-
तैरावतवर्षाः क्षेत्राणि ॥ १० ॥

अर्थ—इस जम्बूद्वीपमें भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत ये क्षेत्र हैं ॥ १० ॥

क्षेत्रोंका विभाग करनेवाले ६ कुलाचलोंके नाम—

तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्महाहिमवन्नि-
षधनीलरुक्मिशिखरिणो वर्षधरपर्वताः ॥ ११ ॥

---

* सुदर्शन मेरुकी ऊंचाई एक लाख योजनकी है। जिसमें १ हजार योजन नीचे जमीनमें और ९९ हजार योजन ऊपर है। सब अकृत्रिम चीजोंके नापमें २००० कोशका बड़ा योजन लिया जाता है।

× किसी भी गोल चीजकी परिधि उसकी गोलाईसे कुछ अधिक तिगुनी हुआ करती है। इस प्रकार जम्बूद्वीपकी परिधि तीन लाख सोलह हजार दोसौ सताईस योजन तीन कोश एकसौ अठाईस धनुष और साडे तेरह अंगुलसे कुछ अधिक है।

+ इस द्वीपमें विदेह क्षेत्रांतर्गत 'उत्तर कुरु भोगभूमि' में अनादि निधन पृथ्वीकाय और अकृत्रिम जम्बू-जामुनका वृक्ष है, इसलिये इस द्वीपका नाम जम्बूद्वीप पड़ा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—(तद्विभाजिनः) उन सात क्षेत्रोंका विभाग करनेवाले (पूर्वापरायताः) पूर्वसे पश्चिम तक लम्बे (हिमवन्महाहिमवन्निषधनीलरुक्मिशिखरिणः) हिमवत्, महाहिमवत्, निषध, नील, रुक्मिन् और शिखरिन् ये छह (वर्षधरपर्वताः) वर्षधर—कुलाचल पर्वत हैं। वर्ष—क्षेत्र ॥ ११ ॥

कुलाचलोंके वर्ण—

हेमार्जुनतपनीयवैडूर्यरजतहेममयाः ॥ १२ ॥

अर्थ—ऊपर कहे हुए पर्वत क्रमसे सुवर्ण, चांदी, ताया हुआ सुवर्ण, वैडूर्य (नील) मणि, चांदी और सुवर्णके समान वर्णवाले हैं ॥ १२ ॥

कुलाचलोंका आकार—

मणिविचित्रपार्श्वा उपरि मूले च तुल्यविस्ताराः ॥ १३ ॥

अर्थ—(मणिविचित्रपार्श्वाः) कई तरहकी मणियोंसे चित्र-विचित्र तटोंसे युक्त (उपरि मूले च) ऊपर नीचे और मध्यमें (तुल्यविस्ताराः) एकसमान विस्तारवाले हैं ॥ १३ ॥

कुलाचलोंपर स्थित सरोवरोंके नाम—

पद्ममहापद्मतिगिञ्छकेसरिमहापुण्डरीकपुण्डरीका ह्रदास्तेषामुपरि ॥ १४ ॥

अर्थ—(तेषाम् उपरि) उन पर्वतोंके ऊपर क्रमसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(पद्म-महापद्म तिगिञ्छ केशरि महापुण्डरीक पुण्डरीका ह्रदाः)' पद्म, महापद्म, तिगिञ्छ, केशरिन्, महापुण्डरीक और पुण्डरीक नामके ह्रद-सरोवर हैं ॥ १५ ॥

प्रथम सरोवरकी लम्बाई चौडाई—

प्रथमो योजनसहस्रायामस्तदर्द्धविष्कम्भो ह्रदः ।१५॥

अर्थ—(प्रथमह्रदः) पहला सरोवर (योजनसहस्रायामः) एक हजार योजन लम्बा और (तदर्द्धविष्कम्भः) लम्बाईसे आधा अर्थात् पांचसौ योजन विस्तारवाला है ॥ १५ ॥

प्रथम सरोवरकी गहराई

दशयोजनावगाहः ॥ १ ॥

अर्थ—पहला सरोवर दशयोजन गहरा है ॥ १६ ॥

उसके मध्यमें क्या है?—

तन्मध्ये योजनं पुष्करम् ॥ १७ ॥

अर्थ—उसके बीचमें एक योजन विस्तारवाला कमल है ॥१७॥

महापद्म आदि सरोवर तथा उनमें रहनेवाले कमलोंका प्रमाण—

तद्द्विगुणद्विगुणा ह्रदाः पुष्कराणि च ॥१८॥

अर्थ—आगेके सरोवर और कमल क्रमसे प्रथम सरोवर तथा उसके कमलसे दूने दूने विस्तारवाले हैं।

नोट—यह दूने दूनेका क्रम तिगिञ्छ नामक तीसरे सरोवर तक ही है। उसके आगे तीन सरोवर और कमल दक्षिण सरोवरके कमलोंके समान विस्तारवाले हैं॥ १८ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ह्रदोंका विस्तार आदि

नं.	ह्रद नाम	स्थान	लम्बाई	चौड़ाई	गहराई	कमल	देवी
१	पद्म	हिमवत्	१००० योजन	५०० योजन	१० योजन	१ योजन	श्री
२	महापद्म	महाहिमवत्	२००० योजन	१००० योजन	२० योजन	२ योजन	ह्री
३	तिगिञ्छ	निषध	४००० योजन	२००० योजन	४० योजन	४ योजन	धृति
४	केशरी [केशरिन्]	नील	४००० योजन	२००० योजन	४० योजन	४ योजन	कीर्ति
५	महापुण्डरीक	रुक्मिन्	२००० योजन	१००० योजन	२० योजन	२ योजन	बुद्धि
६	पुण्डरीक	शिखरिन्	१००० योजन	१००० योजन	१० योजन	१ योजन	लक्ष्मी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कमलोंमें रहनेवाली छह देवियां—

तन्निवासिन्यो देव्यः श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः ससामानिकपारिषत्काः ॥ १९॥

अर्थ—(पल्योपमस्थितयः) एक पल्यकी आयुवाली तथा (ससामानिकपारिषत्काः) सामानिक और पारिषद आदिके देवोंके सहित (श्रीह्रीधृतिकीर्तिलक्ष्म्यः) श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी नामकी (देव्यः) देवियां क्रमसे (तन्निवासिन्यः) उन सरोवरोंके कमलों पर निवास करती हैं।×

चौदह महा नदियोंके नाम—

गङ्गासिन्धुरोहिद्रोहितास्याहरिद्धरिकान्तासीतासीतोदानारीनरकान्तासुवर्णरूप्यकूलारक्तारक्तोदाः सरितस्तन्मध्यगाः ॥ २० ॥

अर्थ—गङ्गा, सिन्धु, रोहित, रोहितास्या, हरित्, हरिकान्ता, सीता, सीतोदा, नारी, नरकान्ता, सुवर्णकूला, रूप्यकूला और रक्ता, रक्तोदा ये चौदह नदियां जम्बूद्वीपके पूर्वोक्त ७ क्षेत्रोंके बीचमें बहती हैं।

विशेष—पहले पद्म और छठवें पुण्डरीक नामक सरोवरसे तीन तीन नदियां निकली हैं तथा बाकीके सरोवरसे दो दो

× उक्त कमलोंकी कर्णिकाके मध्यभागमें एक कोश लम्बे आध कोश चौड़े और कुछ कम एक कोश ऊंचे सफेद रंगके भवन बने हुए हैं। उन्हींमें ये देवियां रहती हैं। तथा उन्हीं तालावोंमें जो अन्य परिवार कमल हैं उनपर सामानिक और पारिषद् देव रहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नदियां निकली हैं। नदियों और क्षेत्रोंका क्रम इस प्रकार है—भरतमें-गंगा सिन्धु, हैमवतमें-रोहित रोहितास्या, हरिमें-हरित हरिकांता, विदेहमें-सीता सीतोदा, रम्यकमें-नारी नरकांता, हैरण्यवतमें-सुवर्णकूला, रूप्यकूला, और ऐरावतमें-रक्ता रक्तोदा नदियां बहती हैं॥ २०॥

नदियोंके बहनेका क्रम—

द्वयोर्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगाः ॥ २१ ॥

अर्थ—सूत्रके क्रमानुसार गंगा सिंधु इत्यादि दो दो नदियोंमेंसे प्रथम नंबरवाली नदियां पूर्वसमुद्रमें जाती हैं। जैसे गंगा सिंधुमें गंगा आदि॥ २१॥

शेषास्त्वपरगाः ॥ २२ ॥

अर्थ—बाकी बची हुई सात नदियां पश्चिमकी ओर जाती हैं। जैसे-गंगा सिंधुमें सिंधु आदि॥ २२॥

महानदियोंकी सहायक नदियां—

चतुर्दशनदीसहस्रपरिवृतागङ्गासिन्ध्वादयोनद्यः। २३

अर्थ—गंगा सिन्धु आदि नदियोंके युगल चौदह हजार सहायक नदियोंसे घिरे हुए हैं।

नोट—सहायक नदियोंका क्रम भी विदेहक्षेत्र तक आगे आगेके युगलोंमें पूर्वके युगलोंसे दूना दूना है। और उत्तरके तीन क्षेत्रोंमें दक्षिणके तीन क्षेत्रोंके समान है॥ २३॥

नदी युगल—	सहायक नदी संख्या—
गंगा-सिन्धु	१४ हजार
रोहित-रोहितास्या	२८ हजार
हरित-हरिकान्ता	५६ हजार
सीता-सीतोदा	१ लाख बारह हजार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नारी–नरकांता	५६ हजार
सुवर्णकूला–रूप्यकूला	२८ हजार
रक्ता–रक्तोदा	१४ हजार

भरतक्षेत्रका विस्तार—

भरतः षड्विंशतिपञ्चयोजनशतविस्तारः
षट् चैकोनविंशतिभागा योजनस्य ॥ २४ ॥

अर्थ—(भरत) भरतक्षेत्र (षड्विंशतिपञ्चयोजनशतविस्तारः) पांचसौ छब्बीस योजन विस्तारवाला (च) और (योजनस्य) एक योजनके (एकोनविंशतिभागाः) उन्नीस भागोंमेंसे (षट्) छह भाग अधिक है।

भावार्थ—भरतक्षेत्रका विस्तार ५२६ $\frac{६}{१९}$ योजन है ॥ २४॥+

आगेके क्षेत्र और पर्वतोंका विस्तार—

तद्द्विगुणद्विगुणविस्तारा वर्षधरवर्षा
विदेहान्ताः ॥ २५ ॥

अर्थ—(विदेहान्ताः) विदेहक्षेत्र पर्यन्तके (वर्षधरवर्षाः)

+ भरत और ऐरावत क्षेत्रके बीचमें पूर्व व पश्चिम तक लम्बे विजयार्ध पर्वत हैं। जिनसे गङ्गा सिंधु और रक्ता रक्तोदा नदियोंके कारण दोनों क्षेत्रोंके छह छह खण्ड हो जाते हैं। उनमें बीचका आर्यखण्ड और शेषके पांच म्लेच्छखण्ड कहलाते हैं। तीर्थंकर आदि पदवीधारी पुरुष भरत, ऐरावतके आर्यखण्डमें और विदेह क्षेत्रोंमें उत्पन्न होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर्वत और क्षेत्र (तद्द्विगुणद्विगुणाः) भरतक्षेत्रसे दूने दूने विस्तारवाले हैं ॥ २५ ॥

विदेह क्षेत्रके आगेके पर्वत और क्षेत्रोंका विस्तार—

उत्तरा दक्षिणतुल्याः ॥ २६ ॥

अर्थ—विदेहक्षेत्रसे उत्तरके तीन पर्वत और तीन क्षेत्र दक्षिणके पर्वत और क्षेत्रोंके समान विस्तारवाले हैं।

इनका क्रम इस प्रकार है—

क्षेत्र और पर्वत	विस्तार		ऊँचाई	गहराई
भरत क्षेत्र	५२६ ६/१९	योजन	+	+
हिमवत् कुलाचल	१०५२ १२/१९	,,	१०० यो.	२५ यो.
हैमवत क्षेत्र	२१०५ ५/१९	,,	+	+
महाहिमवत् कुलाचल	४२१० १०/१९	,,	+	+
हरिक्षेत्र	८४२१ १/१९	,,	+	+
निषध कुलाचल	१६८४२ २/१९	,,	४०० यो.	१०० यो.
विदेह क्षेत्र	३३६८४ ४/१९	,,	+	+
नील कुलाचल	१६८४२ २/१९	,,	४०० यो.	१०० यो.
रम्यक क्षेत्र	८४२१ १/१९	,,	+	,, यो.
रुक्मि कुलाचल	४२१० १०/१९	,,	२०० यो.	५० यो.
हैरण्यवत क्षेत्र	२१०५ ५/१९	,,	+	,, यो.
शिखरी कुलाचल	१०५२ १२/१९	,,	२०० यो.	२५ यो.
ऐरावत क्षेत्र	५२६ ६/१९	,,	+	+

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

काल-चक्र

अवसर्पिणी काल

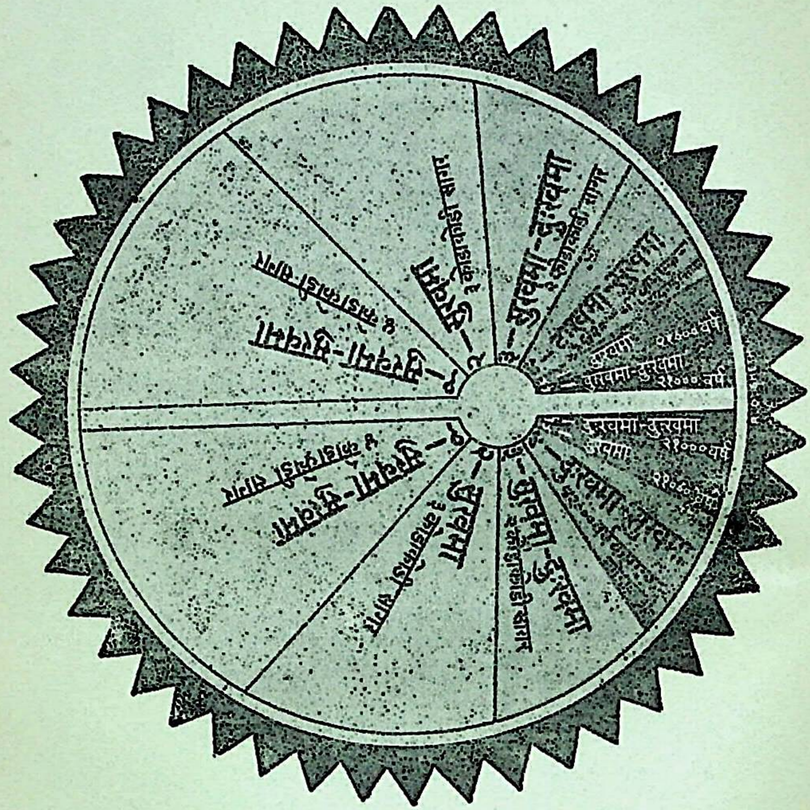

[युग-परिवर्तन-चित्र]

'जैन विजय'-प्रेस-सूरत ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भरत और ऐरावतक्षेत्रमें कालचक्रका परिवर्तन—

भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामु-त्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम् ॥ २७ ॥

अर्थ—(षट्समयाभ्याम्) छह कालोंसे युक्त (उत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम्) उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीके द्वारा (भरतैरावतयोः) भरत और ऐरावत क्षेत्रमें जीवोंके अनुभव आदिकी (वृद्धिह्रासौ) बढ़ती तथा न्यूनता होती रहती है।

भावार्थ—बीस कोड़ाकोड़ी सागरका एक कल्पकाल होता है। उसके दो भेद हैं—१ ला उत्सर्पिणी—जिसमें जीवोंके ज्ञान आदिकी वृद्धि होती है और २ रा अवसर्पिणी—जिसमें जीवोंके ज्ञान आदिका ह्रास होता है। अवसर्पिणीके छ भेद हैं—१ सुषमसुषमा, २ सुषमा, ३ सुषमदुःषमा, ४ दुःषमसुषमा, ५ दुःषमा और ६ अतिदुःषमा। इसी प्रकार उत्सर्पिणीके भी अतिदुःषमाको आदि लेकर छह भेद हैं।

इन छह भेदोंके कालका नियम इस प्रकार है—

१-सुषमासुषमा—चार कोड़ाकोड़ी सागर, २ सुषमा—तीन कोड़ाकोड़ी सागर, ३-सुषमदुःषमा—दो कोड़ाकोड़ी सागर, ४-दुःषमा सुषमा—ब्यालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागर, ५ दुःषमा—इक्कीस हजार वर्ष ६-अतिदुःषमा—इक्कीस हजार वर्ष। भरत और ऐरावत क्षेत्रमें इन छह भेदों सहित उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीका परिवर्तन होता रहता है। असंख्यात अवसर्पिणी बीत जानेके बाद एक हुण्डावसर्पिणी काल होता है। अभी हुण्डावसर्पिणी काल चल रहा है ॥ २७ ॥

नोट—भरत और ऐरावत क्षेत्र सम्बन्धी म्लेच्छखण्डों तथा विजयार्ध पर्वतकी श्रेणियोंमें अवसर्पिणी कालके समय चतुर्थ

५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कालके आदिसे लेकर अन्त तक परिवर्तन होता है, और उत्सर्पिणी कालके समय तृतीय कालके अन्तसे लेकर आदि तक परिवर्तन होता है। इनमें आर्यखण्डोंकी तरह छहों कालोंका परिवर्तन नहीं होता है और न इनमें प्रलयकाल पड़ता है।

अन्य भूमियोंकी व्यवस्था—

ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः ॥ २८ ॥

अर्थ—(ताभ्याम्) भरत और ऐरावतके सिवाय (अपराः) अन्य (भूमयः) क्षेत्र (अवस्थिताः) एक ही अवस्थामें रहते हैं—इनमें कालका परिवर्तन नहीं होता ॥ २८ ॥

हैमवत आदि क्षेत्रोंमें आयुकी व्यवस्था—

एकद्वित्रिपल्योपमस्थितयो हैमवतकहारिवर्षकदैवकुरवकाः ॥ २९ ॥

अर्थ—हैमवत, हरिवर्ष और देवकुरु (विदेहक्षेत्रके अन्तर्गत एक विशेष स्थान) के निवासी मनुष्य तिर्यञ्च क्रमसे एक पल्य दो पल्य और तीन पल्यकी आयुवाले होते हैं × ॥ २९ ॥

हैरण्यवत आदि क्षेत्रोंमें आयुकी व्यवस्था—

तथोत्तराः ॥ ३० ॥

अर्थ—उत्तरके क्षेत्रोंमें रहनेवाले मनुष्य भी हैमवत आदिके मनुष्योंके समान आयुवाले होते हैं।

भावार्थ—हैरण्यवतक्षेत्रकी रचना हैमवतक्षेत्रके समान,

× इन तीन क्षेत्रोंमें मनुष्योंके शरीरकी ऊँचाई क्रमसे एक, दो और तीन कोशकी होती है। शरीरका रंग क्रमसे नील, शुक्ल और पीत होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रम्यककी रचना हरिक्षेत्रके समान और उत्तरकुरु (विदेहक्षेत्रके अन्तर्गत स्थान-विशेष) की रचना देवकुरुके समान है। इसप्रकार उत्तम, मध्यम और जघन्यरूप तीनों भोगभूमियोंके दो दो क्षेत्र हैं। जम्बूद्वीपमें छः भोगभूमियां और अढ़ाईद्वीपमें कुल ३० भोगभूमियां हैं ॥ ३० ॥×

विदेहक्षेत्रोंमें आयुकी व्यवस्था—

विदेहेषु संख्येयकालाः ॥ ३१ ॥

अर्थ—विदेहक्षेत्रोंमें मनुष्य और तिर्यञ्च संख्यात वर्षकी आयुवाले होते हैं ॥ ३१ ॥*

भरतक्षेत्रका अन्य प्रकारसे विस्तार—

भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवतिशतभागः ॥ ३२ ॥

अर्थ—भरतक्षेत्रका विस्तार जम्बूद्वीपके एकसौ नव्वेवां भाग है।

नोट—२३ वें सूत्रमें भरतक्षेत्रका जो विस्तार बतलाया है उसमें और इसमें कोई भेद नहीं है। सिर्फ कथन करनेका प्रकार दूसरा है। यदि एक लाखके एकसौ नव्वे हिस्से किये जायें तो उनमें हरएकका प्रमाण ५२६$\frac{6}{19}$ योजन होगा ॥ ३२ ॥

× जिनमें सब तरहकी भोगोपभोगकी सामग्री कल्पवृक्षोंसे प्राप्त होती है उन्हें भोगभूमि कहते हैं।

* विदेहक्षेत्रमें ऊँचाई पांचसौ धनुष और आयु एक करोड़ वर्ष पूर्वकी होती है। चौरासी लाखमें चौरासी लाखका गुणा करने पर एक पूर्वाङ्ग होता है और चौरासी लाख पूर्वाङ्गोंका एक पूर्व होता है। एक पूर्वमें एक करोड़का गुणा करने पर एक करोड़ पूर्व होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धातकीखण्डका वर्णन—

द्विर्धातकीखण्डे ॥ ३३ ॥

अर्थ—धातकीखण्ड÷ नामक दूसरे द्वीपमें क्षेत्र, कुलाचल, मेरु, नदी आदि समस्त पदार्थोंकी रचना जम्बूद्वीपसे दूनी दूनी है ॥३३॥

पुष्कर द्वीपका वर्णन—

पुष्करार्द्धे च ॥ ३४ ॥

अर्थ—पुष्करार्द्ध द्वीपमें भी जम्बूद्वीपकी अपेक्षा सब रचना दूनी दूनी है।

विशेष—पुष्करवर द्वीपका विस्तार १६ लाख योजन है, उसके ठीक बीचमें चूड़ीके आकार मनुषोत्तर पर्वत पड़ा हुआ है, जिससे इस द्वीपके दो हिस्से हो गये हैं। पूर्वार्धमें सब रचना धातकीखण्डके समान है और जम्बूद्वीपसे दूनी दूनी है। इस द्वीपके उत्तरकुरु प्रांतमें एक पुष्कर (कमल) है, उसके संयोगसे ही इसका नाम पुष्करवर द्वीप पड़ा है ॥ ३४ ॥

मनुष्य क्षेत्र—

प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्याः ॥ ३५ ॥

अर्थ—मानुषोत्तर पर्वतके पहले अर्थात् अढ़ाईद्वीपमें× ही

÷ धातकीखण्ड द्वीप लवणसमुद्रको घेरे हुए है। इसका विस्तार चार लाख योजन है। इसके उत्तरकुरु प्रांतमें धातकी (आंवला) का वृक्ष है, उसके संयोगसे इसका नाम धातकीखण्ड पड़ा है।

× जम्बूद्वीप, लवणसमुद्र, धातकीखण्ड, कालोदधि और पुष्करार्द्ध इतना क्षेत्र अढ़ाईद्वीप कहलाता है। इसका विस्तार ४५ लाख योजन है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मनुष्य होते हैं। मानुषोत्तर पर्वतके आगे ऋद्धिधारी मुनिश्वर तथा विद्याधर भी नहीं जा सकते ॥ ३५ ॥

मनुष्योंके भेद—

आर्याम्लेच्छाश्च ॥ ३६ ॥

अर्थ—आर्य और म्लेच्छके भेदसे मनुष्य दो प्रकारके होते हैं।

आर्य—जो अनेक गुणोंसे सम्पन्न हों तथा गुणी पुरुष जिनकी सेवा करें उन्हें आर्य कहते हैं।

म्लेच्छ—जो आचार विचारसे भ्रष्ट हों तथा जिन्हें धर्म-कर्मका कुछ विवेक न हो उन्हें म्लेच्छ कहते हैं ॥ ३६ ॥

कर्मभूमिका वर्णन—

भरतैरावतविदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरू-त्तरकुरुभ्यः ॥ ३७ ॥

अर्थ—पांच* मेरु सम्बंधी ५ भरत, ५ ऐरावत और देव-कुरु-उत्तरकुरुको छोड़कर ५ विदेह, इस तरह अढ़ाईद्वीपमें कुल १५ कर्मभूमियां हैं।

कर्मभूमि—जहांपर असि, मषि, कृषि, वाणिज्य, विद्या और शिल्प इन छह कर्मोंकी प्रवृत्ति हो उसे कर्मभूमि कहते हैं ॥३७॥

मनुष्योंकी उत्कृष्ट और जघन्य स्थिति—

नृस्थिती परावरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते ॥ ३८ ॥

१—जम्बूद्वीपका १, धातकीखण्डके २ और पुष्करार्द्धके २ इस प्रकार कुल ५ मेरु होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—मनुष्योंकी उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्य और जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्तकी है ॥ ३८ ॥

तिर्यञ्चोंकी स्थिति—

तिर्यग्योनिजानां च ॥ ३९ ॥

अर्थ—तिर्यञ्चोंकी भी उत्कृष्ट और जघन्य स्थिति क्रमसे तीन पल्य और अन्तर्मुहूर्तकी है।

इति श्रीमदुमास्वामिविरचिते मोक्षशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ।

प्रश्नावली

(१) नारकियोंके दुःखोंका वर्णन कर उनकी उत्कृष्ट आयु बताओ।

(२) जम्बूद्वीपकी परिधि कितनी है?

(३) कर्मभूमि और भोगभूमिके क्षेत्र बताओ।

(४) धातकी खण्ड द्वीपका चित्र बनाओ।

(५) गङ्गा, सीतोदा, रक्तोदा और हरिकांता नदियोंके निकलने तथा बहनेके स्थान बताओ।

(६) मानुषोत्तर पर्वत कहां है?

(७) मनुष्योंके भेद बताकर उनकी उत्कृष्ट और जघन्य आयु बताओ।

(८) आप किस क्षेत्रमें रहते हैं?

(९) जम्बूद्वीपका नकशा बनाओ।

(१०) तीर्थङ्कर किस किस क्षेत्रमें जन्म लेते हैं?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चतुर्थ अध्याय

देवोंके भेद—

देवाश्चतुर्णिकायाः ॥ १ ॥

अर्थ—देव चार समूहवाले हैं अर्थात् देवोंके चार भेद हैं—१-भवनवासी, २-व्यन्तर, ३-ज्योतिष्क, और ४-वैमानिक।

देव—जो देवगति नामकर्मके उदयकी सामर्थ्यसे नाना द्वीप समुद्र तथा पर्वत आदि रमणीक स्थानोंपर क्रीड़ा करें वे देव कहलाते हैं ॥ १ ॥

भवनत्रिक देवोंमें लेश्याका विभाग—

आदितस्त्रिषु पीतान्तलेश्याः ॥ २ ॥

अर्थ—पहलेके तीन निकायोंमें पीतान्त अर्थात् कृष्ण, नील, कापोत और पीत ये चार लेश्याएं होती हैं ॥ २ ॥

चार निकायोंके प्रभेद—

दशाष्टपञ्चद्वादशविकल्पाः कल्पोपपन्नपर्यन्ताः ॥ ३ ॥

अर्थ—कल्पोपपन्न (सोलहवें स्वर्ग तकके देव) पर्यन्त उक्त चार प्रकारके देवोंके क्रमसे दश आठ पांच और बारह भेद हैं ॥ ३ ॥

चार प्रकारके देवोंके सामान्य भेद—

इन्द्रसामानिकत्रायत्रिंशपारिषदात्मरक्षलोकपाला-नीकप्रकीर्णकाभियोग्यकिल्विषिकाश्चैकशः ॥ ॥

अर्थ—उक्त चार प्रकारके देवोंमें प्रत्येकके इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश, पारिषद, आत्मरक्ष, लोकपाल, अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्विषिक ये दश भेद होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन्द्र—जो देव दूसरे देवोंमें नहीं रहनेवाली अणिमा आदि ऋद्धियोंसे सहित हों उन्हें इन्द्र कहते हैं। ये देव, राजाके तुल्य होते हैं।

सामानिक—जिनकी आयु वीर्य भोग उपभोग आदि इन्द्रके तुल्य हों, पर आज्ञारूप ऐश्वर्यसे रहित हों, उन्हें सामानिक कहते हैं।

त्रायस्त्रिंश—जो देव मन्त्री पुरोहितके स्थानापन्न हों उन्हें त्रायस्त्रिंश कहते हैं। ये देव एक इन्द्रकी सभामें तेतीस ही होते हैं।

परिषद—जो देव इन्द्रकी सभामें बैठनेवाले हों उन्हें पारिषद कहते हैं।

आत्मरक्ष—जो देव अंगरक्षकके सदृश होते हैं उन्हें आत्मरक्ष कहते हैं।

लोकपाल—जो कोतवालके समान लोकका पालन करते हैं उन्हें लोकपाल कहते हैं।

अनीक—जो देव पदाति आदि सात तरहकी सेनामें विभक्त रहते हैं वे अनीक कहलाते हैं।

प्रकीर्णक—जो देव नगरवासियोंके समान हों उन्हें प्रकीर्णक कहते हैं।

आभियोग्य—जो देव दासोंके समान सवारी आदिके काम आवें वे अभियोग्य हैं।

किल्विषक—जो देव चाण्डालादिकी तरह नीच काम करनेवाले हों उन्हें किल्विषिक कहते हैं।

व्यन्तर और ज्योतिषी देवोमें इंद्र आदि भेदोंकी विशेषता—

त्रायस्त्रिंशलोकपालवर्ज्या व्यन्तरज्योतिष्काः॥ ५॥

अर्थ—व्यन्तर और ज्योतिषी देव त्रायस्त्रिंश तथा लोकपाल भेदसे रहित हैं॥ ५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देवोंमें इन्द्रोंकी व्यवस्था—

पूर्वयोर्द्वीन्द्राः ॥ ६ ॥

अर्थ—भवनवासी और व्यन्तरोंमें प्रत्येक भेदमें दो दो इन्द्र होते हैं।

भावार्थ—भवनवासियोंके दश भेदोंमें बीस और व्यन्तरोंके आठ भेदोंमें सोलह इन्द्र होते हैं तथा इतने ही प्रतीन्द्र होते हैं ॥६॥

देवोंमें स्त्रीसुखका वर्णन—

कायप्रवीचारा आ ऐशानात् ॥७॥

अर्थ—(आ ऐशानात्) ऐशान स्वर्ग पर्यन्तके देव अर्थात् भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और पहले दूसरे स्वर्गके देव (कायप्रवीचाराः) मनुष्योंके समान शरीरसे काम सेवन करते हैं। प्रवीचार=कामसेवन ॥ ७ ॥

शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनः प्रवीचाराः ॥ ॥

अर्थ—शेष स्वर्गके देव, देवियोंके स्पर्शसे, रूप देखनेसे, शब्द सुननेसे और मनके विचारनेसे कामसेवन करते हैं। अर्थात् तीसरे और चौथे स्वर्गके देव देवाङ्गनाओंके स्पर्शसे, पांचवें छठवें, सातवें, आठवें स्वर्गके देव देवियोंके रूप देखनेसे; नौवें, दशवें, ग्यारहवें और बारहवें स्वर्गके देव देवियोंके शब्द सुननेसे तथा तेरहवें, चौदहवें, पन्द्रहवें और सोलहवें स्वर्गके देव देवाङ्गनाओंके मनके विचारने मात्रसे तृप्त हो जाते हैं—उनकी कामेच्छा शांत हो जाती है ॥ ८ ॥

परेऽप्रवीचाराः ॥ ९ ॥

अर्थ—सोलहवें स्वर्गसे आगे देव कामसेवनसे रहित होते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं। इनके कामेच्छा ही उत्पन्न नहीं होती, तब उनके प्रतिकारसे क्या प्रयोजन ? ॥१०॥

भवनवासियोंके दश भेद—

भवनवासिनोऽसुरनागविद्युत्सुपर्णाग्निवातस्तनितोदधिद्वीपदिक्कुमाराः ॥ १० ॥

अर्थ—भवनवासी देवोंके असुरकुमार, नागकुमार, विद्युत्कुमार, सुपर्णकुमार, अग्निकुमार, वातकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार और दिक्कुमार ये दश भेद हैं।❀

व्यन्तर देवोंके आठ भेद—

व्यंन्तराः किन्नरकिंपुरुषमहोरगगन्धर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचाः ॥ ११ ॥

अर्थ—व्यन्तरदेव—किन्नर, किम्पुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत और पिशाच इस प्रकार आठ तरहके भेद होते हैं।

ज्योतिष्क देवोंके पांच भेद—

ज्योतिष्काः सूर्याचंद्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च ॥ १२ ॥

अर्थ—ज्योतिष्क देव—सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और प्रकीर्णक तारोंके भेदसे पांच प्रकारके हैं।

❀ असुरकुमारको छोड़कर ९ प्रकारके भवनवासी देव और राक्षसको छोड़कर ७ प्रकारके व्यन्तर देव रत्नप्रभा पृथ्वीके ऊपरके खर भागमें रहते हैं तथा असुरकुमार और राक्षस उसी पृथ्वीके पंक भागमें रहते हैं, इसके सिवाय व्यन्तर देवोंका मध्यलोकमें भी कई जगह निवास है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नोट—ज्योतिष्कदेवोंका निवास मध्यलोकके समधरातलसे ७९० योजनकी ऊँचाईसे लेकर ९०० योजनकी ऊंचाई तक आकाशमें है ॥ १२ ॥

ज्योतिष्कदेवोंका विशेष वर्णन—

मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ॥ १३ ॥

अर्थ—ऊपर कहे हुए ज्योतिष्कदेव (नृलोके) मनुष्यलोकमें (मेरुप्रदक्षिणाः) मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा देते हुए (नित्यगतयः) हमेशा गमन करते रहते हैं* ॥ १३ ॥

तत्कृतः कालविभागः ॥ १४ ॥

अर्थ—(कालविभागः) घड़ी घण्टा दिन रात आदि व्यवहार-कालका विभाग (तत्कृतः) उन्हीं गतिशील ज्योतिष्क देवोंके द्वारा किया गया है ॥ १४ ॥

बहिरवस्थिताः ॥ १५ ॥

अर्थ—मनुष्यलोक-अढ़ाई द्वीपसे बाहरके ज्योतिष्क देव स्थिर हैं ॥ १५ ॥

वैमानिक देवोंका वर्णन—

वैमानिकाः ॥ १६ ॥

अर्थ—अब यहांसे वैमानिक देवोंका वर्णन शुरू होता है।

विमान—जिसमें रहनेवाले देव अपनेको विशेष पुण्यात्मा समझें उन्हें विमान कहते हैं और विमानोंमें जो पैदा हों उन्हें वैमानिक कहते हैं ॥ १६ ॥

---

* जम्बूद्वीपमें २, लवणसमुद्रमें ४, धातकीखण्डमें १२, कालोदधिमें ४२ और पुष्करार्द्धमें ७२ सूर्य तथा इतने ही चन्द्रमा हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वैमानिक देवोंके भेद—

कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च ॥ १७ ॥

अर्थ—वैमानिक देवोंके दो भेद हैं—१-कल्पोपपन्न और २-कल्पातीत। जिनमें इन्द्र आदि दश भेदोंकी कल्पना होती है ऐसे सोलह स्वर्गोंको कल्प कहते हैं, उनमें जो पैदा हों उन्हें कल्पोपपन्न कहते हैं। और जो सोलहवें स्वर्गसे आगे पैदा हों उन्हें कल्पातीत कहते हैं॥ १७॥

कल्पोंका स्थितिक्रम—

उपर्युपरि ॥ १८ ॥

अर्थ—सोलह स्वर्गोंके आठ युगल, नव ग्रैवेयक, नव अनुदिश और पांच अनुत्तर ये सब विमान क्रमसे ऊपर ऊपर हैं॥ १८॥

वैमानिक देवोंके रहनेका स्थान—

सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवका-पिष्ठशुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेष्वानतप्राणतयोरा-रणाच्युतयोर्नवसु ग्रैवेयकेषु विजयवैजयन्तजयन्ता-पराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥ १९ ॥

अर्थ—सौधर्म-ऐशान, सानत्कुमार-माहेन्द्र, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर, लान्तव-कापिष्ठ, शुक्र-महाशुक्र, सतार-सहस्रार इन छह युगलोंके बारह स्वर्गमें, आनत-प्राणत, इन दो स्वर्गोंमें, आरण-अच्युत इन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दो स्वर्गोंमें, नव ग्रैवेयक× विमानोंमें, नव अनुदिश+ विमानोंमें और विजय वैजयन्त जयन्त अपराजित तथा सर्वार्थसिद्धि इन पांच अनुत्तर विमानोंमें वैमानिक देव रहते हैं।

नोट—इस सूत्रमें यद्यपि अनुदिश विमानोंका पाठ नहीं है तथापि 'नवसु' इस पदसे उनका ग्रहण कर लेना चाहिये ॥१९॥

वैमानिक देवोंमें उत्तरोत्तर अधिकता—

स्थितिप्रभावसुखद्युतिलेश्याविशुद्धीन्द्रियावधिविषयतोऽधिकाः ॥ ० ॥

अर्थ—वैमानिक देव-आयु, प्रभाव, सुख, द्युति, लेश्याकी विशुद्धता, इन्द्रिय विषय और अवधिज्ञानका विषय इन सबकी अपेक्षा ऊपर ऊपर विमानोंमें अधिक अधिक हैं ॥ २० ॥

वैमानिक देवोंमें उत्तरोत्तर हीनता—

गतिशरीरपरिग्रहाभिमानतो हीनाः ॥ २१ ॥

अर्थ—ऊपर ऊपरके देव, गति, शरीर, परिग्रह और अभिमानकी अपेक्षा हीने हीन हैं।

नोट—सोलहवें स्वर्गसे आगेके देव अपने विमानको छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं जाते ॥ २१ ॥

× नवग्रैवेयक—सुदर्शन, अमोघ, सुप्रबुद्ध, यशोधर, सुभद्र, विशाल, सुमन, सौमनस और प्रीतिकर।

+ नव अनुदिश—आदित्य, अर्चि, अर्चिमाली वैरोचन, प्रभास, अर्चिप्रभ, अर्चिमध्य, अर्चिरावर्त और अर्चिविशिष्ट।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वैमानिक देवोंमें शरीरकी ऊँचाईका क्रम इस प्रकार है—

स्वर्ग	हाथ	स्वर्ग	हाथ
१–२	७	१३–१४	३½
३–४	६	१५–१६	३
५–८	५	अधोग्रैवेयक	२½
९–१२	४	मध्यग्रैवेयक	२
		उपरिमग्रैवेयक, अनुदिश	१½
		अनुत्तर विमान	१

वैमानिक देवोंमें लेश्याका वर्णन—

पीतपद्मशुक्ललेश्या द्वित्रिशेषेषु ॥ २२ ॥

अर्थ—(द्वित्रिशेषेषु) दो युगलोंमें, तीन युगलोंमें तथा शेषके समस्त विमानोंमें क्रमसे (पीतपद्मशुक्ललेश्याः) पीत पद्म और शुक्ललेश्या होती है।

विशेषार्थ—पहले और दूसरे स्वर्गमें पीतलेश्या; तीसरे और चौथे स्वर्गमें पीत और पद्मलेश्या; पांचवें, छठवें, सातवें आठवें स्वर्गमें पद्मलेश्या; नवमें, दशवें, ग्यारहवें और बारहवें स्वर्गमें पद्म और शुक्ललेश्या तथा शेष समस्त विमानोंमें शुक्ललेश्या है। अनुदिश और अनुत्तरके १४ विमानोंमें परम शुक्ललेश्या होती है ॥ २२ ॥

कल्पसंज्ञा कहांतक है ?

प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः ॥ २३ ॥

अर्थ—(ग्रैवेयकेभ्यः प्राक्) ग्रैवेयकोंसे पहले पहलेके १६ स्वर्ग (कल्पाः) कल्प कहलाते हैं। इससे आगेके विमान कल्पातीत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं। नवग्रैवेयक वगैरहके देव एकसमान वैभवके धारी होते हैं और वे अहमिन्द्र कहलाते हैं॥ २३॥

लौकान्तिक देव—

ब्रह्मलोकालया लौकान्तिकाः॥ २४॥

अर्थ—ब्रह्मलोक (पांचवां स्वर्ग) है आलय (निवासस्थान) जिनका ऐसे लौकान्तिक देव हैं।

नोट—ये देव ब्रह्मलोकके अन्तमें रहते हैं अथवा एक भवावतारी होनेसे लोक (संसार) का अन्त (नाश) करनेवाले होते हैं। इसलिये लौकान्तिक कहलाते हैं। ये द्वादशांगके पाठी होते हैं, ब्रह्मचारी रहते हैं और तीर्थंकरोंके सिर्फ तपकल्याणकमें आते हैं। इन्हें 'देवर्षि' भी कहते हैं॥ २४॥

लौकान्तिक देवोंके नाम—

सारस्वतादित्यवह्न्यरुणगर्दतोयतुषिताव्याबाधारिष्टाश्च॥ २५॥

अर्थ—१ सारस्वत, २ आदित्य ३ वह्नि, ४ अरुण, ५ गर्दतोय, ६ तुषित, ७ अव्याबाध और ८ अरिष्ट ये आठ लौकांतिक देव हैं। वे ब्रह्मलोकका ऐशान आदि आठ दिशाओंमें रहते हैं॥ २५॥

अनुदिश तथा अनुत्तरवासी देवोंमें अवतारका नियम—

विजयादिषु द्विचरमाः॥ २६॥

अर्थ—विजय वैजयंत जयंत अपराजित तथा अनुदिश विमानोंके अहमिन्द्र द्विचरम होते हैं, अर्थात् मनुष्योंके दो जन्म लेकर नियमसे मोक्ष चले जाते हैं। किन्तु सर्वार्थसिद्धिके अहमिन्द्र एक भवावतारी ही होते हैं॥ २६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तिर्यञ्च कौन है ?

औपपादिकमनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः ॥२७॥

अर्थ—उपपाद जन्मवाले—देव नारकी तथा मनुष्योंसे अतिरिक्त जीव (तिर्यग्योनयः) तिर्यञ्च हैं। तिर्यञ्च समस्त संसारमें व्याप्त हैं। परन्तु त्रसनाडीमें ही रहते हैं।

भवनवासी देवोंकी उत्कृष्ट आयुका वर्णन—

स्थितिरसुरनागसुपर्णद्वीपशेषाणां सागरोपमत्रिपल्योपमार्द्धहीनमिताः ॥ २८ ॥

अर्थ—भवनवासियोंमें असुरकुमार, नागकुमार, सुपर्णकुमार, द्वीपकुमार और शेषके ६ कुमारोंकी आयु क्रमसे १ सागर, ३ पल्य, २½ पल्य, २ पल्य और १½ पल्य है॥ २८॥

वैमानिक देवोंकी उत्कृष्ट आयु—×

सौधर्मैशानयोः सागरोपमे अधिके ॥ २९ ॥

अर्थ—सौधर्म ऐशान स्वर्गके देवोंकी आयु दो सागरसे कुछ अधिक है।+

× यद्यपि भवनवासियोंके बाद व्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंकी आयु बतलानेका क्रम है तथापि लाघवके ख्यालसे यहां क्रमभंग कर वैमानिक देवोंका आयु बतला रहे हैं।

+ यह अधिकता घातायुष्क जीवोंकी अपेक्षा है। जिन्होंने पहले ऊपरको स्वर्गोकी आयु बांधा था बादमें संक्लेश परिणामोंके कारण आयुमें ह्रास होकर नीचेके स्वर्गोमें उत्पन्न होते हैं वे घातायुष्क कहलाते हैं। ऐसे देवोंकी आयु अन्य देवोंकी अपेक्षा आधा सागर अधिक होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नोट—यहां 'सागरोपमे' इस द्विवचनान्त प्रयोगसे ही दो सागर अर्थ किया जाता है॥ २९॥

सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः सप्त ॥ ३० ॥

अर्थ—सानत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्गमें देवोंकी आयु सात सागरसे कुछ अधिक है।

नोट—इस सूत्रमें अधिक शब्दोंकी अनुवृत्ति पूर्व सूत्रसे हुई है॥ ३०॥

त्रिसप्तनवैकादशत्रयोदशपञ्चदशभिरधिकानि तु ॥ ३१ ॥

अर्थ—आगेके युगलोंमें ७ सागरसे क्रमपूर्वक ३-७-९-११-१३ और १५ सागर अधिक आयु है। अर्थात् ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर स्वर्गमें १० सागरसे कुछ अधिक, लान्तव और कापिष्ट स्वर्गमें १४ सागरसे कुछ अधिक, शुक्र और महाशुक्र स्वर्गमें १६ सागरसे कुछ अधिक, सतार और सहस्रार स्वर्गमें १८ सागरसे कुछ अधिक,+ आनत और प्राणत स्वर्गमें २० सागर तथा आरण और अच्युत स्वर्गमें २२ सागर उत्कृष्ट स्थिति है॥ ३१॥

आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥ ३२ ॥

+ सूत्रमें 'तु' शब्द होनेके कारण अधिक शब्दका सम्बन्ध बारहवें स्वर्ग तक ही होता है, क्योंकि घातायुष्क जीवोंकी उत्पत्ति यहीं तक होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—(आरण्याच्युतात्) आरण और अच्युत स्वर्गसे (ऊर्ध्वम्) ऊपर (नवसु ग्रैवेयकेषु) नव ग्रैवेयकोंमें (विजयादिषु) विजय आदि चार विमान तथा नव अनुदिशोंमें* (च) और (सर्वार्थसिद्धौ) सर्वार्थसिद्धि विमानमें (एकैकेन) एक एक सागर बढ़ती हुई आयु है। अर्थात् पहले ग्रैवेयकमें २३ सागर, दूसरेमें २४ सागर आदि। अनुदिशोंमें ३२ सागर और अनुत्तरोंमें ३३ सागर उत्कृष्ट स्थिति है।

नोट—सूत्रमें 'सर्वार्थसिद्धौ' इस पदको विजयादिसे पृथक् कहनेसे सूचित होता है कि सर्वार्थसिद्धिमें सिर्फ उत्कृष्ट स्थिति ही होती है।

स्वर्गोंमें जघन्य आयुका वर्णन—

अपरा पल्योपममधिकम् ॥ ३३ ॥

अर्थ—सौधर्म और ऐशान स्वर्गमें जघन्य आयु एक पल्यसे कुछ अधिक है×॥ ३३ ॥

परतः परतः पूर्वापूर्वाऽनन्तराः ॥ ३४ ॥

अर्थ—(पूर्वापूर्वा) पहले पहले युगलकी उत्कृष्ट आयु (परतः परतः) आगे आगेके युगलोंमें (अनन्तराः) जघन्य आयु है। जैसे सौधर्म और ऐशान स्वर्गकी जो उत्कृष्ट आयु कुछ अधिक दो सागरकी है वह सानत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्गमें जघन्य आयु है। इसी क्रमसे आगे जानना चाहिए। सर्वार्थसिद्धिमें जघन्य आयु नहीं होती ॥ ३४ ॥

---

* आदि शब्दके 'प्रकारार्थक' होनेसे अनुदिशका भी ग्रहण होता है।

× असंख्यात वर्षोंका एक पल्य होता है और दश कोड़ाकोड़ी पल्योंका एक सागर होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नारकियोंकी जघन्य आयु—

नारकाणां च द्वितीयादिषु ॥ ३५ ॥

अर्थ—और इसी प्रकार दूसरे आदि नरकोंमें भी नारकियोंकी जघन्य आयु है। अर्थात् पहले नरककी उत्कृष्ट आयु दूसरे नरककी जघन्य आयु है। इसी तरह समस्त नरकोंमें जानना चाहिये ॥ ३५ ॥

प्रथम नरककी जघन्य आयु—

दशवर्षसहस्राणि प्रथमायाम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—पहले नरकमें नारकियोंकी जघन्य आयु दश हजार वर्षोंकी है ॥ ३६ ॥

भवनवासियोंकी जघन्य आयु—

भवनेषु च ॥ ३७ ॥

अर्थ—भवनवासियोंमें भी जघन्य आयु दश हजार वर्षोंकी है ॥ ३७ ॥

व्यन्तरोंकी जघन्य आयु—

व्यन्तराणां च ॥ ३८ ॥

अर्थ—व्यन्तर देवोंकी भी जघन्य स्थिति दश हजार वर्षोंकी है ॥ ३८ ॥

व्यन्तरोंकी उत्कृष्ट आयु—

परा पल्योपममधिकम् ॥ ३९ ॥

अर्थ—व्यन्तरोंकी उत्कृष्ट आयु एक पल्यसे कुछ अधिक है ॥ ३९ ॥

ज्योतिषी देवोंकी उत्कृष्ट आयु—

ज्योतिष्काणां च ॥ ४० ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—ज्योतिष्क देवोंकी भी उत्कृष्ट आयु कुछ अधिक एक पल्यकी है॥ ४०॥

ज्योतिष्क देवोंकी जघन्य आयु—

तदष्टभागोऽपरा ॥ ४१ ॥

अर्थ—ज्योतिष्क देवोंकी जघन्य आयु उस-एक पल्यके आठवें भाग है॥ ४१॥

लौकांतिक देवोंकी आयु—

लौकांतिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम् ॥ ४२ ॥

अर्थ—(सर्वेषाम्) समस्त (लौकांतिकानाम्) लौकांतिक देवोंकी जघन्य और उत्कृष्ट आयु (अष्टौ सागरोपमाणि) आठ सागरप्रमाण है॥ ४२॥

इति श्रीमदुमास्वामिविरचिते मोक्षशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः॥

प्रश्नावली।

(१) भवनत्रिकमें लेश्याएँ कौन कौन होती हैं?
(२) सोलहवें स्वर्गके आगेके देव प्रवीचारके बिना सुखी किस तरह रहते हैं?
(३) सामानिक आत्मरक्षक और किल्विषिक जातिके देवोंके लक्षण बताओ।
(४) स्वर्गलोकका नक्शा खींचकर यथास्थान सब व्यवस्था दर्शाओ।
(५) सर्वार्थसिद्धिमें जघन्य स्थिति कितनी है?
(६) व्यन्तर देव कहां रहते हैं?
(७) अढ़ाईद्वीपमें कितने सूर्य और कितने चन्द्रमा हैं?
(८) दिन आदिका विभाग किससे होता है?
(९) स्वर्गमें दिन रात होते हैं या नहीं?
(१०) लौकांतिक देवोंकी कितनी आयु है?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देवगति व्यवस्था [भवनत्रिक]

देव	निवास	भेद	इन्द्र	लेश्या	शरीरकी ऊंचाई	उत्कृष्ट आयु	ज० आयु	प्रवीचार
भवनवासी—		१०	४०	कृष्ण नील,				
१ असुरकुमार	रत्नप्रभाका पंकबहुल			कापोत और	२५ धनुष	१ सागर	दश हजार वर्ष	काय प्रवीचार
२ नागकुमार	भाग			जघन्य पीत	१० ,,	३ पल्य		,,
३ विद्युत्कुमार	रत्नप्रभा पृथ्वीके ऊपर नीचे एक एक हजार योजन छोड़कर खर भागमें			,,	१० ,,	१½ ,,		,,
४ सुपर्णकुमार				,,	१० ,,	२½ ,,		,,
५ अग्निकुमार				,,	१० ,,	१½ ,,		,,
६ वातकुमार				,,	१० ,,	१½ ,,		,,
७ स्तनितकुमार				,,	१० ,,	१½ ,,		,,
८ उदधिकुमार				,,	१० ,,	५½ ,,		,,
९ द्वीपकुमार				,,	१० ,,	२ ,,		,,
१० दिक्कुमार				,,	१० ,,	१½ ,,		,,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्यन्तर—		८	३२	कृष्ण, नील,	१० धनुष	एक पल्यसे कुछ अधिक	दश हजार वर्ष	काय प्रवीचार
१ किन्नर	उपरिष्ट खर भाग			कापोत और	१० ,,			
२ किंपुरुष	,,			जघन्य पीत	१० ,,			
३ महोरग	,,			,,	१० ,,			
४ गन्धर्व	,,			,,	१० ,,			
५ यक्ष	,,			,,	१० ,,			
६ राक्षस	पङ्कबहुल भाग			,,	१० ,,			
७ भूत	उपरिष्ट खर भाग			,,	१० ,,			
८ पिशाच	,,			,,	१० ,,			
ज्योतिष्क—	समान धरातलसे ७९० योजनकी ऊंचाईसे लेकर ९०० योजन तक मध्यलोकमें	५	२			कुछ अधिक १ पल्य	⅛ पल्य	काय प्रवीचार
१ सूर्य				,,	७ धनुष			
२ चन्द्र				,,	७ ,,			
३ ग्रह				,,	७ ,,			
४ नक्षत्र				,,	७ ,,			
५ प्रकीर्णक				,,	७ ,,			

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देवगति व्यवस्था (वैमानिक देव)

देव	निवास	भेद	इन्द्र	लेश्या	शरीर की ऊंचाई	उत्कृष्ट आयु	जघन्य आयु	प्रवीचार
कल्प—								
सौधर्म–ऐशान	ऊर्ध्वलोक	१२	२४	पीत	७ हाथ	साधिक २ सागर	साधिक १ पल्य	काय
सानत्कुमार–माहेंद्र	,,			पीत पद्म	६ हाथ	,, ७ ,,	,, २ सागर	स्पर्श
ब्रह्म–ब्रह्मोत्तर	,,			पद्मलेश्या	५ हाथ	,, १० ,,	,, ७ ,,	रूप
लांतव–कापिष्ठ	,,			,,	५ हाथ	,, १४ ,,	,, १० ,,	रूप
शुक्र महाशुक्र	,,			पद्म शुक्ल	४ हाथ	,, १६ ,,	,, १४ ,,	शब्द
शतार–सहस्रार	,,			,,	४ हाथ	,, १८ ,,	,, १६ ,,	शब्द
आनत–प्राणत	,,			शुक्ल	३½ हाथ	२० ,,	,, १८ ,,	मन
आरण अच्युत	,,			,,	३ हाथ	२२ ,,	,, २० ,,	मन
ग्रैवेयक—			अहमिंद्र					
सुदर्शन	,,			शुक्ल	२½ हाथ	२३ सागर	,, २२ सागर	अप्रवीचार
अमोघ	,,			,,	,,	२४ ,,	,, २३ ,,	,,
सुप्रबुद्ध	,,			,,	,,	२५ ,,	,, २४ ,,	,,
यशोधर	,,			,,	२ हाथ	२६ ,,	,, २५ ,,	,,
सुभद्र	,,			,,	,,	२७ ,,	,, २६ ,,	,,
विशाल	,,			,,	,,	२८ ,,	,, २७ ,,	,,
सुमन	,,			,,	१½ हाथ	२९ ,,	,, २८ ,,	,,
सौमन	,,			,,	,,	३० ,,	,, २९ ,,	,,
प्रीतिंकर	,,			,,	,,	३१ ,,	,, ३० ,,	,,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुदिश—	ऊर्ध्वलोक			परम शुक्ल	१½ हाथ	३२ सागर	साधि. ३१सागर	अप्रवीचार
आदित्य	„			„	„	३२ „	„ ३१ „	„
अर्चि	„			„	„	३२ „	„ ३१ „	„
अर्चिमाली	„			„	„	३२ „	„ ३१ „	„
वैरोचन	„			„	„	३२ „	„ ३१ „	„
प्रभास	„			„	„	३२ „	„ ३१ „	„
अर्चिप्रभ	„			„	„	३२ „	„ ३१ „	„
अर्चिर्मध्य	„			„	„	३२ „	„ ३१ „	„
अर्चिरावर्त	„			„	„	३२ „	„ ३१ „	„
अर्चिविशिष्ट								
अनुत्तर—	„			„	१ हाथ	३३ „	„ ३२ „	„
विजय	„			„	„	३३ „	„ ३२ „	„
वैजयन्त	„			„	„	३३ „	„ ३२ „	„
जयन्त	„			„	„	३३ „	„ ३२ „	„
अपराजित	„			„	„	३३ „	जघन्य नहीं होती	„
सर्वार्थसिद्धि								

(१) वैमानिक देवोंके १२ भेद इन्द्रोंकी अपेक्षा हैं। १, २, ३, ४ तथा १३, १४, १५ और १६ वें स्वर्गमें प्रत्येक स्वर्गका एक एक इन्द्र तथा मध्यके ८ स्वर्गोंमें युगल युगलके इन्द्र हैं।

(२) पांचवें स्वर्गमें जो लौकांतिक देव रहते हैं उनकी आयु ८ सागरकी होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पंचम अध्याय

अजीवतत्त्वका वर्णन

अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः ॥ १ ॥

अर्थ—(धर्माधर्माकाशपुद्गलाः) धर्म अधर्म आकाश और पुद्गल ये चार (अजीवकायाः) अजीव तथा बहुप्रदेशी हैं।

नोट—इन सूत्रमें बहुप्रदेशी नहीं होनेसे काल द्रव्यका ग्रहण नहीं किया है× ॥ १ ॥

द्रव्योंकी गणना

द्रव्याणि ॥ २ ॥

अर्थ—उक्त चार पदार्थ द्रव्य हैं। द्रव्यका लक्षण आगेके सूत्रोंमें कहा जावेगा। ॥ २ ॥

जीवाश्च ॥ ३ ॥

अर्थ—जीव भी द्रव्य है।

नोट—यहां 'जीवाः' इस बहुवचनसे जीवद्रव्यके अनेक भेद सूचित होते हैं। इनके सिवाय ३९ वें सूत्रमें कालद्रव्यका भी कथन होगा, इसलिये इन सबको मिलनेपर १–जीव द्रव्य, २–पुद्गल द्रव्य, ३–धर्म द्रव्य, ४–अधर्म द्रव्य, ५–आकाश द्रव्य और ६–काल द्रव्य ये छह द्रव्य होते हैं ॥ ३ ॥

× जो द्रव्य सत्तारूप होकर बहुप्रदेशी हों उन्हें अस्तिकाय कहते हैं। वे पाँच हैं—१–जीव, २–पुद्गल, ३–धर्म, ४–अधर्म और आकाश।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्रव्योंकी विशेषता—

नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥ ४ ॥

अर्थ—ऊपर कहे हुए सभी द्रव्य नित्य अवस्थित और अरूपी हैं। कभी नष्ट नहीं होते इसलिये नित्य हैं। अपनी ६ संख्याका उल्लङ्घन नहीं करते, इसलिये अवस्थित हैं और रूप, रस, गन्ध तथा स्पर्शसे रहित हैं इसलिये अरूपी हैं ॥ ४ ॥

पुद्गल द्रव्य अरूपी नहीं है—

रूपिणः पुद्गलाः ॥ ५ ॥

अर्थ—पुद्‌गल द्रव्य रूपी अर्थात् मूर्तिक हैं।

नोट—यद्यपि सूत्रमें पुद्गलको सिर्फ रूपी बतलाया है, पर साहचर्यसे रस, गन्ध तथा स्पर्शका भी ग्रहण हो जाता है ॥ ५ ॥

द्रव्योंके स्वभेदकी गणना—

आ आकाशादेकद्रव्याणि ॥ ६ ॥

अर्थ—आकाश पर्यन्त एक एक द्रव्य है अर्थात् धर्म द्रव्य, अधर्मद्रव्य और आकाशद्रव्य एक एक हैं। जीव द्रव्य अनन्त हैं, पुद्गल द्रव्य अनन्तानन्त हैं और कालद्रव्य असंख्यात (अणुरूप) हैं ॥ ६ ॥

निष्क्रियाणि च ॥ ७ ॥

अर्थ—धर्म, अधर्म और आकाश ये तीनों द्रव्य क्रियारहित हैं। क्रिया—एक स्थानसे दूसरे स्थानमें प्राप्त होनेको क्रिया कहते हैं।

नोट—धर्म और अधर्म द्रव्य समस्त लोकाकाशमें व्याप्त हैं तथा आकाशद्रव्य लोक और अलोक दोनों जगह व्याप्त है, इसलिये अन्य क्षेत्रका अभाव होनेसे इनमें क्रिया नहीं होती ॥ ७ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्रव्योंके प्रदेशोंका वर्णन—

असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मैकजीवानाम् ॥ ८ ॥

अर्थ—(धर्माधर्मैकजीवानाम्) धर्म अधर्म और एक जीव-द्रव्यके (असंख्येयाः) असंख्यात (प्रदेशाः) प्रदेश होते हैं।

प्रदेश—जितने क्षेत्रको एक पुद्गल परमाणु रोकता है उतने क्षेत्रको एक प्रदेश कहते हैं।

नोट—सब जीव द्रव्योंके अनन्तानन्त प्रदेश होते हैं, इसलिए सूत्रमें एक जीवका ग्रहण किया है॥ ८॥

आकाशस्यानन्ताः ॥ ९ ॥

अर्थ—आकाशके अनन्त प्रदेश हैं। परन्तु लोकाकाशके असंख्यात ही हैं॥ ९॥

संख्येयाऽसंख्येयाश्च पुद्गलानाम् ॥ १० ॥

अर्थ—(पुद्गलानाम्) पुद्गलोंके (संख्येयाऽसंख्येयाः च) संख्यात, असंख्यात और अनन्त प्रदेश हैं।

शङ्का—जब लोकाकाशमें असंख्यात ही प्रदेश हैं तब उसमें अनन्त प्रदेशवाले पुद्गल द्रव्य तथा शेष द्रव्य किस तरह रह सकेंगे ?

समाधान—पुद्गलद्रव्यमें दो तरहका परिणमन होता है—एक सूक्ष्म और दूसरा स्थूल। जब उसमें सूक्ष्म परिणमन होता है तब लोकाकाशके एक प्रदेशमें भी अनन्त प्रदेशवाला पुद्गल स्कन्ध स्थान पा लेता है। इसके सिवाय समस्त द्रव्योंमें एक दूसरेको अवगाहन देनेकी सामर्थ्य है, जिससे अल्प क्षेत्रमें ही समस्त द्रव्योंके निवासमें कोई बाधा नहीं होती॥ १०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नाणोः ॥ ११ ॥

अर्थ—पुद्गलके परमाणुके द्वितीयादिक प्रदेश नहीं हैं अर्थात् वह एकप्रदेशी ही है ॥ ११ ॥

समस्त द्रव्योंके रहनेका स्थान—

लोकाकाशेऽवगाहः ॥ १२ ॥

अर्थ—ऊपर कहे हुए समस्त द्रव्योंका अवगाह (स्थान) लोकाकाशमें है ।

लोकाकाश—आकाशके जितने हिस्सेमें जीव आदि छहों द्रव्य पाए जावें उतने हिस्सेको लोकाकाश कहते हैं। बाकी हिस्सा अलोकाकाश कहलाता है ॥ १२ ॥

धर्माधर्मयोः कृत्स्ने ॥ १३ ॥

अर्थ—धर्म और अधर्म द्रव्यका अवगाह तिलमें तेलकी तरह समस्त लोकाकाशमें है ॥ १३ ॥

एकप्रदेशादिषु भाज्यः पुद्गलानाम् ॥ १४ ॥

अर्थ—(पुद्गलानाम्) पुद्गल द्रव्यका अवगाह (एकप्रदेशादिषु) लोकाकाशके एक प्रदेशको लेकर संख्यात असंख्यात प्रदेशोंमें (भाज्यः) विभाग करनेयोग्य है ॥ १४ ॥

असंख्येयभागादिषु जीवानाम् ॥ १५ ॥

अर्थ—(जीवानाम्) जीवोंका अवगाह (असंख्येयभागादिषु) लोकाकाशके असंख्यातवें भागसे लेकर सम्पूर्ण लोकक्षेत्रमें है ॥१५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रश्न—जबकि एक जीव द्रव्य असंख्यात प्रदेशी है तब वह लोकके असंख्यातवें भागमें कैसे रह सकता है? समाधान—

प्रदेशसंहारविसर्पाभ्यां प्रदीपवत् ॥ १६ ॥

अर्थ—(प्रदीपवत्) दीपकके प्रकाशकी तरह (प्रदेशसंहार-विसर्पाभ्यां) प्रदेशोंके संकोच और विस्तारके द्वारा जीव लोकाकाशके असंख्यातवें आदि भागोंमें रहता है, अर्थात् जिस तरह एक बड़े मकानमें दीपकके रख देनेसे उसका प्रकाश समस्त मकानमें फैल जाता है और उसी दीपकको एक छोटेसे बर्तनके भीतर रख देनेसे उसका प्रकाश उसीमें संकुचित होकर रह जाता है, उसी तरह जीव भी जितना बड़ा या छोटा शरीर पाता है उसमें उतना ही विस्तृत या संकुचित होकर रह जाता है। परन्तु केवली समुद्घात+ अवस्थामें सम्पूर्ण लोकाकाशमें व्याप्त हो जाता है और सिद्ध अवस्थामें अन्तिम शरीरसे कुछ कम रहता है ॥ १६ ॥

धर्म और अधर्म द्रव्यका उपकार या लक्षण—

गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकारः ॥ १७ ॥

अर्थ—स्वयमेव गमन तथा स्थितिको प्राप्त हुए जीव और पुद्गलोंको गति तथा स्थितिमें सहायता देना क्रमसे धर्म और अधर्म द्रव्यका उपकार है।

भावार्थ—जो जीव और पुद्गलोंको चलनेमें सहायक हो उसे धर्म द्रव्य तथा जो ठहरनेमें सहायक हो उसे अधर्म द्रव्य कहते हैं ॥ १७ ॥

+ मूल शरीरको न छोड़कर आत्माके प्रदेशोंके बाहर निकलनेको समुद्घात कहते हैं। इसके सात भेद होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आकाशका उपकार या लक्षण—

आकाशस्यावगाहः ॥ १८ ॥

अर्थ—समस्त द्रव्योंको अवकाश देना आकाशका उपकार है।

भावार्थ—जो सब द्रव्योंको ठहरनेके लिये स्थान देवे उसे आकाश कहते हैं ॥ १८॥

पुद्गल द्रव्यका उपकार—

शरीरवाङ्मनःप्राणापानाः पुद्गलानाम् ॥ १९ ॥

अर्थ—औदारिक आदि शरीर, वचन मन तथा श्वासोच्छ्वास ये पुद्गलद्रव्यके उपकार हैं, अर्थात् शरीरादिकी रचना पुद्गलसे ही होती है॥ १९॥

सुखदुःखजीवितमरणोपग्रहाश्च ॥ २० ॥

अर्थ—इन्द्रियजन्य सुख दुःख जीवन और मरण ये भी पुद्गल द्रव्यके उपकार हैं।

नोट १—इस सूत्रमें जो उपग्रह शब्दका ग्रहण किया है उससे सूचित होता है कि पुद्गल परस्परमें एक दूसरेका उपकार करते हैं जैसे-राख कांसेका, पानी लोहाका, साबुन कपड़ेका आदि।

नोट—यहां उपकार शब्दका अर्थ निमित्त मात्र ही समझना चाहिए। अन्यथा दुःख, मरण आदि उपकार नहीं कहलावेंगे ॥२०॥

जीवोंका उपकार—

परस्परोपग्रहो जीवानाम् ॥ २१ ॥

अर्थ—जीवोंका परस्पर उपकार है अर्थात् जीव कारणवश

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक दूसरेका उपकार करते हैं। जैसे-स्वामी सेवकका, सेवक स्वामीका, गुरु शिष्यका और शिष्य गुरुका ॥ २१ ॥

कालका उपकार—

वर्तनापरिणामक्रियाः परत्वापरत्वे च कालस्य ॥ २२

अर्थ—वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व और अपरत्व ये काल द्रव्यके उपकार हैं।

वर्तना—जो द्रव्योंको बरतावें उसे वर्तना कहते हैं।×

परिणाम—एक धर्मके त्यागरूप और दूसरे धर्मके ग्रहणरूप जो पर्याय है उसे परिणाम कहते हैं। जैसे जीवोंमें ज्ञानादि और पुद्गलोंमें वर्णादि।

क्रिया—हलन चलनरूप परिणतिको क्रिया कहते हैं।

परत्वापरत्व—छोटे बड़े व्यवहारको परत्वापरत्व कहते हैं। जैसे—२५ वर्षके मनुष्यको बड़ा और २० वर्षके मनुष्यको उसकी अपेक्षा छोटा कहते हैं।

ये सब कालद्रव्यकी सहायतासे होते हैं, इसलिये इन्हें देखकर अमूर्तिक निश्चय कालद्रव्यका अनुमान कर लेना चाहिये ॥ २२ ॥

पुद्गल द्रव्यका लक्षण—

स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गलाः ॥ २३ ॥

अर्थ—स्पर्श, रस, गन्ध और वर्णवाले पुद्गल होते हैं।

विशेष—ये चारों गुण हरएक पुद्गलमें एकसाथ रहते हैं। इनके उत्तर भेद इस प्रकार हैं—

× यद्यपि सर्व द्रव्य अपने आप वर्तते हैं तथापि उसके वर्तनमें जो बाह्य सहकारी कारण हो उसे वर्तना कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्पर्शके आठ भेद—१ कोमल, २ कठोर, ३ हलका, ४ भारी, ५ शीत, ६ उष्ण, ७ स्निग्ध और ८ रूक्ष।

रसके पांच भेद—१ खट्टा, २ मीठा, ३ कडुवा, ४ कषायला और ५ चरपरा।

गन्धके दो भेद—१ सुगन्ध और २ दुर्गंध।

वर्णके पांच भेद—काला, नीला, पीला, लाल, और सफेद। ये बीस पुद्गलके गुण कहलाते हैं क्योंकि हमेशा उसीमें रहते हैं॥ २३॥

पुद्गलकी पर्याय—

शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छाया-तपोद्योतवन्तश्च ॥ २४ ॥

अर्थ—उक्त लक्षणवाले पुद्गल-शब्द, गन्ध, सूक्ष्मता, स्थूलता, संस्थान (आकार), भेद, अन्धकार, छाया, आतप और उद्योत सहित हैं। अर्थात् ये पुद्गलकी पर्याय हैं॥ २४॥

पुद्गलके भेद—

अणवः स्कन्धाश्च ॥ २५ ॥

अर्थ—पुद्गलद्रव्य अणु और स्कन्ध इस प्रकार दो भेदरूप है। अणु—जिसका दूसरा विभाग न हो सके ऐसे पुद्गलको अणु कहते हैं।

स्कन्ध—दो तीन संख्यात असंख्यात तथा अनन्त परमाणुओंके पिण्डको स्कन्ध कहते हैं॥ २५॥

स्कन्धोंकी उत्पत्तिका कारण—

भेदसङ्घातेभ्य उत्पद्यन्ते ॥ २६ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—पुद्गलद्रव्यके स्कन्ध, भेद–बिछुड़ने, संघात–मिलने और भेद संघात–दोनोंसे उत्पन्न होते हैं। जैसे १०० परमाणुवाला स्कन्ध है उसमेंसे १० परमाणु बिखर जानेसे ९० परमाणुवाला स्कन्ध बन जाता है और उसीमें १० परमाणु मिल जानेसे १०० परमाणुवाला स्कन्ध बन जाता है और उसीमें एकसाथ दश परमाणुओंके बिछुड़ने और १५ परमाणुओंके मिल जानेसे १०५ परमाणुवाला स्कन्ध बन जाता है।

नोट—सूत्रमें द्विवचनके स्थानमें जो बहुवचन रूप प्रयोग किया उसीसे यह तीसरा अर्थ व्यक्त हुआ है॥ २६॥

अणुकी उत्पत्तिका कारण—

भेदादणुः ॥ २७ ॥

अर्थ—अणुकी उत्पत्ति भेदसे ही होती है॥ २७॥

चाक्षुष (देखने योग्न–स्थूल) स्कन्धकी उत्पत्ति—

भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः ॥ २८ ॥

अर्थ—(चाक्षुषः) चक्षुइन्द्रियसे देखने योग्य स्कन्ध (भेद-संघाताभ्याम्) भेद और संघात दोनोंसे ही उत्पन्न होते हैं। अकेले भेदसे उत्पन्न नहीं हो सकते॥ २८॥

द्रव्यका लक्षण—

सद्द्रव्यलक्षणम् ॥ २९ ॥

अर्थ—द्रव्यका लक्षण सत् (अस्तित्व) है॥ २९॥

७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्रव्य विभाग

- द्रव्य
  - जीव
    - मुक्त
    - संसारी
      - त्रस
        - द्वीन्द्रिय
        - त्रीन्द्रिय
        - चतुरिन्द्रिय
        - पंचेन्द्रिय
          - सैनी
            - नरक
              - १ रत्नप्रभागत
              - २ शर्कराप्रभागत
              - ३ वालुकाप्रभागत
              - ४ पङ्कप्रभागत
              - ५ धूमप्रभागत
              - ६ तमःप्रभागत
              - ७ महातमःप्रभागन
            - तिर्यंच
              - जलचर
              - थलचर
              - नभचर
            - मनुष्य
              - आर्य
                - ऋद्धिप्राप्त
                  - १ बुद्धि
                  - २ विक्रिया
                  - ३ तप
                  - ४ बल
                  - ५ औषधि
                  - ६ रस
                  - ७ अक्षीण
                - अनृद्धिप्राप्त
                  - १ क्षेत्रार्य
                  - २ जात्यार्य
                  - ३ कर्मार्य
                  - ४ चारित्रार्य
                  - ५ दर्शनार्य
              - म्लेच्छ
                - क्षेत्रम्लेच्छ
                - कर्मम्लेच्छ
            - देव
          - असैनी
      - स्थावर
        - पृथ्वी
        - जल
        - तेज
        - वायु
        - वनस्पति
  - अजीव
    - पुद्गल
      - १ अणु
      - २ स्कंध
    - धर्म
    - अधर्म
    - आकाश
      - लोक
      - अलोक
    - काल
      - निश्चय-व्यवहार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सत्‌का लक्षण—

उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ॥ ३० ॥

अर्थ—जो उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य कर सहित हो वह सत् है।

उत्पाद—द्रव्यमें नवीन पर्यायकी उत्पत्तिको उत्पाद कहते हैं। जैसे मिट्टीकी पिण्डपर्यायसे घटका।

व्यय—पूर्व पर्यायके विनाशको व्यय कहते हैं। जैसे घटपर्याय उत्पन्न होनेपर पिण्डपर्यायका।

ध्रौव्य—दोनों पर्यायोंमें मौजूद रहनेको ध्रौव्य कहते हैं। जैसे पिण्ड तथा घटपर्यायमें मिट्टीका ॥ ३० ॥

नित्यका लक्षण—

तद्भावाव्ययं नित्यम् ॥ ३१ ॥

अर्थ—जो द्रव्य तद्भावरूपसे अव्यय है वही नित्य है।

भावार्थ—प्रत्यभिज्ञानके हेतुको तद्भाव कहते हैं। जिस द्रव्यको पहले समयमें देखनेके बाद दूसरे आदि समयोंमें देखने पर 'यह वही है जिसे पहले देखा था' ऐसा जोड़रूप ज्ञान हो वह द्रव्य नित्य है। परन्तु यह नित्यता पदार्थमें सामान्य स्वरूपकी अपेक्षा होती है. विशेष अर्थात् पर्यायकी अपेक्षा सभी द्रव्य अनित्य हैं। इसलिये संसारके सब पदार्थ नित्यानित्यरूप हैं ॥ ३१ ॥×

प्रश्न—एक ही द्रव्यमें नित्यता और अनित्यता ये दो विरुद्ध धर्म किस प्रकार रहते हैं? समाधान—

× "नित्यं तदेवेदमिति प्रतीतेर्न नित्यमन्यत्प्रतिपत्तिसिद्धेः।
न तद्विरुद्धं बहिरन्तरङ्गनिमित्तनैमित्तिकयोगतस्ते ॥"
—समन्तभद्र।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्पितानर्पितसिद्धेः ॥ ३२ ॥

अर्थ—विवक्षित और अविवक्षितरूपसे एक ही द्रव्यमें नाना धर्म रहते हैं। वक्ता जिस धर्मको कहनेकी इच्छा करता है उसे अर्पित-विवक्षित कहते हैं। और वक्ता उस समय जिस धर्मको नहीं कहना चाहता है वह अनर्पित-अविवक्षित है। जैसे वक्ता यदि द्रव्यार्थिक नयसे वस्तुका प्रतिपादन करेगा तो नित्यता विवक्षित कहलावेगी और यदि पर्यायार्थिक नयसे प्रतिपादन करेगा तो अनित्यता विवक्षित होगी। जिस समय किसी पदार्थको द्रव्यकी अपेक्षा नित्य कहा जा रहा है उसी समय वह पदार्थ पर्यायकी अपेक्षा अनित्य भी है। पिता, पुत्र, मामा, भानजा आदिकी तरह एक ही पदार्थमें अनेक धर्म रहने पर भी विरोध नहीं आता है ॥ ३२ ॥+

परमाणुओंके बन्ध होनेमें कारण—

स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्धः ॥ ३३ ॥

अर्थ—चिकनाई और रूखापनके निमित्तसे दो तीन आदि परमाणुओंका बन्ध होता है।

बन्ध—अनेक पदार्थोंमें एकपनेका ज्ञान करानेवाले सम्बन्ध-विशेषको बन्ध कहते हैं ॥ ३३ ॥

न जघन्यगुणानाम् ॥ ३४ ॥

अर्थ—जघन्य गुण सहित परमाणुओंका बन्ध नहीं होता।

+ जैनागममें यह 'सूत्र स्याद्वाद सिद्धान्त' का मूलभूत है। पाठक दही मथनेवाली गोपी आदिका उदाहरण देकर विद्यार्थियोंको विवक्षा, अविवक्षा, गौणता, मुख्यता आदिका स्वरूप समझानेकी कोशिश करें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुण—स्निग्धता और रूक्षताके अविभागी प्रतिच्छेदों (जिसका टुकड़ा न हो सके ऐसे अंशों) को गुण कहते हैं।

जघन्य गुणसहित परमाणु—जिस परमाणुमें स्निग्धता और रूक्षताका एक अविभागी अंश हो उसे जघन्य गुणसहित परमाणु कहते हैं॥ ३४॥

गुणसाम्ये सदृशानाम् ॥ ३५॥

अर्थ—गुणोंकी समानता होने पर समान जातिवाले परमाणुके साथ बन्ध नहीं होता। जैसे दो गुणवाले स्निग्ध परमाणुका दूसरे दो गुणवाले स्निग्ध परमाणुके साथ बन्ध नहीं होता।

नोट—सूत्रमें "सदृशानाम्" इस पदके ग्रहणसे प्रकट होता है कि गुणोंकी विषमतामें समान जातिवाले अथवा भिन्न जातिवाले पुद्गलोंका बन्ध हो जाता है॥ ३५॥

बन्ध किनका होता है—

द्व्यधिकादिगुणानां तु ॥ ३६॥

अर्थ—किन्तु दो अधिक गुणवालोंके साथ ही बन्ध होता है। अर्थात् बन्ध तभी होगा जब एक परमाणुसे दूसरे परमाणुमें दो अधिक गुण होवें। जैसे दो गुणवाले परमाणुका चार गुणवाले परमाणुके साथ बन्ध होगा, इससे अधिक व कम गुणवालेके साथ नहीं होगा। यह बन्ध स्निग्धका, रूक्ष रूक्षका और स्निग्ध रूक्षका भी होता है॥ ३६॥

बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च ॥ ३७॥

अर्थ—(च) और (बन्धे) बन्धरूप अवस्थामें (अधिकौ) अधिक गुणवाले परमाणुओंको अपने रूप (पारिणामिकौ) परिण-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मानेवाले होते हैं। जैसे गीला गुड़ अपने साथ बन्धको प्राप्त हुए रजको गुड़रूप परिणमा लेता है ॥ ६७ ॥

द्रव्यका लक्षण—

गुणपर्ययवद् द्रव्यम् ॥ ३८ ॥

अर्थ—जिसमें गुण और पर्याय पाई जावे उसे द्रव्य कहते हैं।

गुण—द्रव्यकी अनेक पर्याय पलटते रहनेपर भी जो द्रव्यसे कभी पृथक् न हो, निरन्तर द्रव्यके साथ रहे उसे गुण कहते हैं+। जैसे जीवके ज्ञान आदि, पुद्गलके रूप रसादि।

पर्याय—क्रमसे होनेवाली वस्तुकी विशेषताको पर्याय कहते हैं। जैसे जीवकी नर नारकादि ॥ ३८ ॥

काल भी द्रव्य है—

कालश्च* ॥ ३९ ॥

अर्थ—काल भी द्रव्य है, क्योंकि यह भी उत्पाद व्यय ध्रौव्य तथा गुण पर्यायोंसे सहित है।

नोट—यह काल द्रव्य रत्नोंकी राशिकी तरह एक दूसरेसे पृथक् रहते हुए लोकाकाशके समस्त प्रदेशोंपर स्थित है। यह एकप्रदेशी और अमूर्तिक है ॥ ३९ ॥

कालद्रव्यकी विशेषता—

सोऽनन्तसमयः ॥ ४० ॥

अर्थ—वह काल द्रव्य अनन्त समयवाला है। यद्यपि वर्त-

+ यह द्रव्यका लक्षण पूर्वलक्षणसे भिन्न नहीं है। सिर्फ शब्दभेद है अर्थभेद नहीं। क्योंकि पर्यायसे उत्पाद और व्ययकी तथा गुणसे ध्रौव्य अर्थकी प्रतीति हो जाती है। *'च' का अन्वय 'द्रव्याणि' सूत्रके साथ है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मान काल एक समयमात्र ही है तथापि भूत भविष्यत्‌की अपेक्षा अनन्त समयवाला है।

समय—कालद्रव्यके सबसे छोटे हिस्सेको समय कहते हैं। मंदगतिसे चलनेवाला पुद्गल परमाणु आकाशके एक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशपर जितने कालमें पहुंचता है उतना काल एक समय है। इन समयोंके समूहसे ही आवली, घण्टा आदि व्यवहारकाल होता है। व्यवहारकाल निश्चय कालद्रव्यकी पर्याय है।

निश्चय कालद्रव्य—लोकाकाशके प्रत्येक प्रदेश पर रत्नोंकी राशिकी तरह जो स्थित है उसे निश्चय कालद्रव्य कहते हैं। वर्तना उसका कार्य है॥ ४०॥

गुणका लक्षण—

द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः ॥ ४१ ॥

अर्थ—जो द्रव्यके आश्रय हों और स्वयं दूसरे गुणोंसे रहित हों वे गुण कहलाते हैं, जैसे—जीवके ज्ञान आदि। ये जीव द्रव्यके आश्रय रहते हैं तथा इनमें कोई दूसरा गुण नहीं रहता॥ ४१॥

पर्यायका लक्षण—

तद्भावः परिणामः ॥ ४२ ॥

अर्थ—जीवादि द्रव्य जिस रूप हैं उनके उसीरूप रहनेको परिणाम या पर्याय कहते हैं। जैसे जीवकी नर-नारकादि पर्याय ॥ ४२॥

विशेष—पर्यायके दो भेद हैं–१ व्यञ्जन पर्याय और २ अर्थ पर्याय। प्रदेशवत्त्व गुणके विकारको व्यञ्जन पर्याय कहते हैं और गुणोंके अविभागी प्रतिच्छेदोंके परिणमनको अर्थ पर्याय कहते हैं।

इति श्रीमदुमास्वामिविरचिते मोक्षशास्त्रे पञ्चमोऽध्यायः॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रश्नावली।

(१) अस्तिकाय किसे कहते हैं व कितने हैं?

(२) जीव असंख्यात-प्रदेशी होनेपर भी अल्प शरीरमें किस प्रकार रहता है?

(३) कालद्रव्यके क्या उपकार हैं?

(४) अलोकाकाशके आकाशमें कालद्रव्यके बिना उत्पाद आदि किस तरह होते हैं?

(५) पुद्गल द्रव्यके कितने प्रदेश हैं?

(६) 'अर्पितानर्पितसिद्धेः" इस सूत्रका क्या आशय है?

(७) 'जघन्य गुण' शब्दका क्या अर्थ है?

(८) बन्ध किन किनका होता है?

(९) यदि धर्म द्रव्य न मानकर उसका कार्य आकाश द्रव्यसे लिया जावे तो क्या हानि होगी?

(१०) काल द्रव्य अजीव क्यों है?

षष्ठ अध्याय

आस्रवतत्वका वर्णन

योगके भेद व स्वरूप—

कायवाङ्मनःकर्मयोगः ॥ १ ॥

अर्थ—काय वचन और मनकी क्रियाको योग कहते हैं। अर्थात् काय वचन और मनके द्वारा आत्माके प्रदेशोंमें जो परि-(हलन चलन) होता है उसे योग कहते हैं। योगके तीन भेद हैं-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कायय़ोग—कायके निमित्तसे आत्माके प्रदेशोंमें जो हलन-चलन होता है उसे काययोग कहते हैं।

वचनयोग—वचनके निमित्तसे आत्माके प्रदेशोंमें जो हलन-चलन होता है उसे वचनयोग कहते हैं।

मनोयोग—मनके निमित्तसे आत्माके प्रदेशोंमें जो हलन-चलन होता है उसे मनोयोग कहते हैं।

इन तीनों योगोंकी उत्पत्तिमें वीर्यान्तराय कर्मका क्षयोपशम कारण है॥ १॥

आस्रवका स्वरूप—

स आस्रवः ॥ २॥

अर्थ—वह तीन प्रकारका योग ही आस्रव है। जिस प्रकार कुएके भीतर पानी आनेमें झिरें कारण होती हैं उसी प्रकार आत्मामें कर्म आनेमें योग कारण हैं। कर्मोंके आनेके द्वारको आस्रव कहते हैं।

नोट—यद्यपि योग आस्रवके होनेमें कारण हैं तथापि सूत्रमें कारणमें कार्यका उपचार कर उसे आस्रव रूप कह दिया है। जैसे—प्राणोंकी स्थितिमें कारण होनेसे अन्न ही को प्राण कह देते हैं॥ २॥

योगके निमित्तसे आस्रवका भेद—

शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य ॥ ३॥

अर्थ—शुभ योग पुण्यकर्मके आस्रवमें और अशुभ योग पापकर्मके आस्रवमें कारण है।

शुभयोग—शुभ परिणामोंसे रचे हुए योगको शुभयोग कहते हैं। जैसे—अरहन्त भक्ति करना, जीवोंकी रक्षा करना आदि।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अशुभ योग—अशुभ परिणामोंसे रचे हुए योगको अशुभ योग कहते हैं। जैसे—जीवोंकी हिंसा करना, झूठ बोलना आदि।

पुण्य—जो आत्माको पवित्र करे उसे पुण्य कहते हैं।

पाप—जो आत्माको अच्छे कार्योंसे बचावे-दूर करे उसे पाप कहते हैं॥ ३॥

स्वामीकी अपेक्षा आस्रवके भेद—

सकषायाकषाययोः साम्परायिकेर्यापथयोः ॥ ४ ॥

अर्थ—वह योग कषाय सहित जीवोंके साम्परायिक आस्रव और कषाय रहित जीवोंके ईर्यापथ आस्रवका कारण है।

कषाय—जो आत्माको कषै अर्थात चारों गतियोंमें भटकाकर दुःख देवे उसे कषाय कहते हैं। जैसे-क्रोध, मान, माया, लोभ।

साम्परायिक आस्रव—जिस आस्रवका संसार ही प्रयोजन है उसे साम्परायिक आस्रव कहते हैं।

ईर्यापथ—स्थिति और अनुभाग रहित कर्मोंके आस्रवको ईर्यापथ आस्रव कहते हैं।

नोट—ईर्यापथ आस्रव ११ वेंसे १३ वें गुणस्थान तकके जीवोंके होता है, और उसके पहले गुणस्थानोंमें साम्परायिक आस्रव होता है। १४ वें गुणस्थानमें आस्रवका सर्वथा अभाव हो जाता है॥ ४॥

साम्परायिक आस्रवके भेद—

इन्द्रियकषायाव्रतक्रियाः पञ्चचतुः पञ्चपञ्चविंशति संख्याः पूर्वस्य भेदाः ॥ ५ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—स्पर्शन आदि पांच इन्द्रियां, क्रोधादि चार कषाय, हिंसादि पांच अव्रत और सम्यक्त्व आदि पचीस क्रियाएं, इस तरह साम्परायिक आस्रवके ३९ भेद हैं अर्थात् इन सब ३९ भेदोंके द्वारा साम्परायिक कर्मका आस्रव होता है।

पचीस क्रियाएं—

(१) सम्यक्त्वको बढ़ानेवाली क्रियाको सम्यक्त्व क्रिया कहते हैं जैसे देवपूजन आदि।

(२) मिथ्यात्वको बढ़ानेवाली क्रियाको मिथ्यात्व क्रिया कहते हैं, जैसे कुदेवपूजन आदि।

(३) शरीरादिसे गमनागमन रूप प्रवृत्ति करना सो प्रयोग क्रिया है।

(४) संयमीका असंयमके सन्मुख होना सो समादान क्रिया है।

(५) गमनके लिए जो क्रिया होती है उसे ईर्यापथ क्रिया कहते हैं।

(६) क्रोधके वशसे जो क्रिया हो वह प्रादोषिकी क्रिया है।

(७) दुष्टतापूर्वक उद्यम करना सो कायिकी क्रिया है।

(८) हिंसाके उपकरण तलवार आदिका ग्रहण करना सो अधिकरण क्रिया है।

(९) जीवोंको दुःख उत्पन्न करनेवाली क्रियाको पारितापिकी क्रिया कहते हैं।

(१०) आयु, इन्द्रिय आदि प्राणोंका वियोग करना सो प्राणातिपातिनी क्रिया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(११) रागके वशीभूत होकर मनोहर रूप देखना सो दर्शन क्रिया है।

(१२) रागके वशीभूत होकर वस्तुका स्पर्श करना स्पर्शन क्रिया है।

(१३) विषयोंके नयेर कारण मिलना प्रात्ययिकी क्रिया है।

(१४) स्त्री पुरुष अथवा पशुओंके बैठने तथा सोने आदिके स्थानमें मलमूत्रादि क्षेपण करना समन्तनुपात क्रिया है।

(१५) विना देखी विना शोधी हुई भूमिपर उठना बैठना अनाभोग क्रिया है।

(१६) लोभसे वशीभूत हो दूसरेके द्वारा करने योग्य क्रियाको स्वयं करना स्वहस्त क्रिया है।

(१७) पापकी उत्पन्न करनेवाली प्रवृत्तिको भला समझना निसर्ग क्रिया है।

(१८) परके किये हुये पापोंको प्रकाशित करना विदारण क्रिया है।

(१९) चारित्रमोहनीय कर्मके उदयसे शास्त्रोक्त आवश्यकादि क्रियाओंके करनेमें असमर्थ होकर उनका अन्यथा निरूपण करना सो आज्ञाव्यापादिकी क्रिया है।

(२०) प्रमाद अथवा अज्ञानके वशीभूत होकर आगमोक्त क्रियाओंमें अनादर करना अनाकांक्षा क्रिया है।

(२१) छेदन भेदन आदि क्रियाओंमें स्वयं प्रवृत्त होना तथा अन्यको प्रवृत्त देखकर हर्षित होना प्रारम्भक्रिया है।

(२२) परिग्रहकी रक्षामें प्रवृत्त होना पारिग्रहिकी क्रिया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२३) ज्ञान दर्शन आदिमें कपटरूप प्रवृत्ति करना माया क्रिया है।

(२४) प्रशंसा आदिसे किसीको मिथ्यात्व रूप परिणतिमें दृढ़ करना मिथ्यादर्शन क्रिया है।

(२५) चारित्र मोहनीयके उदयसे त्यागरूप प्रवृत्ति नहीं होना अप्रत्याख्यान क्रिया है।

आस्रवकी विशेषतामें कारण—

तीव्रमन्दज्ञाताज्ञातभावाधिकरणवीर्यविशेषेभ्य-स्तद्विशेषः ॥ ६ ॥

अर्थ—तीव्रभाव, मन्दभाव, ज्ञातभाव, अज्ञातभाव, अधिकरणविशेष और वीर्यविशेषसे आस्रवमें विशेषता-हीनाधिकता होती है।

तीव्रभाव—अत्यन्त बढ़े हुए, क्रोधादिके द्वारा जो तीव्ररूप भाव होते हैं उनको तीव्रभाव कहते हैं।

मन्दभाव—कषायोंको मन्दतासे जो भाव होते हैं उन्हें मन्दभाव कहते हैं।

ज्ञातभाव—यह प्राणी मारनेके योग्य है इस तरह जानकर प्रवृत्त होनेको ज्ञातभाव कहते हैं।

अज्ञातभाव—प्रमाद अथवा अज्ञानसे प्रवृत्ति करनेको अज्ञातभाव कहते हैं।

अधिकरण—जिसके आश्रय अर्थ रहे उसे अधिकरण कहते हैं।

वीर्य—द्रव्यकी स्वशक्तिविशेषको वीर्य कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साम्परायिक आस्रवके ३९ भेद

आस्रव — ईर्यापथ, साम्परायिक

साम्परायिक — इन्द्रिय, कषाय, अव्रत, क्रिया

इन्द्रिय	कषाय	अव्रत	क्रिया
स्पर्शन	क्रोध	हिंसा	सम्यक्त्व, मिथ्यात्व, प्रयोग, समाधान, ईर्यापथ, प्रादोषिकी,
रसना	मान	असत्य	कायिकी, अधिकरण, पारितापिकी, प्राणातिपातिनी, दर्शन,
घ्राण	माया	चौर्य	स्पर्शन, प्रात्ययिकी, समन्तानुगत, अनाभोग, स्वहस्त,
चक्षु	लोभ	कुशील	निसर्ग, विदारण, आज्ञाव्यापादिकी, अनाकांक्षा, प्रारम्भ,
कर्ण		परिग्रह	पारिग्रहिकी, माया, मिथ्यादर्शन, अप्रत्याख्यान।
५	४	५	२५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अधिकरणके भेद—

अधिकरणं जीवाऽजीवाः ॥ ७ ॥

अर्थ—अधिकरणके दो भेद हैं-१ जीव और २-अजीव। अर्थात् आस्रव, जीव और अजीव दोनोंके आश्रय है ॥ ७ ॥

जीवाधिकरणके भेद—

आद्यं संरम्भसमारम्भारम्भयोगकृतकारितानुमत-कषायविशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रिश्चतुश्चैकशः ॥ ८ ॥

अर्थ—आदिका जीवाधिकरण आस्रव-संरम्भ, समारम्भ, आरम्भ, मन वचन कायरूप तीन योग कृत कारित अनुमोदना तथा क्रोधादि चार कषायोंकी विशेषतासे १०८ भेदरूप है।

भावार्थ—संरम्भादि तीनोंमें तीन योगोंका गुणा करनेसे ९ भेद हुए। इन ९ भेदोंमें कृत आदि तीनका गुणा करने पर २७ भेद हुए। और इन २७ भेदोंमें ४ कषायका गुणा करनेसे कुल १०८ भेद हुए।

संरम्भ—हिंसादि पापोंके करनेका मनमें विचार करना संरम्भ है।

समारम्भ—हिंसादि पापोंके कारणोंका अभ्यास करना समारम्भ है।

आरम्भ—हिंसादि पापोंके करनेका प्रारम्भ कर देना आरम्भ है।

कृत—स्वयं करना कृत है।

कारित—दूसरेसे कराना कारित है।

अनुमत—दूसरेके द्वारा किये हुए कार्यको भला समझना अनुमत है ॥ ८ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अजीवाधिकरणके भेद—

निर्वर्तनानिक्षेपसंयोगनिसर्गा द्विचतुर्द्वित्रिभेदाः परम् ॥ ९ ॥

अर्थ—पर अर्थात् अजीवाधिकरण आस्रव–दो प्रकारकी निर्वर्तना, चार प्रकारका निक्षेप, दो प्रकारका संयोग और तीन प्रकारका निसर्ग, इस तरह ११ भेदवाला है।

निर्वर्तना—रचना करनेको निर्वर्तना कहते हैं। इसके दो भेद हैं–१–मूलगुण निर्वर्तना और २–उत्तरगुण निर्वर्तना। शरीर मन तथा श्वासोच्छ्वासकी रचना करना मूलगुण निर्वर्तना है। और काष्ठ, मिट्टी आदिसे चित्र वगैरहकी रचना उत्तरगुणनिर्वर्तना है।

निक्षेप—वस्तुके रखनेको निक्षेप कहते हैं–इसके चार भेद हैं—१–अप्रत्यवेक्षित निक्षेपाधिकरण, २–दुःप्रमृष्ट निक्षेपाधिकरण, ३–सहसानिक्षेपाधिकरण और ४–अनाभोगनिक्षेपाधिकरण हैं। विना देखे किस वस्तुको रखना अप्रत्यवेक्षित निक्षेपाधिकरण हैं। यत्नाचार रहित होकर रखनेको दुःप्रमृष्टनिक्षेपाधिकरण कहते हैं। शीघ्रतासे रखना सहसा निक्षेपाधिकरण है। और किसी वस्तुको योग्य स्थानमें न रखकर विना देखे ही यहां वहां रख देना अनाभोग निक्षेपाधिकरण है।

संयोग—मिला देनेका नाम संयोग है। इसके दो भेद हैं–१–भक्तपान संयोग, २–उपकरण संयोग। आहार पानीको दूसरे आहार पानीमें मिलाना भक्तपान संयोग है। और कमण्डलु आदि उपकरणोंको दूसरेकी पीछी आदिसे पोंछना उपकरण संयोग है।

निसर्ग—प्रवर्तनको निसर्ग कहते हैं। इसके ३ भेद हैं—१–कायनिसर्ग अर्थात् कायको प्रवर्ताना, २–वाङ्निसर्ग अर्थात्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वचनोंको प्रवर्ताना और मनोनिसर्ग अर्थात् मनको प्रवर्ताना ॥९॥

ज्ञानावरण और दर्शनावरणके आस्रव—

तत्प्रदोषनिह्नवमात्सर्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञानदर्शनावरणयोः ॥ १० ॥

अर्थ—ज्ञान और दर्शनके विषयमें किये गये प्रदोष, निह्नव, मात्सर्य, अन्तराय, आसादन और उपघात ये ज्ञानावरण तथा दर्शनावरण कर्मके आस्रव हैं।

प्रदोष—किसी धर्मात्माके द्वारा की गई तत्वज्ञानकी प्रशंसाका नहीं सुहाना प्रदोष है।

निह्नव—किसी कारणसे ज्ञानको छुपाना निह्नव है।

मात्सर्य—वस्तु स्वरूपको जानकर यह भी पण्डित हो जावेगा ऐसा विचार कर किसीको नहीं पढ़ाना मात्सर्य है।

अन्तराय—किसीके ज्ञानाभ्यासमें विघ्न डालना अन्तराय है।

आसादन—दूसरेके द्वारा प्रकाशित होने योग्य ज्ञानको रोक देना आसादन है।

उपघात—सच्चे ज्ञानमें दोष लगाना उपघात है।× ॥ १० ॥

× यद्यपि प्रति समय आयु-कर्मको छोड़कर शेष सात कर्मोंका बन्ध हुआ करता है तथापि प्रदोषादि भावोंके द्वारा जो ज्ञानावरणादि विशेष २ कर्मोंका बन्ध होना बताया है, सो स्थितिबन्ध और अनुभाग-बन्धकी अपेक्षा समझना चाहिये। अर्थात् उस समय प्रकृति और प्रदेशबन्ध तो सब कर्मोंका हुआ करता है, किन्तु स्थिति और अनुभागबन्ध ज्ञानावरणादि विशेष २ कर्मोंका अधिक होगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

असातावेदनीयके आस्रव—

दुःखशोकतापाक्रन्दनवधपरिदेवनान्यात्मपरोभय-स्थान्यसद्वेद्यस्य ॥ ११ ॥

अर्थ—(आत्मपरोभयस्थानि) निज तथा पर दोनोंके विषयमें स्थित (दुःखशोकतापाक्रन्दनवधपरिदेवनानि) दुःख शोक ताप आक्रन्दन बध और परिदेवन ये (असद्वेद्यस्य) असातावेदनीयके आस्रव हैं।

दुःख—पीड़ारूप परिणामविशेषको दुःख कहते हैं।

शोक—अपना उपकार करनेवाला पदार्थका वियोग होनेपर विकलता होना शोक है।

ताप—संसारमें अपनी निन्दा आदिके होजानेसे पश्चात्ताप करना ताप है।

आक्रन्दन—पश्चात्तापसे अश्रुपात करते हुए रोना आक्रन्दन है।

बध—आयु आदि प्राणोंका वियोग करना बध है।

परिदेवन—संक्लेश परिणामोंका अवलम्बन कर इस तरह रोना कि सुननेवालेके हृदयमें दया उत्पन्न होजावे सो परिदेवन है।

नोट—यद्यपि शोक आदि दुःखके ही भेद हैं तथापि दुःखकी जातियां बतलानेके लिये सबका ग्रहण किया है॥ ११॥

सातावेदनीयका आस्रव—

भूतव्रत्यनुकम्पादानसरागसंयमादियोगः क्षान्तिः शौचमितिसद्वेद्यस्य ॥ १२ ॥

अर्थ—भूतव्रत्यनुकम्पा, दान, सरागसंयमादि योग, क्षांति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और शौच तथा अर्हद्भक्ति आदि ये सातावेदनीयके आस्रव हैं।

भूतव्रत्यनुकम्पा—भूत=संसारके समस्त प्राणी और व्रती=अणुव्रत या महाव्रतधारी जीवोंपर दया करना सो भूतव्रत्यनुकम्पा है।

दान—निज और परके उपकार योग्य वस्तुके देनेको दान कहते हैं।

सरागसंयमादि योग—पांच इन्द्रिय और मनके विषयोंसे विरक्त होने तथा छह कायके जीवोंकी हिंसा न करनेको संयम कहते हैं, और राग सहित संयमको सरागसंयम कहते हैं।

नोट—यहां आदि शब्दसे संयमासंयम—(श्रावकके व्रत) अकाम निर्जरा—(बन्दीखाने आदिमें संक्लेशतारहित भोगोपभोगका त्याग करना) और बाल तप (मिथ्या दर्शनसहित तपस्या करना)—का भी ग्रहण होता है।

इन सबको अच्छी तरह धारण करना सरागसंयमादि योग कहलाता है।

क्षांति—क्रोधादि कषायके अभावको क्षांति कहते हैं।

शौच—लोभका त्याग करना शौच है।

नोट—इति शब्दसे अर्हद्भक्ति, मुनियोंकी वैयावृत्ति आदिका ग्रहण करना चाहिये ॥ १२ ॥

दर्शनमोहनीयका आस्रव—

केवलिश्रुतसंघधर्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य ॥ १३

अर्थ—केवली, श्रुत-(शास्त्र), संघ (मुनि आर्यिका श्रावक श्राविका) धर्म और देव इनका अवर्णवाद करना दर्शनमोहनीय कर्मका आस्रव है।

अवर्णवाद—गुणवानोंको झूठे दोष लगाना सो अवर्णवाद है।

केवलीका अवर्णवाद—केवली मासाहार करके जीवित रहते हैं, इत्यादि कहना सो केवलीका अवर्णवाद है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रुतका अवर्णवाद—शास्त्रमें मांस भक्षण करना आदि लिखा है, ऐसा कहना सो श्रुतका अवर्णवाद है।

संघका अवर्णवाद—ये शूद्र हैं, मलिन हैं, नग्न हैं इत्यादि कहना सो संघका अवर्णवाद है।

धर्मका अवर्णवाद—जिनेन्द्र भगवानके द्वारा कहे हुए धर्ममें कुछ भी गुण नहीं है-उसके सेवन करनेवाले असुर होवेंगे, इत्यादि कहना धर्मका अवर्णवाद है।

देवका अवर्णवाद—देव मदिरा पीते हैं, मांस खाते हैं, जीवोंकी बलिसे प्रसन्न होते हैं, आदि कहना देवका अवर्णवाद है ॥१३॥

चारित्र मोहनीयका आस्रव—

कषायोदयात्तीव्रपरिणामश्चारित्रमोहस्य ॥१४॥

अर्थ—कषायके उदयसे होनेवाले तीव्र परिणाम चारित्र-मोहनीयके आस्रव हैं ॥ १४ ॥

नरक आयुका आस्रव—

बह्वारम्भपरिग्रहत्वं नारकस्यायुषः ॥१५॥

अर्थ—बहुत आरम्भ और परिग्रहका होना नरक आयुका आस्रव है ॥ १५ ॥

तिर्यंच आयुका आस्रव—

माया तैर्यग्योनस्य ॥ १६ ॥

अर्थ—माया (छलकपट) तिर्यंच आयुका आस्रव है ॥ १६ ॥

मनुष्य आयुका आस्रव—

अल्पारम्भपरिग्रहत्वं मानुषस्य ॥ १७ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—थोड़ा आरम्भ और थोड़ा परिग्रहका होना मनुष्य आयुका आस्रव है॥ १७॥

स्वभावमार्दवं च ॥ १८ ॥

अर्थ—स्वभावसे ही सरल परिणामी होना भी मनुष्य आयुका आस्रव है।

नोट—इस सूत्रको पृथक् लिखनेका आशय यह है कि इस सूत्रमें बताई हुई बातें देवायुके आस्रवमें भी कारण हैं॥ १८॥

सब आयुओंका आस्रव—

निःशीलव्रतत्वं च सर्वेषाम् ॥ १९ ॥

अर्थ—दिग्व्रतादि ७ शील और अहिंसादि पांच व्रतोंका अभाव भी समस्त आयुओंका आस्रव है।

नोट—शील और व्रतका अभाव रहते हुए जब कषायोंमें अत्यन्त तीव्रता, और अत्यन्त मन्दता होती है तभी वे क्रमसे चारों आयुओंके आस्रवके कारण होते हैं॥ १९॥

देव आयुका आस्रव—

सरागसंयमसंयमासंयमाकामनिर्जराबालतपांसि दैवस्य ॥ २० ॥

अर्थ—सरागसंयम, संयमासंयम, अकाम निर्जरा और बाल तप ये देव आयुके आस्रव हैं* ॥ २० ॥

*इन सबका शब्दार्थ पीछे १२ वें सूत्रके नोटमें लिखा जाचुका है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यक्त्वं च ॥ २१ ॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन भी देव आयु कर्मका आस्रव है।

नोट—१-इस सूत्रको पृथक् लिखनेका प्रयोजन यह है कि सम्यक्त्व अवस्थामें वैमानिक देवोंकी ही आयुका आस्रव होता है।

नोट—२-यद्यपि सम्यग्दर्शन किसी भी कर्मके बन्धमें कारण नहीं है तथापि सम्यग्दर्शनकी अवस्थामें जो रागांश पाया जाता है उसीसे बन्ध होता है। इसी तरह सरागसंयम, संयमासंयम आदिके विषयमें भी जानना चाहिये ॥×॥ २१ ॥+

अशुभ नामकर्मका आस्रव—

योगवक्रता विसम्वादनं चाशुभस्य नाम्नः ॥२२॥

अर्थ—योगोंकी कुटिलता और विसम्वादन-अन्यथा प्रवृत्ति करना अशुभ नामकर्मका आस्रव है ॥ २२ ॥

शुभ नामकर्मका आस्रव—

तद्विपरीतं शुभस्य ॥ २३ ॥

अर्थ—योग वक्रता और विसंवादनसे विपरीत अर्थात् योगोंकी सरलता और अन्यथा प्रवृत्तिका अभाव ये शुभ नामकर्मके आस्रव हैं ॥ २३ ॥

×येनांशेन सुदृष्टिस्तेनांशेनास्य बन्धनं नास्ति।
येनांशेन तु रागस्तेनांशेनास्य बन्धनं भवति ॥–अमृतचन्द्रसूरि।

+आयु कर्मका आस्रव सामान्यरूपसे जीवनके त्रिभागमें होता है। अर्थात् आयुके दो भाग निकल जाने पर तृतीय भागके प्रारम्भमें होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दर्शनविशुद्धिर्विनयसम्पन्नता शीलव्रतेष्वनतिचारोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौ शक्तितस्त्यागतपसी साधुसमाधिर्वैयावृत्यकरणमर्हदाचार्यबहुश्रुतप्रवचनभक्तिरावश्यकापरिहाणिर्मार्गप्रभावना प्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थंकरत्वस्य ॥ २३ ॥

अर्थ—१ दर्शनविशुद्धि—पच्चीस दोषरहित निर्मल+सम्यग्दर्शन, २–विनयसम्पन्नता–रत्नत्रय तथा उनके धारकोंकी विनय करना, ३–शीलव्रतेष्वनतिचार–अहिंसादि व्रत और उनके रक्षक क्रोध-त्याग आदि शीलोंमें विशेष प्रवृत्ति, ४–५ अभीक्ष्णज्ञानोपयोग-संवेगौ–निरन्तर ज्ञानमय उपयोग रखना और संसारसे भयभीत होना, ६–७ शक्तितस्त्याग तपसी–यथाशक्ति दान देना और उपवासादि तप करना, साधुसमाधि–साधुओंके विघ्न आदिको दूर करना, ९–वैयावृत्यकरणम्–रोगी तथा बालवृद्ध मुनियोंकी सेवा करना, १०–११–१२–१३ अर्हदाचार्यबहुश्रुतप्रवचनभक्ति–अरहन्त भगवानकी भक्ति करना, दीक्षा देनेवाले आचार्योंकी भक्ति करना, उपाध्यायोंकी भक्ति करना, शास्त्रोंकी भक्ति करना, १४–आवश्यकापरिहाणि–सामायिक आदि छह आवश्यक क्रियाओंमें हानि नहीं करना, १५–मार्गप्रभावना–जैन धर्मकी प्रभावना करना और १६–प्रवचनवत्सलत्वम्–गोवत्सकी तरह धर्मात्मा जीवोंसे स्नेह रखना। ये सोलह भावनायें तीर्थंकर प्रकृति नामक नामकर्मके आस्रव हैं।

+ यहां दर्शनविशुद्धिसे तात्पर्य अपाय विचय धर्मध्यानके मध्यस्थित मनुष्यके जो लोककल्याणकी अतिशय भावना होती है उससे है। यह शुभ राग ही तीर्थंकर प्रकृतिका आस्रव है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नोट—इन भावनाओंमें दर्शनविशुद्धि मुख्य भावना है। उसके अभावमें सबके अथवा यथासम्भव हीनाधिक होनेपर भी तीर्थंकर प्रकृतिका आस्रव नहीं होता और उसके रहते हुए अन्य भावनाओंके अभावमें भी तीर्थंकर प्रकृतिका आस्रव होता है* ॥२४॥

नीच गोत्रकर्मका आस्रव—

परात्मनिन्दाप्रशंसे सदसद्गुणोच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य ॥ २५ ॥

अर्थ—(परात्मनिन्दाप्रशंसे) दूसरेकी निन्दा और अपनी प्रशंसा करना, (च) तथा (सदसद्गुणोद्भवने) दूसरेके मौजूद गुणोंको ढांकना और अपने झूठे गुणोंको प्रकट करना, ये नीच गोत्रकर्मके आस्रव हैं ॥ २५ ॥

उच्च गोत्रकर्मका आस्रव—

तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य ॥ २६ ॥

अर्थ—(तद्विपर्ययः) नीच गोत्रके आस्रवोंसे विपरीत अर्थात् परप्रशंसा तथा आत्मनिन्दा (च) और (नीचर्वृत्त्यनुत्सेकौ) नम्र वृत्ति तथा मदका अभाव ये (उत्तरस्य) उच्च गोत्रकर्मके आस्रव हैं ॥ २६ ॥

अन्तराय कर्मका आस्रव

विघ्नकरणमन्तरायस्य ॥ २७ ॥

---

* इस प्रकृतिके उदयसे समवसरणमें अष्ट प्रातिहार्य रूप विभूति प्राप्त होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—परके दान, लाभ, भोग, उपभोग तथा वीर्यमें विघ्न करना, अन्तरायकर्मका आस्रव है ॥ २७ ॥

इति श्रीमदुमास्वामिविरचिते मोक्षशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ॥

प्रश्नावली

(१) योग किसे कहते हैं? और उसके कितने भेद हैं?
(२) अजीवाधिकरण आस्रवके भेद बताओ।
(३) जबकि आयुको छोड़कर शेष सात कर्मोंका बन्ध प्रति समय होता रहता है तब प्रदोषादि विशेष २ कर्मोंके आस्रव किस प्रकार हो सकेंगे?
(४) साम्परायिक और ईर्यापथ आस्रवमें उदाहरण देकर भेद समझाओ।
(५) जबकि सम्यग्दर्शन मोक्षका मार्ग है तब उसे देव आयुका कारण क्यों लिखा?
(६) एक मिथ्यादृष्टि जीव विनयसम्पन्नता आदि पन्द्रह भावनाओंका पालन कर तीर्थंकर प्रकृतिका आस्रव कर सकता है या नहीं? यदि नहीं तो क्यों?
(७) इस संसारमें क्या कोई ऐसे भी जीव हैं जिनके किसी भी कर्मका आस्रव नहीं होता हो?
(८) नीचे लिखे हुए शब्दोंके लक्षण बताओ—
निह्नव, सरागसंयम, बाल तप, योगवक्रता, अनुत्सेक, साधुसमाधि, अवर्णवाद, समारम्भ और ईर्यापथ आस्रव।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सप्तम अध्याय

शुभास्रवका वर्णन—

व्रतका लक्षण—

हिंसाऽनृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम् ॥ १ ॥

अर्थ—हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पांच पापोंसे भावपूर्वक विरक्त होना व्रत कहलाता है ॥ १ ॥

व्रतके भेद—

देशसर्वतोऽणुमहती ॥ २ ॥

अर्थ—व्रतके दो भेद हैं-१ अणुव्रत और २ महाव्रत। हिंसादि पापोंका एकदेश त्याग करनेसे अणुव्रत और सर्वदेश त्याग करनेसे महाव्रत होते हैं ॥ २ ॥

व्रतोंकी स्थिरताके कारण—

तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पञ्च पञ्च ॥ ३ ॥

अर्थ—उन व्रतोंकी स्थिरताके लिये प्रत्येक व्रतकी पांच पांच भावनायें हैं।

भावना—किसी वस्तुका बार-बार चिन्तवन करना सो भावना है ॥ ३ ॥

अहिंसा व्रतकी पांच भावनाएं—

वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपान-भोजनानि पञ्च ॥ ४ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—वाग्गुप्ति-वचनको रोकना, मनोगुप्ति-मनकी प्रवृत्तिको रोकना, ईर्यासमिति-चार हाथ जमीन देखकर चलना, आदान-निक्षेपण समिति-भूमिको जीवरहित देखकर सावधानीसे किसी वस्तुको उठाना, रखना और आलोकितपान भोजन-देख शोधकर भोजनपान ग्रहण करना, ये पांच अहिंसा व्रतकी भावनाएँ हैं ॥४॥

सत्यव्रतकी भावनाएँ—

क्रोधलोभभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचिभाषणं च पञ्च ॥ ५ ॥

अर्थ—क्रोधप्रत्याख्यान-क्रोधका त्याग करना, लोभ प्रत्याख्यान-लोभका त्याग करना, भीरुत्वप्रत्याख्यान-भयका त्याग करना, हास्यप्रत्याख्यान-हास्यका त्याग करना और अनुवीचि भाषण-शास्त्रकी आज्ञानुसार निर्दोष वचन बोलना, ये पांच सत्य व्रतकी भावनाएँ हैं ॥ ५ ॥

आचौर्य व्रतकी भावनाएँ—

शून्यागारविमोचितावासपरोपरोधाकरणभैक्ष्यशुद्धिसधर्माऽविसंवादाः पञ्च ॥ ६ ॥

अर्थ—शून्यागारावास-पर्वतोंकी गुफा, वृक्षकी कोटर आदि निर्जन स्थानोंमें रहना, विमोचितावास-राजा वगैरहके द्वारा छुड़वाये हुए स्वामित्वहीन स्थानमें निवास करना, परोपरोधाकरण-अपने स्थानपर ठहरे हुये दूसरेको नहीं रोकना, भैक्ष्यशुद्धि-चरणानुयोग शास्त्रके अनुसार भिक्षाकी शुद्धि रखना और सधर्माविसंवाद-सहधर्मी भाइयोंसे यह हमारा है, वह आपका है इत्यादि कलह नहीं करना, ये पांच अचौर्य व्रतकी भावनाएँ हैं ॥ ६ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ब्रह्मचर्य व्रतकी भावनाएँ—

स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहराङ्गनिरीक्षणपूर्वरतानु-स्मरणवृष्येष्टरसस्वशरीरसंस्कारत्यागाः पञ्च ॥ ७॥

अर्थ—स्त्रीरागकथाश्रवणत्याग—स्त्रियोंमें राग बढ़ानेवाली कथाओंके सुननेका त्याग करना, तन्मनोहराङ्गनिरीक्षणत्याग—स्त्रियोंके मनोहर अङ्गोंके देखनेका त्याग करना, पूर्वरतानुस्मरण त्याग—अव्रत अवस्थामें भोगे हुए विषयोंके स्मरणका त्याग करना, वृष्येष्टरस त्याग—कामवर्धक गरिष्ठ रसोंका त्याग करना और स्वशरीरसंस्कारत्याग—अपने शरीरके संस्कारोंका त्याग करना, ये पांच ब्रह्मचर्य व्रतकी भावनायें हैं ॥ ७ ॥

परिग्रहत्याग व्रतकी भावनाएँ—

मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रियविषयरागद्वेषवर्जनानि पञ्च ॥ ८ ॥

अर्थ—स्पर्श आदि पांचों इन्द्रियोंके इष्ट अनिष्ट आदि विषयोंमें क्रमसे रागद्वेषका त्याग करना, ये पांच परिग्रह त्याग व्रतकी भावनाएँ हैं ॥ ८ ॥

हिंसादि पांच पापोंके विषयमें करनेयोग्य विचार—

हिंसादिष्विहामुत्रापायावद्यदर्शनम् ॥ ९ ॥

अर्थ—(हिंसादिषु) हिंसादि पांच पापोंके होनेपर (इह) इस लोकमें तथा (अमुत्र) परलोकमें (अपायावद्यदर्शनम्) सांसारिक और पारमार्थिक प्रयोजनोंका नाश तथा निन्दाको देखना पड़ता है ऐसा विचार करे।

भावार्थ—हिंसादि पाप करनेसे इसलोक तथा परलोकमें अनेक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आपत्तियां प्राप्त होती हैं और निंदा भी होती है, इसलिये इनका छोड़ना ही अच्छा है॥ ९॥

दुःखमेव वा॥ १०॥

अर्थ—अथवा हिंसादिक पांच पाप दुःखरूप ही हैं ऐसा विचार करे।

नोट—यहां कार्यमें कारणका उपचार समझना चाहिये, क्योंकि हिंसादि दुःखके कारण हैं, पर यहां उन्हें कार्य अर्थात् दुःखरूप वर्णन किया है॥ १०॥

निरन्तर चिन्तवन करने योग्य चार भावनाएँ—

मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थ्यानि च सत्त्वगुणाधिक-क्लिश्यमानाऽविनयेषु॥ ११॥

अर्थ—(च) और (सत्त्वगुणाधिकक्लिश्यमानाविनयेषु) सत्व*, गुणाधिक×, क्लिश्यमान+ और अविनय= जीवोंमें क्रमसे (मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थ्यानि) मैत्री प्रमोद कारुण्य और माध्यस्थ्य भावना भावे।

मैत्री—दूसरोंको दुःख न हो ऐसे अभिप्रायको मैत्री भावना कहते हैं।

प्रमोद—अधिक गुणोंके धारी जीवोंको देखकर मुख प्रसन्नता आदिसे प्रकट होनेवाली अन्तरङ्गकी भक्तिको प्रमोद कहते हैं।

कारुण्य—दुःखी जीवोंको देखकर उनके उपकार करनेके भावोंको कारुण्यभाव कहते हैं।

---

*प्राणीमात्र, ×जो गुणोंसे अधिक हो, +दुःखी, रोगी वगैरह =मिथ्यादृष्टि-उद्दण्डप्रकृतिके धारक।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

माध्यस्थ्य—जो जीव तत्त्वार्थश्रद्धानसे रहित हैं तथा हितका उपदेश देनेसे उलटे चिढ़ते हैं उनमें राग द्वेषका अभाव होना सो माध्यस्थ्य भावना है+ ॥ ११ ॥

संसार और शरीरके स्वभावका विचार—

जगत्कायस्वभावौ वा संवेगवैराग्यार्थम् ॥ १२ ॥

अर्थ—संवेग (संसारके भय) और वैराग्य (राग द्वेषके अभाव) के लिये क्रमसे संसार और शरीरके स्वभावका चिन्तवन करे ॥ १२ ॥

हिंसा पापका लक्षण—

प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा ॥ १३ ॥

अर्थ—प्रमादके× योगसे यथासंभव द्रव्य÷ प्राण या भाव* प्राणोंका वियोग करना सो हिंसा है।

नोट १—जिस समय कोई व्रतीजीव ईर्यासमितिसे गमन

+ मैत्रीभाव जगतमें मेरा, सब जीवोंसे नित्य रहे।
दीन दुःखी जीवोंपर मेरे, उरसे करुणा स्रोत बहे॥
दुर्जन क्रूर कुमार्गरतोंपर, क्षोभ नहीं मुझको आवे।
साम्यभाव रक्खूं मैं उनपर, ऐसी परिणति हो जावे॥
गुणी जनोंको देख हृदयमें, मेरे प्रेम उमड़ आवे॥
—जुगलकिशोर 'मुख्तार'।

× पांच इन्द्रिय, चार कषाय, चार विकथा (स्त्री० राज० राष्ट्र० और भोजन०) राग द्वेष और निद्रा ये १५ प्रमाद हैं।

÷ पांच इन्द्रिय, तीन बल, आयु और श्वासोच्छ्वास ये १० द्रव्य प्राण हैं। * ज्ञान दर्शनको भाव प्राण कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर रहा हो, यदि उस समय कोई क्षुद्र जीव अचानक उसके पैरके नीचे आकर दब जावे तो वह व्रती उस हिंसा पापका भागी नहीं होगा क्योंकि उसके प्रमाद नहीं है।

नोट २—एक जीव किसी जीवको मारना चाहता था पर मौका न मिलनेसे मार न सका तो भी वह हिंसाका भागी होगा क्योंकि वह प्रमादसहित है और अपने भावप्राणोंकी हिंसा करनेवाला है॥ १३॥

असत्यका लक्षण—

असदभिधानमनृतम् ॥ १४ ॥

अर्थ—प्रमादके योगसे जीवोंको दुःखदायक वा मिथ्यारूप वचन बोलना सो असत्य है॥ १४॥

स्तेय–चोरीका लक्षण—

अदत्तादानं स्तेयम् ॥ १५ ॥

अर्थ—प्रमादके योगसे बिना दी हुई किसीकी वस्तुको ग्रहण करना चोरी है॥ १५॥

कुशीलका लक्षण—

मैथुनमब्रह्म ॥ १६ ॥

अर्थ—मैथुनकर्मको अब्रह्म अर्थात् कुशील कहते हैं।

मैथुन—चारित्रमोहनीय कर्मके उदयसे राग परिणाम सहित स्त्री पुरुषोंके परस्पर स्पर्श करनेकी इच्छाको मैथुन कहते हैं॥१६॥

परिग्रह पापका लक्षण—

मूर्च्छा परिग्रहः ॥ १७ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—मूर्च्छाको परिग्रह कहते हैं।

मूर्च्छा—बाह्य धन, धान्यादि तथा अन्तरंग क्रोधादि कषायोंमें 'ये मेरे हैं' ऐसा भाव रहना सो मूर्च्छा है ॥ १७ ॥

व्रतोंकी विशेषता—

निःशल्यो व्रती ॥ १८ ॥

अर्थ—शल्यरहित जीव ही व्रती है।

शल्य—जो आत्माको कांटेकी तरह दुःख दे उसे शल्य कहते हैं। उसके तीन भेद हैं। १–मायाशल्य (छल कपट करना), २–मिथ्यात्वशल्य (तत्वोंका श्रद्धान न होना) और ३–निदानशल्य आगामी कालमें विषयोंकी वांछा करना।

जबतक इनमेंसे एक भी शल्य रहती है तबतक जीव व्रती नहीं हो सकता।

व्रतोंके भेद—

अगार्यनगारश्च ॥ १९ ॥

अर्थ—अगारी (गृहस्थ) और अनगारी (गृहत्यागी मुनि) इसप्रकार व्रतोंके दो भेद हैं।

अगारीका लक्षण—

अणुव्रतोऽगारी ॥ २० ॥

अर्थ—अणु अर्थात् एकदेश व्रत पालनेवाला जीव अगारी कहलाता है।×

× महाव्रतोंको पालनेवाले मुनि अनगार कहलाते हैं। इस अध्यायमें अणुव्रतधारियोंके ही विशेष चारित्रका वर्णन है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अणुव्रतके पांच भेद हैं—१ अहिंसाणुव्रत, २-सत्याणुव्रत, ३-अचौर्याणुव्रत, ४-ब्रह्मचर्याणुव्रत और ५-परिग्रहपरिमाण णुव्रत।

अहिंसाणुव्रत—संकल्पपूर्वक त्रस जीवोंको हिंसाका परित्याग करना सो अहिंसाणुव्रत है।

सत्याणुव्रत—राग, द्वेष, भय आदिके वश हो स्थूल असत्य बोलनेका त्याग करना सत्याणुव्रत है।

अचौर्याणुव्रत—स्थूल चोरीके त्यागको अचौर्याणुव्रत कहते हैं।

ब्रह्मचर्याणुव्रत—परस्त्री सेवनका त्याग करना सो ब्रह्मचर्याणुव्रत है।

परिग्रह-परिमाण णुव्रत—आवश्यकतासे अधिक परिग्रहका त्यागकर शेषका परिमाण करना सो परिग्रह-परिमाणाणुव्रत है ॥ २० ॥

अणुव्रतके सहायक सात शीलव्रत—

दिग्देशानर्थदण्डविरतिसामायिकप्रोषधोपवासोप-भोगपरिभोगपरिमाणातिथिसंविभागव्रत-सम्पन्नश्च ॥ २१ ॥

अर्थ—वह व्रती दिग्व्रत, देशव्रत और अनर्थदण्डव्रत इन तीन गुणव्रतोंसे तथा सामायिक, प्रोषधोपवास, उपभोग परिभोग परिमाण और अतिथिसंविभागव्रत इन चार शिक्षाव्रतोंसे सहित होता है। अर्थात् व्रती श्रावक पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत× और चार शिक्षाव्रत+ इसप्रकार बारह व्रतोंका धारी होता है।

× अणुव्रतोंका उपकार करें उन्हें गुणव्रत कहते हैं।

× जिनसे मुनिव्रत पालन करनेकी शिक्षा मिले उन्हें शिक्षाव्रत कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रावकके बारह व्रत

देशव्रत

अणुव्रत	गुणव्रत	शिक्षाव्रत
१ अहिंसाणुव्रत	१ दिग्व्रत	१ सामायिक
२ सत्याणुव्रत	२ देशव्रत	२ प्रोषधोपवास
३ अचौर्याणुव्रत	३ अनर्थदण्डव्रत	३ भोगोपभोग परिमाण
४ ब्रह्मचर्याणुव्रत		४ अतिथि संविभाग
५ परिग्रहपरिमाणाणुव्रत		

५ + ३ + ४ = १२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तीन गुणव्रत

१–दिग्व्रत—मरणपर्यंत सूक्ष्म पापोंकी निवृत्तिके लिए दशों दिशाओंमें आनेजानेका परिमाण कर उससे बाहर नहीं जाना सो दिग्व्रत है।

२–देशव्रत—जीवनपर्यंन्तके लिये लिये हुये दिग्व्रतमें और भी संकोच करके घड़ी घण्टा दिन महिना आदितक किसी गृह मुहल्ले आदितक जाना आना रखना सो देशव्रत है*।

३–अनर्थदण्डव्रत—प्रयोजन रहित पापबंधक क्रियाओंका त्याग करना सो अनर्थदण्डव्रत है। इसके पांच भेद हैं–१–पापोपदेश (हिंसा आरम्भ आदि पापके कर्मोंका उपदेश देना), २–हिंसादान (तलवार आदि हिंसाके उपकरण देना), ३–अपध्यान (दूसरेका बुरा विचारना), ४–दुःश्रुति (रागद्वेषको बढ़ानेवाले खोटे शास्त्रोंका सुनाना) और ५–प्रमादचार्या, (बिना प्रयोजन यहां वहां घूमना तथा पृथ्वी आदिको खोदना।)

चार शिक्षाव्रत

१–सामायिक—मन, वचन, काय और कृत, कारित, अनुमोदनासे पांचों पापोंका त्याग करना सो सामायिक है।

२–प्रोषधोपवास—पहले और आगेके दिनोंमें एकाशनके साथ अष्टमी और चतुर्दशीके दिन उपवास आदि करना प्रोषधोपवास है।

३–उपभोगपरिभोगपरिमाणव्रत—भोग× और उपभोगकी+

---

* दिग्व्रत और देशव्रतमें समयकी मर्यादाकी अपेक्षा अन्तर होता है।

× जो एकबार भोगनेमें आवे, +जो बारबार भोगनेमें आवे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वस्तुओंका परिमाण कर उससे अधिकमें ममत्व नहीं करना सो भोगउपभोगपरिमाणव्रत है।

३-अतिथि संविभागव्रत—अतिथि अर्थात् मुनियोंके लिये आहार कमण्डलु पीछी वसतिका आदिका दान देना सो अतिथि-संविभागव्रत है।

व्रतीको सल्लेखना धारण करनेका उपदेश—

मारणांतिकीं सल्लेखनां जोषिता ॥ २१ ॥

अर्थ—गृहस्थ, मरणके समय होनेवाली सल्लेखनाको प्रीति-पूर्वक सेवन करता है।

सल्लेखना—इहलोक अथवा परलोक सम्बन्धी किसी प्रयो-जनकी अपेक्षा न करके शरीर और कषायके कृश करनेको सल्लेखना कहते हैं॥ २२॥

सम्यग्दर्शनके* पांच अतिचार×—

शङ्काकांक्षाविचिकित्सान्यदृष्टिप्रशंसासंस्तवाः सम्यग्दृष्टेरतिचाराः ॥ २३ ॥

अर्थ—१—शङ्का (जिनेन्द्र भगवानके द्वारा कहे हुए सूक्ष्म पदार्थोंमें सन्देह करना अथवा सप्तभय+करना) कांक्षा (सांसारिक सुखोंकी इच्छा करना), विचिकित्सा (दुःखी दरिद्री जीवोंको अथवा रत्नत्रयसे पवित्र पर बाह्यमें मलिन मुनियोंके शरीरको देखकर ग्लानि

*जिसका निर्दोष सम्यग्दर्शन हो वही व्रत पाल सकता है, इसलिये पहले सम्यग्दर्शनके पांच अतिचार कहते हैं। ×व्रतके एकदेश भङ्ग होनेको अतिचार कहते हैं, +इसलोकभय, परलोकभय, मरणभय, वेदनाभय, अगुप्तिभय, और आकस्मिकभय ये सात भय हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करना), अन्यदृष्टिप्रशंसा (मनसे मिथ्यादृष्टियोंके ज्ञान आदिको अच्छा समझना) और अन्यदृष्टिसंस्तव (वचनसे मिथ्यादृष्टियोंकी प्रशंसा करना) ये पांच सम्यग्दर्शनके अतिचार हैं॥ २३॥

५ व्रत और ७ शीलोंके अतिचारोंकी संख्या—

व्रतशीलेषु पञ्च पञ्च यथाक्रमम् ॥ २४ ॥

अर्थ—पांच व्रत और सात शीलोंमें भी क्रमसे पांच पांच अतीचार होते हैं, जिनका वर्णन आगेके सूत्रोंमें है॥ २४॥

अहिंसाणुव्रतके पांच अतिचार—

बन्धवधच्छेदातिभारारोपणान्नपाननिरोधाः॥२५॥

अर्थ—बन्ध (इच्छित स्थानमें जानेसे रोकनेके लिये रस्सी आदिसे बांधना), वध (कोड़ा बेत आदिसे मारना), छेद (नाक, कान आदि अङ्गोंका छेदना), अतिभारारोपण (शक्तिसे अधिक भार लादना) और अन्नपाननिरोध (समयपर खाना पीना नहीं देना) ये पांच अहिंसाणुव्रतके अतिचार हैं॥ २५॥

सत्याणुव्रतके अतिचार—

मिथ्योपदेशरहोभ्याख्यानकूटलेखक्रियान्यासाप-हारसाकारमन्त्रभेदाः ॥ २६ ।

अर्थ—मिथ्योपदेश (झूठा उपदेश देना), रहोभ्याख्यान (स्त्री पुरुषकी एकान्तकी बातको प्रकट करना), कूटलेखक्रिया (झूठे दस्तावेज आदि लिखना), न्यासापहार (किसीकी धरोहरका अपहरण करना) और साकारमन्त्रभेद (हाथ चलाने आदिके द्वारा दूसरेके अभिप्रायको जानकर उसे प्रकाशित कर देना). ये पांच सत्याणुव्रतके अतिचार हैं॥ २६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अचौर्याणुव्रतके पांच अतिचार—

स्तेनप्रयोगतदाहृतादानविरुद्धराज्यातिक्रमहीनाधिकमानोन्मानप्रतिरूपकव्यवहाराः ॥ २७ ॥

अर्थ—स्तेनप्रयोग-(चोरको, चोरीके लिये प्रेरणा करना व उसके उपाय बताना), तदाहृतादान (चोरके द्वारा चुराई हुई वस्तुको खरीदना), विरुद्धराज्यातिक्रम (राजाकी आज्ञाके विरुद्ध चलना, टाउनड्यूटी, टैक्स वगैरह नहीं देना)*, हीनाधिकमानोन्मान (देने लेनेके बांट तराजू वगैरहको कमती बढ़ती रखना) और प्रतिरूपकव्यवहार (बहुमूल्य वस्तुमें, अल्प मूल्यकी वस्तु मिलाकर असली भावसे बेचना), ये पांच अचौर्याणुव्रतके अतिचार हैं ॥ २७ ॥

ब्रह्मचर्याणुव्रतके पांच अतिचार—

परविवाहकरणेत्वरिकापरिगृहीतापरिगृहीतागमनानङ्गक्रीडाकामतीव्राभिनिवेशाः ॥ २८ ॥

अर्थ—परविवाहकरण (अपने संरक्षणसे रहित दूसरेके पुत्र पुत्रियोंका विवाह करना कराना), परिगृहीतेत्वरिकागमन (पति सहित व्यभिचारिणी स्त्रियोंके पास आना जाना, लेनदेन रखना, रागभावपूर्वक बातचीत करना), अपरिगृहीतेत्वरिकागमन (पतिरहित वेश्या आदि व्यभिचारिणी स्त्रियोंके यहां आना जाना, लेनदेन आदिका व्यवहार रखना), अनङ्गक्रीड़ा (कामसेवनके

---

* अथवा राज्यमें विप्लव होनेपर अधिक मूल्यकी वस्तुको अल्प मूल्यमें खरीदना और अल्प मूल्यकी वस्तुको अधिक मूल्यमें बेचना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिये निश्चित अङ्गको छोड़कर अन्य अङ्गोंसे काम सेवन करना) और कामतीव्राभिनिवेश (कामसेवनको अत्यन्त अभिलाषा रखना), ये पांच ब्रह्मचर्याणुव्रतके अतिचार हैं॥ २८॥

परिग्रहपरिमाणाणुव्रतके अतिचार—

क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णधनधान्यदासीदास-कुप्यप्रमाणातिक्रमाः ॥ २९ ॥

अर्थ—क्षेत्रवास्तुप्रमाणातिक्रम (खेत तथा रहनेके घरोंके प्रमाणका उल्लंघन करना), हिरण्यसुवर्णप्रमाणातिक्रम (चांदी और सोनेके प्रमाणका उल्लंघन करना), धनधान्यप्रमाणातिक्रम (गाय भैंस आदि पशु तथा गेहूँ चना आदि अनाजके प्रमाणका उल्लङ्घन करना), दासीदासप्रमाणातिक्रम (नौकर-नौकरानियोंके प्रमाणका उल्लङ्घन करना) और कुप्यप्रमाणातिक्रम (वस्त्र तथा बर्तन आदिके प्रमाणका उल्लङ्घन करना) ये पांच परिग्रह-परिमाणाणुव्रतके अतिचार हैं।

दिग्व्रतके अतिचार—

ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्व्यतिक्रमक्षेत्रवृद्धिस्मृत्यन्त-राधानानि ॥ ३० ॥

अर्थ—ऊर्ध्वव्यतिक्रम (प्रमाणसे अधिक ऊँचाईवाले पर्वतादि पर चढ़ना), अधोव्यतिक्रम (प्रमाणसे अधिक नीचाईवाले कुए आदिमें उतरना), तिर्यग्व्यतिक्रम (समान स्थानमें प्रमाणसे अधिक लम्बे जाना), क्षेत्रवृद्धि (प्रमाण किये हुए क्षेत्रको बढ़ा लेना) और स्मृत्यन्तराधान (किये हुए प्रमाणको भूल जाना), ये पांच दिग्व्रतके अतिचार हैं॥ ३०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देशव्रतके अतिचार—

आनयनप्रेष्यप्रयोगशब्दरूपानुपातपुद्गलक्षेपाः ॥३१॥

अर्थ—आनयन (मर्यादासे बाहरकी चीजको बुलाना), प्रेष्यप्रयोग (मर्यादाके बाहर नौकर आदिको भेजना), शब्दानुपात (खांसी आदिके शब्दके द्वारा मर्यादासे बाहरवाले आदमियोंको अपना अभिप्राय समझा देना), रूपानुपात (मर्यादासे बाहर रहनेवाले आदमियोंको अपना शरीर दिखाकर इशारा करना) और पुद्गलक्षेप (मर्यादासे बाहर कंकर पत्थर फेंकना), ये पांच देशव्रतके अतिचार हैं॥ ३१॥

अनर्थदण्डव्रतके अतिचार—

कन्दर्पकौत्कुच्यमौखर्यासमीक्ष्याधिकरणोप-भोगपरिभोगानर्थक्यानि ॥ ३२॥

अर्थ—कन्दर्प (रागसे हास्य सहित अशिष्ट वचन बोलना), कौत्कुच्य (शरीरसे कुचेष्टा करते हुये अशिष्ट वचन बोलना), मौखर्य (धृष्टतापूर्वक आवश्यकतासे अधिक बोलना), असमीक्ष्याधिकरण (बिना प्रयोजन मन, वचन कायकी अधिक प्रवृत्ति करना) और उपभोगपरिभोगानर्थक्य (भोग उपभोगके पदार्थोंका आवश्यकतासे अधिक संग्रह करना), ये पांच अनर्थदण्डव्रतके अतिचार हैं॥ ३२॥

सामायिक शिक्षाव्रतके अतिचार—

योगदुष्प्रणिधानानादरस्मृत्यनुपस्थानानि ॥३३॥

अर्थ—मनोयोग दुष्प्रणिधान (मनकी अन्यथा प्रवृत्ति करना), वाग्योगदुष्प्रणिधान (वचनकी अन्यथा प्रवृत्ति करना), काययोग-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दुष्प्रणिधान (शरीरकी अन्यथा प्रवृत्ति करना), अनादर (उत्साह रहित होकर सामायिक करना) और स्मृत्यनुपस्थान (एकाग्रताके अभावमें सामायिक पाठ वगैरहका भूल जाना), ये पांच सामायिक शिक्षाव्रतके अतिचार हैं ॥ ३३ ॥

प्रोषधोपवास शिक्षाव्रतके अतिचार—

अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्गादानसंस्तरोपक्रमणानादरस्मृत्यनुपस्थानानि ॥ ३४ ॥

अर्थ—अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्ग (बिना देखी बिना शोधी हुई जमीनमें मलमूत्रादिका क्षेपण करना), अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितादान (बिना देखे बिना शोधे हुए पूजन आदिके उपकरण उठाना), अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितसंस्तरोपक्रमण (बिना देखे बिना शोधे हुए वस्त्र चटाई आदिको बिछाना), अनादर (भूखसे व्याकुल होकर आवश्यक धर्मकार्योंको उत्साह रहित होकर करना) और स्मृत्यनुपस्थान (करनेयोग्य आवश्यक धर्मकार्योंको भूल जाना), ये पांच प्रोषधोपवास शिक्षाव्रतके अतिचार हैं ॥ ३४ ॥

भोग उपभोग परिमाणके अतिचार—

सचित्तसम्बन्धसम्मिश्राभिषवदुःपक्वाहाराः ॥ ३५ ॥

अर्थ—सचित्ताहार (जीव सहित-हरे फल आदिका भक्षण करना), सचित्तसम्बन्धाहार (सचित्त पदार्थसे सम्बन्धको प्राप्त हुई चीजका आहार करना), सचित्तसन्मिश्राहार (सचित्त पदार्थसे मिले हुये पदार्थका आहार करना), अभिषवाहार (गरिष्ठ पदार्थका आहार करना), और दुःपक्वाहार (अधपके अथवा अधिक पके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हुए पदार्थका आहार करना, ये पांच भोग उपभोग परिमाणव्रतके अतिचार हैं॥ ३५॥

अतिथिसंविभागव्रतके अतिचार—

सचित्तनिक्षेपापिधानपरव्यपदेशमात्सर्यकालातिक्रमाः ॥ ३६ ॥

अर्थ—सचित्तनिक्षेप (सचित्त पत्र आदिमें भोजनको रखकर देना), सचित्तापिधान (सचित्त पत्र आदिसे ढके हुये भोजनादिका दान करना), परव्यपदेश (दूसरे दातारकी वस्तुको देना), मात्सर्य (अनादरपूर्वक देना अथवा दूसरे दातारसे ईर्षा करके देना) और कालातिक्रम (योग्य कालका उल्लंघन कर अकालमें देना), ये पांच अतिथिसंविभाग व्रतके अतिचार हैं॥ ३६॥

सल्लेखनाके अतिचार—

जीवितमरणाशंसामित्रानुरागसुखानुबन्धनिदानानि ॥ ३७ ॥

अर्थ—जीविताशंसा (सल्लेखना धारण कर जीनेकी इच्छा करना), मरणाशंसा (वेदनासे व्याकुल होकर शीघ्र मरनेकी वाञ्छा करना), मित्रानुराग (मित्रोंका स्मरण करना), सुखानुबंध (पूर्वकालमें भोगे हुये सुखोंका स्मरण करना) और निदान (आगामी कालमें विषयोंकी इच्छा करना), ये पांच सल्लेखना व्रतके अतिचार हैं॥ ३७॥

नोट—ऊपर कहे हुए ७० अतिचारोंका त्यागी ही निर्दोष व्रती कहलाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अतिचार प्रदर्शन

क्र	व्रत	अतिचार
१	सम्यग्दर्शन	शङ्का, आकांक्षा, विचिकित्सा, अन्यदृष्टिप्रशंसा, अन्यदृष्टिसंस्तव।
	५ अणुव्रत	
२	१ अहिंसाणुव्रत	बन्ध, वध, छेद, अतिभारारोपण अन्नपाननिरोध
३	२ सत्याणुव्रत	मिथ्योपदेश, रहोभ्याख्यान, कूटलेखक्रिया, न्यासापहार, साकारमन्त्रभेद।
४	३ अचौर्याणुव्रत	स्तेनप्रयोग, तदाहृतादान, विरुद्धराज्यातिक्रम, हीनाधिकमानोन्मान, प्रतिरूपकव्यवहार।
५	४ ब्रह्मचर्याणुव्रत	परविवाहकरण, परिगृहीतेत्वरिकागमन, अपरिगृहीतेत्वरिकागमन, अनङ्गक्रीडा, कामतीव्राभिनिवेश
६	५ परिग्रहपरिमाणाणुव्रत	क्षेत्रवास्तुप्रमाणातिक्रम, हिरण्यसुवर्णप्रमाणातिक्रम, धनधान्यप्रमाणातिक्रम, दासीदासप्रमाणातिक्रम, कुप्यप्रमाणातिक्रम।
	३ गुणव्रत	
७	१ दिग्व्रत	ऊर्ध्वव्यतिक्रम, अधोव्यतिक्रम, तिर्यग्व्यतिक्रम, क्षेत्रवृद्धि, स्मृत्यन्तराधान।
८	२ देशव्रत	आनयन, प्रेष्यप्रयोग, शब्दानुपात, रूपानुपात, पुद्गलक्षेप।
९	३ अनर्थदण्डव्रत	कन्दर्प, कौत्कुच्य, मौखर्य, असमीक्ष्याधिकरण, उपभोगपरिभोगानर्थक्य।
	४ शिक्षाव्रत	
१०	१ सामायिक	कायदुष्प्रणिधान, मनोदुष्प्रणिधान, वाग्दुष्प्रणिधान, अनादर, स्मृत्यनुपस्थान।
११	२ प्रोषधोपवास	अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्ग, अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितादान, अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितसंस्तरोपक्रमण, अनादर, स्मृत्यनुपस्थान।
१२	३ भोगोपभोगपरिमाण	सचित्त, सचित्त सम्बन्ध, सचित्त संमिश्र, अभिषव दुःपक्वाहार।
१३	४ अतिथि संविभाग	सचित्त निक्षेप, सचित्त अपिधान, परव्यपदेश, मात्सर्य, कालव्यतिक्रम।
१४	५ सल्लेखना	जीविताशंसा, मरणाशंसा, मित्रानुराग, सुखानुबन्ध, निदान।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दानका लक्षण—

अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम् ॥ ३८ ॥

अर्थ—(अनुग्रहार्थम्) अपने और परके उपकारके लिये (स्वस्य) धनादिकका (अतिसर्गः) त्याग करना (दानम्) दान है।

नोट—दान देनेमें अपना उपकार तो यह है कि पुण्यका बन्ध होता है और परका उपकार यह है कि दान लेनेवालेके सम्यग्ज्ञान आदि गुणोंकी वृद्धि होती है।

दानमें विशेषता—

विधिद्रव्यदातृपात्रविशेषात्तद्विशेषः ॥ ३९ ॥

अर्थ—विधिविशेष, द्रव्यविशेष, दातृविशेष और पात्रविशेषसे उस दानमें विशेषता होती है।

विधिविशेष—नवधाभक्तिके क्रमको विधिविशेष कहते हैं।

द्रव्यविशेष—तप स्वाध्याय आदिकी वृद्धिमें कारण आहारको द्रव्यविशेष कहते हैं।

दातृविशेष—श्रद्धा आदि सप्तगुण सहित दाताको दातृविशेष कहते हैं।

पात्रविशेष—सम्यक्चारित्र आदि गुणसहित मुनि आदिको पात्रविशेष कहते हैं ॥ ३९ ॥

इति श्रीमदुमास्वामिविरचिते मोक्षशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रश्नावली।

(१) व्रती किसे कहते हैं?
(२) अचौर्य व्रतकी पांच भावनाओंको समझाओ।
(३) मैत्री, प्रमोद, कारुण्य और माध्यस्थ्य भावनाका क्या स्वरूप है?
(४) ईर्यासमितिसे चलनेवाला मनुष्य अकस्मात् किसी जीवके मर जानेपर पापका भागी होगा या नहीं?
(५) मूर्च्छाकी क्या परिभाषा है?
(६) सम्यग्दर्शनके अतिचार बतलाकर सल्लेखनाका स्वरूप समझाओ।
(७) नीचे लिखे हुये शब्दोंके अर्थ बतलाओ—साकार मन्त्रभेद, विमोचितावास, कुप्य, ऊर्ध्व व्यतिक्रम, सचित्तसंमिश्राहार और शल्य।
(८) संक्षेपमें श्रावकोंके व्रतोंका वर्णन करो।
(९) दिग्व्रत और देशव्रतमें क्या अन्तर है?
(१०) किस किस गतिमें व्रत धारण किये जा सकते हैं?

अष्टम अध्याय

बन्धतत्त्वका वर्णन

बन्धके कारण—

मिथ्यादर्शनाऽविरतिप्रमादकषाययोगा बन्धहेतवः ॥ १ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग, ये पांच कर्मबन्धके कारण हैं।

मिथ्यादर्शन—अतत्त्वोंके श्रद्धानको अथवा तत्त्वोंका श्रद्धान न होनेको मिथ्यादर्शन कहते हैं। इसके दो भेद हैं-१ गृहीत मिथ्यादर्शन और २ अगृहीत मिथ्यादर्शन।

गृहीत मिथ्यादर्शन—परोपदेशके निमित्तसे जो अतत्त्व श्रद्धान हो, उसे गृहीत मिथ्यादर्शन कहते हैं।

अगृहीत मिथ्यादर्शन—परोपदेशके बिना ही केवल मिथ्यात्व-कर्मके उदयसे जो हो, उसे अगृहीत मिथ्यादर्शन कहते हैं।

मिथ्यादर्शनके ५ भेद और भी हैं—१-एकांत, २-विपरीत, ३-संशय, ४-वैनयिक और ५-अज्ञान।

एकांत मिथ्यादर्शन—अनेक धर्मात्मक वस्तुमें यह इसी प्रकार है, इस तरहके एकांत अभिप्रायको एकांत मिथ्यादर्शन कहते हैं। जैसे-बौद्ध मतवाले वस्तुको अनित्य ही मानते हैं और वेदांती सर्वथा नित्य ही मानते हैं॥ अन्त=धर्म, गुण।

विपरीत मिथ्यादर्शन—परिग्रह सहित भी गुरु हो सकता है, केवली कवलाहार करते हैं, स्त्रीको भी मोक्ष प्राप्त हो सकता है, इत्यादि उल्टे श्रद्धानको विपरीत मिथ्यादर्शन कहते हैं।

संशय मिथ्यादर्शन—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्-चारित्र ये मोक्षके मार्ग हैं अथवा नहीं, इस प्रकारसे चलायमान श्रद्धानको संशय मिथ्यादर्शन कहते हैं।

वैनयिक मिथ्यादर्शन—सब प्रकारके देवोंको तथा सब प्रकारके मतोंको समान मानना वैनयिक मिथ्यादर्शन है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अज्ञान मिथ्यादर्शन—हिताहितकी परीक्षा न करके श्रद्धान करना अज्ञान मिथ्यात्व है।

अविरति—छह *कायके जीवोंकी हिंसाके त्याग न करने और ५ इन्द्रिय तथा मनके विषयोंमें प्रवृत्ति करनेको अविरत कहते हैं। इसके बारह भेद हैं-पृथ्वीकायिकाविरति, अप्कायिकाविरति इत्यादि।

बन्धके हेतु मुख्य रूपसे ४ हैं-मिथ्यादर्शन, अविरति, कषाय और योग। परन्तु यहां गुणस्थानोंका क्रम ध्यानमें रखते हुए कषायको दो भागोंमें बांटा गया है-प्रमाद और कषाय। इसलिये यहां बन्धके पांच हेतु बतलाये हैं।

प्रमाद—५ समिति, ३ गुप्ति, ८ शुद्धि×, १० धर्म इत्यादि अच्छे कार्योंमें उत्साहपूर्वक प्रवृत्ति न करनेको प्रमाद कहते हैं।+ इसके १५ भेद हैं।

कषाय—इसके २५ भेद है।

योग—इसके १५ भेद हैं-४-मनोयोग, ४-वचनयोग और ७-काययोग।

नोट—ये मिथ्यादर्शन आदि, सम्पूर्ण तथा पृथक् पृथक् बन्धके कारण हैं। अर्थात्-किसीके पांचों ही बन्धके कारण हैं, किसीके अविरति आदि ४, किसीके प्रमाद आदि ३, किसीके कषाय आदि २ और किसीके सिर्फ एक योग ही बन्धका कारण है॥ १॥

---

*-पांच स्थावर और त्रस ये छह कायके जीव हैं।

×१-भावशुद्धि, २-कायशुद्धि, ३-विनयशुद्धि, ४-ईर्यापथशुद्धि, ५-भैक्ष्यशुद्धि, ६-प्रतिष्ठापनशुद्धि, ७-शयनासनशुद्धि, ८-वाक्यशुद्धि।

+ प्रमाद और कषायमें सामान्य विशेषका अन्तर है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

आस्रवके ५७ भेद । आस्रव—

५ मिथ्यादर्शन — १२ अविरति — प्रमाद — २५ कषाय — १५=५७ योग

मिथ्यादर्शन

१ एकान्त
२ विपरीत
३ संशय
४ वैनयिक
५ अज्ञान

अविरति — इन्द्रियाविरति — प्राणहिंसादिऽविरति

इन्द्रियाविरति:

१ स्पर्शनेन्द्रियाविरति
२ रसनेन्द्रियाविरति
३ घ्राणेन्द्रियाविरति
४ चक्षुरिन्द्रियाविरति
५ कर्णेन्द्रियाविरति
६ मनोऽविरति

प्राणहिंसादिऽविरति:

१ पृथिवीकायिक हिंसाविरति
२ जलकायिक हिंसाविरति
३ अग्निकायिक हिंसाविरति
४ वायुकायिक हिंसाविरति
५ वनस्पतिकायिक ,,
६ त्रसकायिक हिंसाविरति

कषाय — कषाय — नोकषाय

अनंता.	अप्रत्या.	प्रत्या.	संज्वलन.
१ क्रोध	१ क्रोध	१ क्रोध	१ क्रोध
२ मान	२ मान	२ मान	२ मान
३ माया	३ माया	३ माया	३ माया
४ लोभ	४ लोभ	४ लोभ	४ लोभ

नोकषाय:

१ हास्य
२ रति
३ अरति
४ शोक
५ भय
६ जुगुप्सा
७ स्त्री वेद
८ पुंवेद
९ नपुं. वेद

योग — काययोग — वचनयोग — मनोयोग

काययोग:

१ औदारिक काययोग,
२ औदारिक मिश्रकाययोग,
३ वैक्रियिक काययोग,
४ वैक्रियिक मिश्रकाययोग
५ आहारक काययोग,
६ आहारक मिश्रकाययोग
७ कार्मण काययोग,

वचनयोग:

१ सत्य वचनयोग,
२ असत्य वचनयोग
३ उभय वचनयोग,
४ अनुभय वचनयोग,

मनोयोग:

१ सत्य मनोयोग
२ असत्य मनोयोग
३ उभय मनोयोग
४ अनुभय मनोयोग

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बन्धका लक्षण—

सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान्पुद्गलानादत्ते स बन्धः ॥ २ ॥

अर्थ—(जीवः) जीव (सकषायत्वात्) कषाय सहित होनेसे (कर्मणः) कर्मके (योग्यान्) योग्य (पुद्गलान्) कार्मण वर्गणारूप पुद्गल परमाणुओंको जो (आदत्ते) ग्रहण करता है (सः) वह (बन्धः) बन्ध है।

भावार्थ—सम्पूर्ण लोकमें कार्मण वर्गणारूप पुद्गल भरे हुए हैं। कषायके निमित्तसे उनका आत्माके साथ सम्बन्ध हो जाता है यही बन्ध कहलाता है।

नोट—इस सूत्रमें 'कर्मयोग्यान्' ऐसा समास न करके जो अलग अलग ग्रहण किया है उससे सूत्रका यह अर्थ भी निकलता है कि—"जीव कर्मसे सकषाय होता है और सकषाय होनेसे कर्म-रूप पुद्गलोंको ग्रहण करता है, यही बन्ध कहलाता है" ॥२॥

बन्धके भेद—

प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशास्तद्विधयः ॥ ३ ॥

अर्थ—प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्ध ये बन्धके चार भेद हैं।

प्रकृतिबन्ध—कर्मोंके स्वभावको प्रकृतिबन्ध कहते हैं।

स्थितिबन्ध—ज्ञानावरणादि कर्मोंका अपने स्वभावसे च्युत नहीं होना सो स्थितिबन्ध है।

१०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुभागबन्ध—ज्ञानावरणादि कर्मोंके रसविशेषको अनुभागबन्ध कहते हैं।

प्रदेशबन्ध—ज्ञानावरणादि कर्मरूप होनेवाले पुद्गल स्कन्धोंके परमाणुओंकी संख्याको प्रदेशबन्ध कहते हैं।

नोट—इन चार प्रकारके बन्धोंमें प्रकृति और प्रदेशबन्ध योगके निमित्तसे होते हैं तथा स्थिति और अनुभागबन्ध कषायके निमित्तसे होते हैं॥ ३॥

प्रकृतिबन्धका वर्णन—प्रकृतिबन्धके मूल भेद—

आद्योज्ञानदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुर्नामगोत्रान्तरायाः ॥ ४ ॥

अर्थ—पहला प्रकृतिबन्ध-ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय ऐसे आठ प्रकारका है।

ज्ञानावरण—जो आत्माके ज्ञानगुणको घाते उसे ज्ञानावरण कहते हैं।

दर्शनावरण—जो आत्माके दर्शनगुणको घाते उसे दर्शनावरण कहते हैं।

वेदनीय—जिसके उदयसे जीवोंको सुख दुख होवे उसे वेदनीय कहते हैं।

मोहनीय—जिसके उदयसे जीव अपने स्वरूपको भूलकर अन्यको अपना समझने लगे उसे मोहनीय कहते हैं।

आयु—जो इस जीवको नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देवमेंसे किसी शरीरमें रोक रखे उसे आयुकर्म कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नाम—जिसके उदयसे शरीर आदिकी रचना हो उसे नामकर्म कहते हैं।

गोत्र—जिसके उदयसे यह जीव ऊंच नीच कुलमें पैदा होवे उसे गोत्रकर्म कहते हैं।

अन्तराय—जिसके उदयसे दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्यमें विघ्न आवे उसे अन्तराय कर्म कहते हैं।

नोट—उक्त आठ कर्मोंमेंसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय ये चार कर्म घातिया (जीवके *अनुजीवी गुणोंके घातनेवाले) हैं और बाकीके चार कर्म अघातिया (×प्रतिजीवी गुणोंके) घातनेवाले हैं।+

प्रकृतिबन्धके उत्तर भेद—

पञ्चनवद्व्यष्टाविंशतिचतुर्द्विचत्वारिंशद्द्विपञ्चभेदा यथाक्रमम् ॥ ५ ॥

अर्थ—ऊपर कहे हुए ज्ञानावरणादि कर्म क्रमसे ५, ९, २, २८, ४, ४२, २ और ५ भेदवाले हैं ॥ ५ ॥

ज्ञानावरणके पांच भेद—

मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानाम् ॥ ६ ॥

---

*सद्भाव रूप गुण। ×अभाव रूप गुण। +जिस प्रकार एक ही बार खाया हुआ भोजन, रस, खून आदि नाना रूप हो जाता है उसी तरह एकबार ग्रहण किया हुआ कर्म ज्ञानावरणादि अनेक भेदरूप हो जाता है। विशेषता यह है कि भोजन, रस, खून आदि रूप क्रम क्रमसे होता है, परन्तु कर्म ज्ञानावरणादि रूप एकसाथ हो जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—मतिज्ञानावरण (मतिज्ञानको ढांकनेवाला), श्रुतज्ञानावरण (श्रुतज्ञानको ढांकनेवाला), अवधिज्ञानावरण (अवधिज्ञानको ढांकनेवाला), मनःपर्यय (ज्ञानावरण मनःपर्यय ज्ञानको ढांकनेवाला) और केवलज्ञानावरण (केवलज्ञानको ढांकनेवाला) ये पांच ज्ञानावरणके भेद हैं।

दर्शनावरण कर्मके ९ भेद—

चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानां निद्रानिद्रानिद्राप्रचला-प्रचलाप्रचलास्त्यानगृद्धयश्च ॥ ७ ॥

अर्थ—चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधि दर्शनावरण, केवल दर्शनावरण, निद्रा निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धि ये नौ दर्शनावरण कर्मके भेद हैं।

चक्षुदर्शनावरण—जो कर्म चक्षु इन्द्रियोंसे होनेवाले सामान्य अवलोकनको न होने दे उसे चक्षुदर्शनावरण कहते हैं।

अचक्षुदर्शनावरण—जिस कर्मके उदयसे चक्षु इन्द्रियको छोड़कर शेष इन्द्रियों तथा मनसे पदार्थोंका सामान्य अवलोकन न हो सके उसे अचक्षुदर्शनावरण कहते हैं।

अवधिदर्शनावरण—जो कर्म अवधिज्ञानसे पहले होनेवाले सामान्य अवलोकनको न होने दे उसे अवधि दर्शनावरण कहते हैं।

केवलदर्शनावरण—जो कर्म केवलज्ञानके ×साथ होनेवाले

×छद्मस्थ जीवोंके दर्शन और ज्ञान क्रमसे होते हैं अर्थात् पहले दर्शन बादमें ज्ञान। परंतु केवली भगवानके दोनों एकसाथ होते हैं, क्योंकि उनके बाधक कर्मोंका एकसाथ क्षय होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सामान्य अवलोकनको न होने दे उसे केवलदर्शनावरण कहते हैं।

निद्रा—मद, खेद, श्रम आदिको दूर करनेके लिये जो शयन करते हैं वह निद्रा जिस कर्मसे उदयसे हो वह कर्म निद्रा दर्शनावरण है।

निद्रानिद्रा—नींदके बाद फिर २ नींद आनेको निद्रानिद्रा कहते हैं। निद्रानिद्राके वशीभूत होकर जीव अपनी आंखोंको नहीं खोल सकता।

प्रचला—बैठे२ नेत्र, शरीर आदिमें विकार करनेवाली, शोक तथा थकावट आदिसे उत्पन्न हुई नींद प्रचला कहलाती है। प्रचलाके वशीभूत हुआ जीव सोता हुआ भी जागता रहता है।

प्रचलाप्रचला—प्रचलाके ऊपर प्रचलाके आनेको प्रचलाप्रचला प्रकृति कहते हैं। प्रचलाप्रचलाके द्वारा शयन अवस्थामें मुंहसे लार बहने लगती है तथा अँगोपांग चलने लगते हैं।

स्त्यानगृद्धि—जिस निद्राके द्वारा सोती अवस्थामें भी नाना तरहके भयंकर कार्य कर डाले और जागने पर कुछ मालूम ही नहीं हो कि मैंने क्या किया है उसको स्त्यानगृद्धि कहते हैं* ॥ ७ ॥

वेदनीयके दो भेद—

सदसद्वेद्ये ॥ ८ ॥

अर्थ—सद्वेद्य और असद्वेद्य ये दो वेदनीय कर्मके भेद हैं।

* यह पांच तरहकी निद्रा जिस कर्मके उदयसे होती है वह निद्रा दर्शनावरण आदि कर्मभेद कहलाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सद्वेद्य—जिसके उदयसे देव आदि गतियोंमें शारीरिक तथा मानसिक सुख प्राप्त हो उसे सद्वेद्य कहते हैं।

असद्वेद्य—जिसके उदयसे नरकादि गतियोंमें तरह तरहके दुःख प्राप्त हो उसे असद्वेद्य कहते हैं॥ ८॥

मोहनीयके २८ भेद—

दर्शनचारित्रमोहनीयाकषायकषायवेदनीयाख्यास्त्रिद्विनवषोडशभेदाः सम्यक्त्वमिथ्यात्वतदुभयान्यकषायकषायौ हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सास्त्रीपुंनपुंसकवेदा अनंतानुबंध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसंज्वलनविकल्पाश्चैकशःक्रोधमानमायालोभाः॥ ९

अर्थ—दर्शन मोहनीय, चारित्र मोहनीय, कषाय वेदनीय और अकषाय वेदनीय इन चार भेदरूप मोहनीय कर्म क्रमसे तीन, दो, नौ और सोलह भेदरूप है। जिनमेंसे सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और सम्यक्मिथ्यात्व ये तीन दर्शनमोहनीय कर्मके भेद हैं। अकषाय वेदनीय और कषाय वेदनीय ये दो भेद चारित्र मोहनीयके हैं। हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्री वेद, पुँवेद और नपुंसकवेद ये ९ अकषाय वेदनीयके भेद हैं और अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और संज्वलन इन चार भेदस्वरूप क्रोध, मान, माया लोभ ये सोलह भेद कषाय वेदनीयके हैं।

भा०—मोहनीय कर्मके मुख्यमें दो भेद हैं-१ दर्शनमोहनीय÷

÷ आत्माके सम्यक्त्व गुणको घाते।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और २ चारित्रमोहनीय×, उनमें दर्शनमोहनीयके तीन और चारित्र मोहनीयके २५ इसप्रकार कुल मिलाकर मोहनीय कर्मके २८ भेद हैं।

मिथ्यात्व प्रकृति—जिस कर्मके द्वारा सर्वज्ञ-कथित मार्गसे परांगमुखता हो अर्थात् मिथ्यादर्शन हो उसे मिथ्यात्व प्रकृति कहते हैं।

सम्यक्त्व प्रकृति—जिस प्रकृतिके उदयसे आत्माके सम्यग्दर्शनमें दोष उत्पन्न हो उसे सम्यक्त्व प्रकृति कहते हैं।

सम्यङ्मिथ्यात्व प्रकृति—जिस प्रकृतिके उदयसे मिले हुए दही गुड़के स्वादकी तरह उभयरूप परिणाम हो उसे सम्यङ्मिथ्यात्व प्रकृति कहते हैं।+

हास्य—जिसके उदयसे हँसी आवे वह हास्य नोकषाय है।

रति—जिसके उदयसे विषयोंमें प्रेम हो वह रति है।

अरति—जिसके उदयसे विषयोंमें प्रेम न हो वह अरति है।

शोक—जिसके उदयसे शोक चिंता हो वह शोक है।

भय—जिसके उदयसे डर लगे वह भय है।

जुगुप्सा—जिसके उदयसे ग्लानि हो वह जुगुप्सा है।

स्त्रीवेद—जिसके उदयसे पुरुषसे रमनेके भाव हो वह स्त्री वेद है।

पुंवेद—जिसके उदयसे स्त्रीके साथ रमनेके भाव हो वह पुंवेद है।

× जो आत्माके चारित्रगुणको घाते।

+ सम्यक्त्व प्रकृति और सम्यक्मिथ्यात्व प्रकृति इन दो प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता किंतु आत्माके शुभ परिणामोंसे मिथ्यात्व प्रकृतिकी अनुभाग शक्ति हीन हो जानेसे उसमें इन २ प्रकृतिरूप परिणमन हो जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नपुंसक वेद—जिसके उदयसे स्त्री पुरुष दोनोंसे रमनेकी इच्छा हो वह नपुंसकवेद है।*

अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ—जो आत्माके स्वरूपाचरण× चारित्रको घाते उसे अनन्तानुबन्धी कहते हैं।

अनन्त संसारका कारण होनेसे मिथ्यात्वको अनन्त कहते हैं। उसके साथ ही इसका बन्ध होता है इसलिये इसको अनन्तानुबन्धी कहते हैं।

अप्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ—जिसके उदयसे देशचारित्र न हो सके उसे +अप्रत्याख्यानावरण० कहते हैं।

प्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ—जो प्रत्याख्यान अर्थात् सकलचारित्रको घाते उसे प्रत्याख्यानावरण० कहते हैं।

संज्वलन क्रोध मान माया लोभ—जिसके उदयसे ÷यथाख्यात चारित्र न हो सके उसे संज्वलन० कहते हैं। यह कषायसम्—अर्थात् संयमके साथ ज्वलित—जागृत रही आती है, इसलिये इसका नाम संज्वलन है।

नोट—इन कषायोंमें आगे आगे मन्दता है और नीचे नीचे तीव्रता है॥ ९॥

---

* हास्य आदि ९ कषाय क्रोधादिककी तरह आत्माके गुणोंका पूरा घात नहीं कर पातीं इसलिये इन्हें नोकषाय (किंचित् कषाय) कहते हैं।

× शुद्ध आत्माके अनुभवको स्वरूपाचरण चारित्र कहते हैं।

+ अ=अल्प—प्रत्याख्यान=चारित्रका आवरण करनेवाला।

÷ जो चारित्रमोहनीयके उपशम अथवा क्षयसे होता है उसे यथाख्यात चारित्र कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आयुकर्मके भेद—

नारकतैर्यग्योनमानुषदैवानि ॥ १० ॥

अर्थ—नरकायु, तिर्यगायु, मानुषायु और देवायु ये चार आयुकर्मके भेद हैं।

नारकायु—जिस कर्मके उदयसे जीव नारकीके शरीरमें रुका रहे उसे नरकायु कहते हैं। इसी तरह सब भेदोंमें समझना चाहिये ॥ १० ॥

नामकर्मके भेद—

४ ५ ५ ३ ६ २ ५ ५

गतिजातिशरीराङ्गोपाङ्गनिर्माणबन्धनसंघात

६ ६ ८ ५ २ ५ ४

संस्थानसंहननस्पर्शरसगन्धवर्णानुपूर्व्यागुरुलघूप-घातपरघातातपोद्योतोच्छ्वासविहायोगतयः प्रत्ये-कशरीरत्रससुभगसुस्वरशुभसूक्ष्मपर्याप्तिस्थिरादे-ययशःकीर्तिसेतराणि तीर्थकरत्वं च ॥ ११ ॥

अर्थ—गति, जाति, शरीर, अङ्गोपाङ्ग, निर्माण, बन्धन, संघात, संस्थान, संहनन, स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण आनुपूर्व्य, अगुरुलघू, उपघात, परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास और विहायोगति। ये इक्कीस तथा प्रत्येक शरीर, त्रस, सुभग, सुस्वर, शुभ, सूक्ष्म, पर्याप्ति, स्थिर, आदेय, यशःकीर्ति ये दश तथा इनके उल्टे साधारण, स्थावर, दुर्भग, दुःस्वर, अशुभ, स्थूल, अपर्याप्त, अस्थिर, अनादेय, अयशःकीर्ति, ये दश और तीर्थंकरत्व

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस प्रकार सब मिलकर नामकर्मके ४२ भेद हैं।×

१—गति—जिसके उदयसे जीव दूसरे भवको प्राप्त करता है उसे गति नामकर्म कहते हैं। इसके चार भेद हैं—१—नरकगति, २—तिर्यंग्गति, ३—मनुष्यगति और ४—देवगति। जिसके उदयसे आत्माको नरकगति प्राप्त होवे उसे नरकगति नामकर्म कहते हैं। इसी प्रकार अन्य भेदोंका लक्षण जानना चाहिये।

२—जाति—जिस कर्मके उदयसे जीव नरकादि गतियोंमें अव्यभिचाररूप समानतासे एकरूपताको प्राप्त होवे वह जाति नामकर्म है। इसके पांच भेद हैं—१—एकेन्द्रिय जाति, २—द्वीन्द्रिय जाति, ३—त्रीन्द्रिय जाति, ४—चतुरिन्द्रिय जाति और ५—पंचेन्द्रिय जाति। जिसके उदयसे जीव एकेन्द्रिय जातिमें पैदा हो उसे एकेन्द्रिय जाति नामकर्म कहते हैं। इसी प्रकार सब भेदोंका लक्षण जानना चाहिये।

३—शरीर—जिस कर्मके उदयसे शरीरकी रचना हो उसे शरीर नामकर्म कहते हैं। इसके पांच भेद हैं—१. औदारिक शरीर नामकर्म, २. वैक्रियिक शरीर नामकर्म, ३. आहारक शरीर नामकर्म, ४. तैजस शरीर नामकर्म और कार्मण शरीर नामकर्म। जिसके उदयसे औदारिक शरीरकी रचना हो उसे औदारिक शरीर नामकर्म कहते हैं। इसी प्रकार सब भेदोंके लक्षण जानना चाहिये।

४—अङ्गोपाङ्ग—जिसके उदयसे अङ्ग-उपाङ्गोंकी रचना हो उसे अङ्गोपाङ्ग नामकर्म कहते हैं। इसके तीन भेद हैं—१—औदारिक शरीराङ्गोपाङ्ग, २—वैक्रियिक शरीराङ्गोपाङ्ग और ३—आहारक शरीराङ्गोपाङ्ग। जिसके उदयसे औदारिक शरीरके अङ्ग और उपाङ्गोंकी रचना हो उसे औदारिक शरीराङ्गोपाङ्ग नामकर्म कहते हैं। इस-

× गति आदिके अवांतर भेद जोड़नेसे ९३ भेद होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकार शेष दो भेदोंके लक्षण समझना चाहिये ।+

५–निर्माण—जिस कर्मके उदयसे अङ्गोपाङ्गोंकी यथास्थान और यथाप्रमाण रचना हो उसे निर्माण नामकर्म कहते हैं।

६–बन्धन नामकर्म—शरीर नामकर्मके उदयसे ग्रहण किये हुये पुद्गल स्कन्धोंका परस्पर सम्बन्ध जिस कर्मके उदयसे होता है उसे बन्धन नामकर्म कहते हैं इसके पांच भेद हैं—१ औदारिक बन्धन नामकर्म, २ वैक्रियिक बन्धन नामकर्म, ३ आहारक बन्धन नामकर्म, ४ तैजस बन्धन नामकर्म और ५ कार्मण बन्धन नामकर्म। जिसके उदयसे औदारिक शरीरके परमाणु दीवालमें लगे हुये ईंट और गारेकी तरह छिद्र सहित परस्पर सम्बन्धको प्राप्त हों वह औदारिक बन्धन नामकर्म है। इसी प्रकार अन्य भेदोंका लक्षण जानना चाहिये।

७–संघात नामकर्म—जिस कर्मके उदयसे औदारिकादि शरीरोंके प्रदेशोंका छिद्र रहित बन्धन हो उसे संघात नामकर्म कहते हैं। इसके भी ५ भेद हैं–औदारिक, संघात आदि।

८–संस्थान नामकर्म–जिस कर्मके उदयसे शरीरका संस्थान अर्थात् आकार बने उसे संस्थान नामकर्म कहते हैं। इसके ६ भेद हैं–१ समचतुरस्रसंस्थान नामकर्म, २ न्यग्रोधपरिमण्डल-संस्थान, ३ स्वातिसंस्थान, ४ कुब्जकसंस्थान, ५ वामनसंस्थान और ६ हुण्डकसंस्थान।

जिस कर्मके उदयसे जीवका शरीर ऊपर नीचे तथा बीचमें

+ दो हाथ, दो पांव, नितम्ब, पीठ, वक्षःस्थल और मस्तक ये ८ अङ्ग हैं तथा अंगुलि आदि उपाङ्ग हैं। "णलया बाहू य तहा णियम्ब पुट्ठो उरो य सीसो य। अट्ठे व दु अंगाई देहे सेसा उवंगाइं ॥"

—कर्मकाण्ड।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समान भागरूप अर्थात् सुडौल हो उसे समचतुरस्रसंस्थान कहते हैं। जिस कर्मके उदयसे जीवका शरीर वटवृक्षकी तरह नाभिसे नीचे पतला और ऊपर मोटा हो उसे न्यग्रोधपरिमण्डल-संस्थान कहते हैं। जिस कर्मके उदयसे जीवका शरीर सर्पकी बामीकी तरह ऊपर पतला और नीचे मोटा हो उसे स्वाति-संस्थान नामकर्म कहते हैं। जिस कर्मके उदयसे जीवका शरीर कुबड़ा हो उसे कुब्जकसंस्थान नामकर्म कहते हैं और जिस कर्मके उदयसे बौना शरीर हो उसे वामनसंस्थान नामकर्म कहते हैं और जिस कर्मके उदयसे शरीरके अङ्गोपांग किसी खास आकृतिके न हों उसे हुण्डकसंस्थान नामकर्म कहते हैं।

९—संहनन नामकर्म—जिस कर्मके उदयसे हड्डियोंके बंधनमें विशेषता हो उसे संहनन नामकर्म कहते हैं। इसके ६ भेद हैं—१ वज्रर्षभनाराच संहनन, २ वज्रनाराच संहनन, ३ नाराच संहनन, ४ अर्द्धनाराच संहनन, ५ कीलक संहनन और ६ असंप्राप्तसृपाटिका संहनन।

जिस कर्मके उदयसे वृषभ (वेष्टन), नाराच (कील) और संहनन (हड्डियां वज्रकी हों उसे वज्रनाराच संहनन नाम-कर्म कहते हैं ॥१॥ जिस कर्मके उदयसे वज्रके हाड़ और वज्रकी कीलियां हों परन्तु वेष्टन वज्रके न हों उसे वज्रनाराच संहनन नामकर्म कहते हैं ॥२॥ जिसके उदयसे सामान्य वेष्टन और कीली सहित हाड़ हों उसे नाराच संहनन नामकर्म कहते हैं ॥ ३ ॥ जिसके उदयसे हड्डियोंकी संधियां अर्धकीलित हों उसे अर्धनाराच संहनन नामकर्म कहते हैं ॥४॥ जिसके उदयसे हड्डियां परस्पर कीलित हो उसे कीलक संहनन नामकर्म कहते हैं ॥५॥ और जिनके उदयसे जुदी जुदी हड्डियां नसोंसे बंधी हुई हों, परस्परमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कीलित नहीं हो उसे असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन नामकर्म कहते हैं ॥ ९ ॥

१०–स्पर्श—जिसके उदयसे शरीरमें स्पर्श हो उसे स्पर्श नामकर्म कहते हैं। इसके आठ भेद हैं–१ कोमल, २ कठोर, ३ गुरु, ४ लघु, ५ शीत, ६ ऊष्ण ७ स्निग्ध और ८ रूक्ष।

११–रस—जिसके उदयसे शरीरमें रस हो वह रस नामकर्म कहलाता है। इसके ५ भेद हैं—तिक्त (चरपरा), कटु (कडुआ), कषाय (कषायला), अम्ल (खट्टा) और मधुर (मीठा)।

१२–गन्ध—जिसके उदयसे शरीरमें गन्ध हो उसे गन्ध नामकर्म कहते हैं। इसके दो भेद हैं—१ सुगन्ध, २ दुर्गंध।

१३–वर्ण—जिसके उदयसे शरीरमें वर्ण अर्थात् रूप हो वह वर्ण नामकर्म है। इसके पांच भेद हैं-शुक्ल, २ कृष्ण, ३ नील, ४ रक्त और ५ पीत।

१४–आनुपूर्व्य—जिस कर्मके उदयसे विग्रह गतिमें मरणसे पहलेके शरीरके आकार आत्माके प्रदेश रहते हैं उसे आनुपूर्व्य नामकर्म कहते हैं। इसके चार भेद हैं–१ नरक गत्यानुपूर्व्य, २ तिर्यग्गत्यानुपूर्व्य, ३ मनुष्यगत्यानुपूर्व्य, और ४ देवगत्यानुपूर्व्य।

जिस समय आत्मा मनुष्य अथवा तिर्यंच आयुको पूर्ण कर पूर्व शरीरसे पृथक् हो नरकभवके प्रति जानेको सन्मुख होता है उस समय पूर्व शरीरके आकार आत्माके प्रदेश जिस कर्मके उदयसे होते हैं उसे नरकगत्यानुपूर्व्य कहते हैं। इसी प्रकार अन्य भेदोंके लक्षण जानना चाहिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१५-अगुरुलघु नामकर्म—जिस कर्मके उदयसे जीवका शरीर लोहेके गोलेकी तरह भारी और आकके तूलकी तरह हलका न हो वह अगुरुलघु नामकर्म है।

१६-उपघात—जिस कर्मके उदयसे अपने अँगोंसे अपना घात हो उसे उपघात नामकर्म कहते हैं।

१७-परघात—जिसके उदयसे दूसरेका घात करनेवाले अङ्गोपांग हो उसे परघात नामकर्म कहते हैं।

१८-आतप—जिस कर्मके उदयसे आतापरूप शरीर हो उसे आतप नामकर्म कहते हैं।×

१९-उद्योत—जिसके उदयसे उद्योतरूप शरीर हो उसे उद्योत नामकर्म कहते हैं।+

२०-उच्छ्वास—जिसके उदयसे शरीरमें उच्छ्वास हो उसे उच्छ्वास नामकर्म कहते हैं।

२१-विहायोगति—जिसके उदयसे आकाशमें गमन हो उसे विहायोगति नामकर्म कहते हैं। इसके दो भेद हैं-१ प्रशस्त विहायोगति और २ अप्रशस्त विहायोगति।

२२-प्रत्येक शरीर—जिस नामकर्मके उदयसे एक शरीरका एक ही जीव स्वामी हो उसे प्रत्येक शरीर नामकर्म कहते हैं।

२३-साधारण शरीर—जिसके उदयसे एक शरीरके अनेक

× इसका उदय सूर्यके विमानमें स्थित बादर पर्याप्त पृथ्वी-कायिक जीवोंके होता है।

+ इसका उदय चन्द्रमाके विमानमें स्थित पृथ्वीकायिक जीवोंके तथा खद्योत (जगनू) आदि जीवोंके होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीव स्वामी हों उसे साधारण शरीर नामकर्म कहते हैं ।×

२४–त्रस नामकर्म—जिसके उदयसे द्वीन्द्रियादिक जीवोंमें जन्म हो उसे त्रस नामकर्म कहते हैं ।

२५–स्थावर नामकर्म—जिस कर्मके उदयसे एकेन्द्रिय जीवोंमें जन्म हो उसे स्थावर नामकर्म कहते हैं ।

२६–सुभग नामकर्म—जिसके उदयसे दूसरे जीवोंको अपनेसे प्रीति उत्पन्न हो उसे सुभग नामकर्म कहते हैं ।

२७–दुर्भग नामकर्म—जिस कर्मके उदयसे रूपादि गुणोंसे युक्त होनेपर भी दूसरे जीवोंको अप्रीति उत्पन्न हो उसे दुर्भग नामकर्म कहते हैं ।

२८–सुस्वर—जिसके उदयसे उत्तम स्वर (आवाज) हो उसे सुस्वर नामकर्म कहते हैं ।

२९–दुःस्वर—जिसके उदयसे खराब स्वर हो उसे दुःस्वर नामकर्म कहते हैं ।

३०–शुभ—जिसके उदयसे शरीरके अवयव सुन्दर हों उसे शुभ नामकर्म कहते हैं ।

३१–अशुभ—जिसके उदयसे शरीरके अवयव देखनेमें मनोहर न हों उसे अशुभ नामकर्म कहते हैं ।

३२–सूक्ष्म—जिसके उदयसे ऐसा शरीर प्राप्त हो जो न किसीको रोक सकता हो और न किसीसे रोका जा सकता हो उसे सूक्ष्म शरीर नामकर्म कहते हैं ।

३३–बादर (स्थूल)—जिस कर्मके उदयसे दूसरेको रोकनेवाला

× इनका उदय निगोदिया वनस्पतिकायिक जीवोंके होता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथा दूसरेसे रुकनेवाला स्थूल शरीर प्राप्त हो उसे बादरशरीर नामकर्म कहते हैं।

३४-पर्याप्ति नामकर्म—जिसके उदयसे अपने योग्य पर्याप्ति पूर्ण हों उसे पर्याप्ति नामकर्म कहते हैं।×

३५-अपर्याप्ति नामकर्म—जिस कर्मके उदयसे जीवके एक भी पर्याप्ति पूर्ण न हो उसे अपर्याप्त नामकर्म कहते हैं।+

३६-स्थिर—जिस कर्मके उदयसे शरीरकी धातुएं (रस, रुधिर, मांस, मेद, हाड़, मज्जा और शुक्र) तथा उपधातुएं (बात, पित्त, कफ, शिरा, स्नायु, चाम और जठराग्नि) अपने अपने स्थानमें स्थिरताको प्राप्त हों उसे स्थिर नामकर्म कहते हैं।

×आहारवर्गणा, भाषावर्गणा और मनोवर्गणाके परमाणुओंको शरीर इन्द्रियादि रूप परिणत करनेवाली शक्तिकी पूर्णताको पर्याप्ति कहते हैं। इसके छह भेद हैं—१ आहार पर्याप्ति, २ शरीर पर्याप्ति, ३ इन्द्रिय पर्याप्ति, ४ श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति, ५ भाषा पर्याप्ति और ६ मनःपर्याप्ति। इनमेंसे एकेन्द्रिय जीवके भाषा और मनके बिना ४, असैनी पंचेन्द्रियके मनके बिना ५ और सैनी जीवके ६ पर्याप्तियां होती हैं। जिस जीवकी शरीर पर्याप्ति पूर्ण हो जाती है वह पर्याप्तक कहा जाता जाता है।

+जिस जीवकी पर्याप्ति पूर्ण नहीं होती उसे अपर्याप्तक कहते हैं। अपर्याप्तकके दो भेद हैं—१-निर्वृत्यपर्याप्तक और २-लब्ध्यपर्याप्तक। जिस जीवकी शरीर पर्याप्ति अभी पूर्ण तो न हुई हो किंतु नियमसे पूर्ण होनेवाली हो उसे निर्वृत्यपर्याप्तक कहते हैं। जिस जीवकी एक भी पर्याप्ति पूर्ण न हुई हो और न होनेवाली हो उसे लब्ध्यपर्याप्तक कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३७–अस्थिर—जिसके उदयसे पूर्वोक्त धातु उपधातुएँ अपने अपने स्थानमें स्थिर न रहें उसे अस्थिर नामकर्म कहते हैं।

३८–आदेय—जिसके उदयसे प्रभासहित शरीर हो उसे आदेय नामकर्म कहते हैं।

३९–अनादेय—जिसके उदयसे प्रभारहित शरीर हो उसे अनादेय नामकर्म कहते हैं।

४०–यशःकीर्ति—जिसके उदयसे संसारमें जीवकी प्रशंसा हो उसे यशःकीर्ति नामकर्म कहते हैं।

४१–अयशःकीर्ति—जिसके उदयसे जीवकी संसारमें निन्दा हो उसे अयशःकीर्ति नामकर्म कहते हैं।

४२–तीर्थंकरत्व—अरहन्तपदके कारणभूत कर्मको तीर्थंकरत्व नामकर्म कहते हैं।

गोत्रकर्मके भेद—

उच्चैर्नीचैश्च ॥ १२ ॥

अर्थ—उच्च गोत्र और नीच गोत्र ये दो भेद गोत्र-कर्मके हैं।

१–उच्च गोत्र—जिसके उदयसे लोकमान्य कुलमें जन्म हो उसे उच्च गोत्रकर्म कहते हैं॥ १२॥

२–नीच गोत्र—जिस कर्मके उदयसे लोकनिन्द्य कुलमें जन्म हो उसे नीच गोत्रकर्म कहते हैं॥ १२॥

अन्तरायकर्मके भेद—

दानलाभभोगोपभोगवीर्याणाम् ॥ १३ ॥

अर्थ—दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय ये अन्तरायकर्मके ५ भेद हैं। जिसके उदयसे जीव, दानकी इच्छा रखता हुआ भी दान न कर सके उसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दानान्तराय कर्म कहते हैं। इसी प्रकार अन्य भेदोंके भी लक्षण समझना चाहिये ॥ १३ ॥

स्थितिबन्धका वर्णन—

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, और अन्तरायकी उत्कृष्ट स्थिति—

आदितस्तिसृणामन्तरायस्य च त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्यः परा स्थितिः ॥ १४ ॥

अर्थ—आदिके तीन-(ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय) और अन्तराय इन चार कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति तीस कोड़ाकोड़ी सागरकी है।

नोट—मिथ्यादृष्टि संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवके ही इस उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होता है।* ॥ १४ ॥

मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट स्थिति—

सप्ततिर्मोहनीयस्य ॥ १५ ॥

अर्थ—मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरकी है ॥ १५ ॥

नाम और गोत्रकी उत्कृष्ट स्थिति—

विंशतिर्नामगोत्रयोः ॥ १६ ॥

अर्थ—नामकर्म और गोत्रकर्मकी उत्कृष्ट स्थिति बीस कोड़ाकोड़ी सागरकी है ॥ १६ ॥

आयु कर्मकी उत्कृष्ट स्थिति—

त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुषः ॥ १७ ॥

---

* एक करोड़में एक करोड़का गुणा करनेपर जो गुणनफल आवे उसे कोड़ाकोड़ी कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरकी है ॥ १७॥

वेदनीयकर्मकी जघन्य स्थिति—

अपरा द्वादशमुहूर्ता वेदनीयस्य ॥ १८ ॥

अर्थ—वेदनीयकर्मकी जघन्य स्थिति बारह मुहूर्तकी+ है ॥१८॥

नाम और गोत्रकी जघन्य स्थिति—

नामगोत्रयोरष्टौ ॥ १९ ॥

अर्थ—नाम और गोत्र कर्मकी जघन्य स्थिति आठ मुहूर्तकी है ॥ १९ ॥

शेष पांच कर्मोंकी जघन्य स्थिति—

शेषाणामन्तर्मुहूर्ता ॥ २० ॥

अर्थ—बाकीके ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अन्तराय और आयु कर्मकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त* है ॥ २० ॥

अनुभव (अनुभाग) बन्धका वर्णन।

अनुभव बन्धका लक्षण—

विपाकोऽनुभवः ॥ २१ ॥

अर्थ—कषायोंकी तीव्रता मन्दता अथवा मध्यमतासे जो आस्रवमें विशेषता होती है उससे होनेवाले विशेष पाकको विपाक कहते हैं। अथवा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भावके निमित्तके

+ दो घडी अर्थात् ४८ मिनटका एक मुहूर्त होता है।

* आवलीसे ऊपर और मुहूर्तसे नीचेके कालको अन्तर्मुहूर्त कहते हैं। असंख्यात समयोंकी एक आवली होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वशसे नाना-रूपताको प्राप्त होनेवाले पाकको विपाक कहते हैं। और इस पाकको ही अनुभव अर्थात् अनुभागबन्ध कहते हैं।

नोट १-शुभ परिणामोंकी अधिकता होनेपर शुभ प्रकृतियोंमें अधिक और शुभ प्रकृतियोंमें हीन अनुभाग होता है।

नोट २-अशुभ परिणामोंकी अधिकता होनेपर अशुभ प्रकृतियोंमें अधिक और शुभ प्रकृतियोंमें हीन अनुभाग होता है।

स यथानाम ॥ २१ ॥

अर्थ—वह अनुभागबन्ध कर्मोंके नामानुसार ही होता है।

भावार्थ—जिस कर्मका जैसा नाम है उसमें वैसा ही अनुभाग बन्ध पड़ता है। जैसे ज्ञानावरण कर्ममें ज्ञानको रोकना, दर्शनावरण कर्ममें 'दर्शनको रोकना' आदि ॥ २२ ॥

फल दे चुकनेके बाद कर्मोंका क्या होता है?—

ततश्च निर्जरा ॥ २३ ॥

अर्थ—तीव्र मन्द या मध्यम फल दे चुकनेके बाद कर्मोंकी निर्जरा हो जाती है। अर्थात् कर्म उदयमें आकर आत्मासे पृथक् हो जाते हैं।

निर्जराके दो भेद हैं-१ सविपाक निर्जरा और २ अविपाक निर्जरा।*

सविपाक निर्जरा—शुभ अशुभ कर्मोंको जिस प्रकार बांधा था उसी प्रकार स्थिति पूर्ण होनेपर फल देकर आत्मासे पृथक् होनेको सविपाक निर्जरा कहते हैं।

---

* 'विशिष्ट पाकः' अथवा 'विविधः पाकः विपाकः।'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अविपाक निर्जरा—उदयकाल प्राप्त न होनेपर भी तप आदि उपायोंसे बीचमें हीं फल भोगकर खिरा देनेको अविपाक निर्जरा कहते हैं।

नोट—इस सूत्रमें जो 'च' शब्दका ग्रहण किया है उससे नवमें अध्यायके 'तपसा निर्जरा च' इस सूत्रसे सम्बन्ध सिद्ध होता है जिससे यह सिद्ध हुआ कि कर्मोंकी निर्जरा तपसे भी होती है, अर्थात् उक्त दो प्रकारकी निजराके कारण क्रमसे कर्मोंका विपाक और तपश्चरण है॥ २३॥

कर्मप्रकृति भेद तथा स्थितिबन्ध

नं०	कर्म	भेद	उत्कृष्ट स्थिति	जघन्य स्थिति
१	ज्ञानावरण	५	३० कोड़ाकोड़ी सागर	अन्तर्मुहूर्त
२	दर्शनावरण	९	३० कोड़ाकोड़ी सागर	,,
३	वेदनीय	२	३० कोड़ाकोड़ी सागर	१२ मुहूर्त
४	मोहनीय	२८	७० कोड़ाकोड़ी सागर	अन्तर्मुहूर्त
५	आयु	४	३३ सागर	,,
६	नाम	४२ (९३)	२० कोड़ाकोड़ी सागर	८ मुहूर्त
७	गोत्र	२	२० कोड़ाकोड़ी सागर	८ मुहूर्त
८	अन्तराय	५	३० कोड़ाकोड़ी सागर	अन्तर्मुहूर्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रदेशबन्धका वर्णन

प्रदेशबन्धका स्वरूप—

नामप्रत्ययाः सर्वतो योगविशेषात्सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहस्थिताः सर्वात्मप्रदेशेष्वनन्तानन्तप्रदेशाः ॥ २४॥

अर्थ—(नामप्रत्ययाः) ज्ञानावरणादि कर्मप्रकृतियोंके कारण (सर्वतः) सब ओरसे अथवा देव नारकादि समस्त भवोंमें (योगविशेषात्) मन वचन कायरूप योगविशेषसे (सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहस्थिताः) सूक्ष्म तथा एकक्षेत्रावगाहरूप स्थित (सर्वात्मप्रदेशेषु) सम्पूर्ण आत्माके प्रदेशोंमें जो (अनन्तानन्तप्रदेशाः) कर्मरूप पुद्गलके अनन्तानन्त प्रदेश हैं उनको प्रदेशबन्ध कहते हैं।

नोट—उक्त सूत्रमें प्रदेशबन्धके विषयमें होनेवाले निम्नलिखित ६ प्रश्नोंका समाधान किया गया है।

(१) किसमें कारण है ? (२) किस समय होता है ?
(३) किस कारणसे होता है ? (४) किस स्वभाववाला है ?
(५) किसमें होता है ? और (६) कितनी संख्यावाला है ?

भावार्थ—आत्माके योग-विशेषों द्वारा त्रिकालमें बन्धनेवाले, ज्ञानावरणादि कर्मप्रकृतियोंके कारणभूत, आत्माके समस्त प्रदेशोंमें व्याप्त होकर कर्मरूप परिणमने योग्य सूक्ष्म, आत्माके प्रदेशोंमें क्षीर-नीरकी तरह एक होकर स्थिर रहनेवाले, तथा अनन्तानन्त प्रदेशोंका प्रमाण लिये प्रदेशबन्धरूप पुद्गल स्कन्धोंको प्रदेशबन्ध कहते हैं॥ २४॥

पुण्यप्रकृतियां—

सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्राणि पुण्यम् ॥ २५ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—साता वेदनीय, शुभ आयु, शुभ नाम और शुभ गोत्र ये पुण्य प्रकृतियां हैं।

नोट—घातिया कर्मोंकी समस्त प्रकृतियां पापरूप हैं। किन्तु अघातिया कर्मोंमें पुण्य और पाप दोनोंरूप हैं। उनमेंसे ६८ प्रकृतियां पुण्यरूप हैं॥ २५॥ ×

पापप्रकृतियां—

अतोऽन्यत्पापम् ॥ २६ ॥

× सादं तिण्णेवाऊ उच्चं णरसुरदुगं च पंचिंदी।
देहा बन्धणसंघादंगोवगाई वण्णचओ ॥ ४१ ॥
समचउरवज्जरिसहं उवघादूणगुरुछक्क सग्गमणं।
तसबारसट्ठसट्ठी, बादालमभेददो सत्था ॥ ४२ ॥ [कर्मकाण्ड]

अर्थ—सातावेदनीय, तीन आयु (तिर्यञ्च, मनुष्य, देव) उच्च गोत्र, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्व्य; देवगति, देवगत्यानुपूर्व्य, पंचेन्द्रिय जाति, पांच देह, पांच बन्धन, पांच संघात, तीन अंगोपांग, २० वर्णादिक, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रवृषभनाराच संहनन, उपघातको छोड़कर अगुरुलघु आदि ६ (अगुरुलघु, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत), प्रशस्त विहायोगति और त्रसको आदि लेकर बारह (त्रस, बादर, पर्याप्ति, प्रत्येक शरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशस्कीर्ति, प्रमाण और तीर्थंकरत्व।) इस तरह भेद विवक्षासे ६८ पुण्यप्रकृतियां हैं और अभेद विवक्षासे ४२ ही हैं, क्योंकि १६ वर्णादिकके और शरीरमें अन्तर्गत हुए ५ बन्धन और ५ संघातके इस तरह २६ भेद घटानेसे ४२ होती हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—इससे भिन्न अर्थात् असातावेदनीय, अशुभ आयु, अशुभ नाम और अशुभ गोत्र ये पापप्रकृतियां हैं + ॥ २६ ॥

+ घादी णीचमसादं, णिरयाउ णिरयतिरियदुग जादी—
संठाणसंहदीणं चदुपणपणगं च वण्णचओ ॥ ४३ ॥
उवघादमसग्गमणं, थावरदसयं च अप्पसत्था हु।
बंधुदयं पडि भेदे अडणउदि सयं दुचदुरसीदिदरे ॥४४॥

(कर्मकांड)

अर्थ—घातिया कर्मोंकी (५+९+२८+५=४७) सैंतालीस, नीचगोत्र, असातावेदनीय, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, आदिकी ४ जातियां, ५ संस्थान, ५ संहनन, वर्णादिक १०, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति तथा स्थावरको आदि लेकर १६ (स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्ति, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और अयशःकीर्ति) इस प्रकार भेदविवक्षामें १०० प्रकृतियां और अभेद विवक्षामें ८४ प्रकृतियां पापरूप हैं। क्योंकि वर्णादिकके १६ भेद घटानेसे ८४ भेद रहते हैं। इनमेंसे सम्यङ्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति इन दोका बन्ध नहीं होनेसे भेद-विवक्षामें ९८ का बन्ध और १०० का उदय होता है।

नोट—वर्णादि चार अथवा उनके २० भेद पुण्य और पाप दोनों रूप हैं, इसलिये वे दोनों ही भेदोंमें गिने जाते हैं।

इति श्रीमदुमास्वामिविरचिते मोक्षशास्त्रे अष्टमोऽध्यायः॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रश्नावली।

(१) बन्ध किसे कहते हैं?

(२) ज्ञानावरणादि कर्म किस द्रव्यके भेद हैं? यदि पुद्गलके हैं तो देखनेमें क्यों नहीं आते?

(३) दर्शनमोहनीय कर्मके कितने भेद हैं और उनका क्या स्वरूप है?

(४) विग्रहगतिमें जीवका आकार कैसा होता है? और वैसे होनेमें कारण क्या है?

(५) पर्याप्ति, अस्थिर, वज्रवृषभनाराचसंहनन, प्रशस्त विहायोगति, और लाभान्तराय, इन कर्मोंके लक्षण बताओ।

(६) सब कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति बतलाओ।

(७) अपने किये हुए कर्मोंका फल कब भोगना पड़ता है?

(८) प्रदेशबन्ध किसे कहते हैं?

(९) फल दे चुकनेके बाद कर्मोंका क्या होता है?

(१०) पाप प्रकृतियां कितनी हैं? गिनाओ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नवम अध्याय

संवर और निर्जरा तत्वका वर्णन

संवरका लक्षण—

आस्रवनिरोधः संवरः ॥ १ ॥

अर्थ—आस्रवका रोकना सो संवर है। अर्थात् आत्मामें जिन कारणोंसे कर्मोंका आस्रव होता था उन कारणोंको दूर कर देनेसे जो कर्मोंका आना बन्द हो जाता है उसको संवर कहते हैं।

संवरके दो भेद हैं—१ द्रव्य संवर (पुद्गलमय कर्मोंके आस्रवका रुकना) और २ भावसंवर (कर्मास्रवके कारणभूत भावोंका अभाव होना), ॥ १ ॥

संवरके कारण—

स गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षापरीषहजयचारित्रैः ॥२॥

अर्थ—वह संवर तीन गुप्ति, पांच समिति, दश धर्म, बारह अनुप्रेक्षा, बाईस परीषहोंको जीतना और पांच प्रकारका चारित्र इन छह कारणोंसे होता है।

गुप्ति—संसार-भ्रमणके कारणस्वरूप काय, वचन, और मन इन तीन योगोंके निग्रह करनेको गुप्ति कहते हैं।

समिति—जीवोंकी हिंसासे बचनेके लिये यत्नाचार पूर्वक प्रवृत्ति करनेको समिति कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्म—जो आत्माको संसारके दुःखोंसे छुटाकर अभीष्ट स्थानमें प्राप्त करावे उसे धर्म कहते हैं।

अनुप्रेक्षा—शरीरादिकके स्वरूपका बारबार चिन्तवन करनेको अनुप्रेक्षा कहते हैं।

परिषहजय—भूख आदिकी वेदना उत्पन्न होनेपर कर्मोंकी निर्जरा करनेके लिये उसे शांत भावोंसे सह लेना उसे परिषहजय कहते हैं।

चारित्र—कर्मोंके आस्रवमें कारणभूत बाह्य आभ्यन्तर क्रियाओंके रोकनेको चारित्र कहते हैं॥ २॥

निर्जरा और संवरका कारण—

तपसा निर्जरा च॥ ३॥

अर्थ—तपसे निर्जरा और संवर दोनों होते हैं।

नोट १—तपका दश प्रकारके धर्मोंमें अन्तर्भाव हो जानेपर भी जो अलगसे ग्रहण किया है उसका प्रयोजन यह है कि यह संवर और निर्जरा दोनोंका कारण है तथा संवरका प्रधान कारण है।

नोट २—यद्यपि पुण्यकर्मका बन्ध होना भी तपका फल है तथापि तपका प्रधान फल कर्मोंकी निर्जरा ही है। जब तपमें कुछ न्यूनता होती है तब उससे पुण्यकर्मका बन्ध हो जाता है इसलिये पुण्यका बन्ध होना तपका गौण फल है। जैसे खेती करनेका प्रधान फल तो धान्य उत्पन्न होना है। और गौण फल पलाल (प्यांल) वगैरहका उत्पन्न होना है॥ ३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

संवरतत्त्वके ५७ भेद

संवर

गुप्ति ३ + समिति ५ + धर्म १० + अनुप्रेक्षा १२ + परिषहजय २२ + चारित्र ५=५७

गुप्ति ३	समिति ५	धर्म १०	अनुप्रेक्षा १२	परिषहजय २२		चारित्र ५=५७
१ कायगुप्ति	१ ईर्या	१ उत्तम क्षमा	१ अनित्य	१ क्षुधा	१२ आक्रोश	१ सामायिक
२ वाग्गुप्ति	२ भाषा	२ उत्तम मार्दव	२ अशरण	२ तृषा	१३ वध	२ छेदोपस्थापना
३ मनोगुप्ति	३ एषणा	३ उत्तम आर्जव	३ संसार	३ शीत	१४ याचना	३ परिहारविशुद्धि
	४ आदान निक्षेपण	४ उत्तम शौच	४ एकत्व	४ उष्ण	१५ अलाभ	४ सूक्ष्मसाम्पराय
	५ उत्सर्ग	५ उत्तम सत्य	५ अन्यत्व	५ दंशमशक	१६ रोग	५ यथाख्यात
		६ उत्तम संयम	६ अशुचित्व	६ नाग्न्य	१७ तृणस्पर्श	
		७ उत्तम तप	७ आस्रव	७ अरति	१८ मल	
		८ उत्तम त्याग	८ संवर	८ स्त्री	१९ सत्कार पुरस्कार	
		९ उत्तम आकिंचन्य	९ निर्जरा	९ चर्या	२० प्रज्ञा	
		१० उत्तम ब्रह्मचर्य	१० लोक	१० निषद्या	२१ अज्ञान	
			११ बोधिदुर्लभ	११ शय्या	२२ अदर्शन	
			१२ धर्म			

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुप्तिका लक्षण व भेद—

सम्यग्योगनिग्रहो गुप्तिः ॥ ४ ॥

अर्थ—भलेप्रकारसे अर्थात् विषयाभिलाषाको छोड़कर, काय, वचन, और मनकी स्वच्छन्द प्रकृतिके रोकनेको गुप्ति कहते हैं। उसके तीन भेद हैं–१ कायगुप्ति (कायको रोकना), २ वचनगुप्ति (वचनको रोकना) और ३ मनगुप्ति (मनको वशमें करना) ॥४॥

समितिके भेद—

ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गाः समितयः ॥५॥

अर्थ—सम्यग् ईर्या+ (चार हाथ आगे जमीन देखकर चलना), सम्यग् भाषा (हित मित प्रिय वचन बोलना), सम्यग् एषणा (दिनमें एकबार शुद्ध निर्दोष आहार लेना), सम्यग् आदान निक्षेपण, (देखभालकर किसी वस्तुको उठाना रखना) और सम्यग उत्सर्ग (जीव रहित स्थानमें मलमूत्र क्षेपण करना) ये पांच समितिके भेद हैं ॥ ५ ॥

दश धर्म—

उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागा-किंचन्यब्रह्मचर्याणि धर्मः ॥ ६ ॥

अर्थ—उत्तम क्षमा (क्रोधके कारण उपस्थित रहते हुए भी क्रोध नहीं करना), उत्तम मार्दव (उत्तम कुल, विद्या, बल आदिका घमंड नहीं करना), उत्तम आर्जव (मायाचारका त्याग करना), उत्तम शौच (लोभका त्याग कर आत्माको पवित्र बना),

---

+ इस सूत्रमें ऊपरके सूत्रसे 'सम्यक्' पदकी अनुवृत्ति आती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्तम सत्य (रागद्वेष पूर्वक असत्य वचनोंको छोड़कर हित मित प्रिय वचन बोलना) उत्तम संयम (५ इन्द्रिय और मनको वशमें करना तथा छह कायके जीवोंकी रक्षा करना), उत्तम तप (बाह्याभ्यन्तर १२ प्रकारके तपोंका करना), उत्तम त्याग (कीर्ति तथा प्रत्युपकारकी वाञ्छासे रहित होकर चार प्रकारका दान देना), उत्तम आकिञ्चन्य (पर पदार्थोंमें ममत्वरूप परिणामोंका त्याग करना) और उत्तम ब्रह्मचर्य (स्त्री मात्रका त्यागकर आत्माके शुद्ध स्वरूपमें लीन रहना) ये दश धर्म हैं।

बारह अनुप्रेक्षाएं—

अनित्याशरणसंसारैकत्वान्यत्वाशुच्यास्रवसंवर-निर्जरालोकबोधिदुर्लभधर्मस्वाख्यातत्वानुचिन्त-नमनुप्रेक्षाः ॥ ७ ॥

अर्थ—अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचित्व, आस्रव, संवर निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ और धर्म इन बारहके स्वरूपको बार बार चिन्तवन करना सो अनुप्रेक्षा है।

अनित्यानुप्रेक्षा—संसारके समस्त पदार्थ इन्द्रधनुष बिजली अथवा जलके बबूलेके समान शीघ्र ही नष्ट हो जानेवाले हैं, ऐसा विचार करना सो अनित्यानुप्रेक्षा है।

अशरणानुप्रेक्षा—जिस प्रकार निर्जन वनमें भूखे सिंहके द्वारा पकड़े हुए हरिणके बच्चेको कोई शरण नहीं है उसी प्रकार इस संसारमें मरते हुए जीवको कोई शरण नहीं है। यदि अच्छे भावोंसे धर्मका सेवन किया है तो वही आपत्तियोंसे बचा सकता है। इस प्रकार चिन्तवन करना सो अशरण-अनुप्रेक्षा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संसारानुप्रेक्षा—इस चतुर्गति रूप संसारमें भ्रमण करता हुआ जीव पितासे पुत्र, पुत्रसे पिता, स्वामीसे दास, दाससे स्वामी हो जाता है। और तो क्या, स्वयं अपना भी पुत्र हो जाता है, इत्यादि संसारके दुःखमय स्वरूपका विचार करना सो संसारानुप्रेक्षा है।

एकत्वानुप्रेक्षा—जन्म, जरा, मरण, रोग आदिके दुःख मैं अकेला ही भोगता हूं, कुटुम्बी आदि जन साथी नहीं हैं इत्यादि विचार करना सो एकत्वानुप्रेक्षा है।

अन्यत्वानुप्रेक्षा—शरीरादिसे अपनी आत्माको भिन्न चिन्तवन करना सो अन्यत्वानुप्रेक्षा है।

अशुचित्वानुप्रेक्षा—यह शरीर महा अपवित्र है, खून, मांस आदिसे भरा हुआ है, स्नान आदिसे कभी पवित्र नहीं हो सकता। इससे सम्बन्ध रखनेवाले दूसरे पदार्थ भी अपवित्र हो जाते हैं, इत्यादि शरीरकी अपवित्रताका विचार करना सो अशुचित्वानुप्रेक्षा है।

आस्रवानुप्रेक्षा—मिथ्यात्व आदि भावोंसे कर्मोंका आस्रव होता है, आस्रव ही संसारका मूल कारण है, इसप्रकार विचार करना सो आस्रवानुप्रेक्षा है।

संवरानुप्रेक्षा—आत्मामें नवीन कर्मोंका प्रवेश नहीं होने देना सो संवर है। संवरसे ही जीवोंका कल्याण होता है, ऐसा विचार करना सो संवरानुप्रेक्षा है।

निर्जरानुप्रेक्षा—सविपाकनिर्जरासे आत्माका कुछ भला नहीं होता किन्तु अविपाकनिर्जरासे ही आत्माका कल्याण होता है। इत्यादि निर्जराके स्वरूपका चितवन करना सो निर्जरानुप्रेक्षा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोकानुप्रेक्षा—अनन्त अलोकाकाशके ठीक बीचमें रहनेवाले चौदह राजु-प्रमाण लोकके आकारादिकका चिन्तवन करना सो लोकानुप्रेक्षा है।

बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा—रत्नत्रयरूप बोधिका प्राप्त होना अत्यन्त कठिन है, इस प्रकार विचारना सो बोधिदुर्लभभावना है।

धर्मस्वाख्यातत्वानुप्रेक्षा—जिनेन्द्र भगवानके द्वारा कहा हुआ अहिंसा लक्षणवाला धर्म ही जीवोंका कल्याण करनेवाला है। इसके प्राप्त न होनेसे ही जीव चतुर्गतिके दुःख सहते हैं, आदि विचार करना सो धर्मस्वाख्यातत्वानुप्रेक्षा है।

नोट—इन अनुप्रेक्षाओंका चिन्तवन करनेवाला जीव उत्तम-क्षमा आदि धर्मोंको पालता है और परिषहोंको जीतता है। इसलिए इनका कथन दोनोंके बीचमें किया गया है॥ ७॥

परिषह सहन करनेका उपदेश—

मार्गाच्यवननिर्जरार्थं परिसोढव्याः परिषहाः॥ ८

अर्थ—संवरके मार्गसे च्युत होनेके लिये तथा कर्मोंकी निर्जराके हेतु बाईस परिषह सहन करने योग्य हैं॥ ८॥

बाईस परिषह—

क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकनाग्न्यारतिस्त्रीचर्या-निषद्याशय्याक्रोशवधयाचनाऽलाभरोगतृणस्पर्श-मलसत्कारपुरस्कारप्रज्ञाऽज्ञानाऽदर्शनानि॥ ९॥

अर्थ—१ क्षुधा, २ तृष्णा, ३ शीत, ४ उष्ण, ५ दंशमशक,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६ नाग्न्य, ७ अरति, ८ स्त्री, ९ चर्या, १० निषद्या, ११ शय्या, १२ आक्रोश, १३ वध, १४ याचना, १५ अलाभ, १६ रोग, १७ तृण-स्पर्श, १८ मल, १९ सत्कार पुरस्कार, २० प्रज्ञा, २१ अज्ञान, और २२ अदर्शन, ये बाईस परिषह हैं।

क्षुधा—(भूख) के दुःखको शांत भावसे सह लेना क्षुधा परिषहजय है।

तृष्णा—पिपासारूपी अग्निको धर्मरूपी जलसे शांत करना तृषा परिषहजय है।

शीत—शीतकी वेदनाको शांत भावोंसे सहना शीत परिषहजय है।

उष्ण—गर्मीकी वेदनाको शांत भावोंसे सहना उष्ण परिषहजय है।

दंशमशक—डांश, मच्छर, बिच्छू, चिंउन्टी आदिके काटनेसे उत्पन्न हुई वेदनाको शांत भावोंसे सहना सो दंशमशक परिषहजय है।

नाग्न्य—नग्न रहते हुए भी मनमें किसी प्रकारका विकार नहीं करना सो नाग्न्य परिषहजय है।

अरति—अरतिके कारण उपस्थित होनेपर भी संयममें अरति अर्थात् अप्रीति नहीं करना सो अरति परिषहजय है।

स्त्री—स्त्रियोंके हावभाव, प्रदर्शन आदि उपद्रवोंको शांतभावसे सहना, उन्हें देखकर मोहित नहीं होना सो स्त्री परिषहजय है।

चर्या—गमन करते समय खेदखिन्न नहीं होना सो चर्या परिषहजय है।

निषद्या—ध्यानके लिये नियमित कालपर्यंत स्वीकार किये हुए आसनसे च्युत नहीं होना सो निषद्या परिषहजय है।

१२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शय्या—विषम कठोर कंकरीले आदि स्थानोंमें एक करवटसे निद्रा लेना और अनेक उपसर्ग आनेपर भी शरीरको चलायमान नहीं करना, सो शय्या परिषहजय है।

आक्रोश—दुष्ट जीवोंके द्वारा कहे हुए कठोर शब्दोंको शांत भावोंसे सह लेना सो आक्रोश परिषहजय है।

वध—तलवार आदिके द्वारा शरीर पर प्रहार करनेवालोंसे भी द्वेष नहीं करना सो वध परिषहजय है।

याचना—प्राणोंका वियोग होनेपर भी आहारादिकको नहीं मांगना सो याचना परिषहजय है।

अलाभ—भिक्षाके प्राप्त न होनेपर सन्तोष धारण करना सो अलाभ परिषहजय है।

रोग—अनेक रोग होनेपर भी उनकी वेदनाको शांत भावोंसे सह लेना सो रोग परिषहजय है।

तृणस्पर्श—चलते समय पांवोंमें तृण कण्टक वगैरहके चुभ जानेसे उत्पन्न हुए दुःखको सहना सो तृणस्पर्श परिषहजय है।

मलपरिषहजय—अकषायिक जीवोंकी हिंसासे बचनेके लिये स्नान न करना तथा अपने मलिन शरीरको देखकर ग्लानि नहीं करना सो मलपरिषहजय है।

सत्कारपुरस्कार—अपनेमें गुणोंकी अधिकता होनेपर भी यदि कोई सत्कारपुरस्कार न करे तो चित्तमें कलुषता न करना सो ×सत्कार ÷पुरस्कार परिषहजय है।

प्रज्ञा—ज्ञानकी अधिकता होनेपर भी मान नहीं करना सो प्रज्ञा परिषहजय है।

× प्रशंसाको सत्कार कहते हैं।

÷ कोई कार्य करते समय अगुआ बना लेना सो पुरस्कार है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अज्ञान—ज्ञानादिककी हीनता होने पर लोगोंके द्वारा किये हुए तिरस्कारको शांत भावोंसे सह लेना अज्ञान परिषहजय है।

अदर्शन—बहुत समय तक कठोर तपश्चर्या करने पर भी मुझे अवधिज्ञान तथा चारण आदि ऋद्धियोंकी प्राप्ति नहीं हुई इसलिए व्रत धारण करना व्यर्थ है, इस प्रकार अश्रद्धानके भाव नहीं होना सो अदर्शन परिषहजय है।

नोट—उक्त बाईस परिषहोंको संक्लेशरहित भावोंसे जीत लेने पर संवर होता है।

किस ×गुणस्थानमें कितने परिषह होते हैं ?

सूक्ष्मसांपरायछद्मस्थवीतरागयोश्चतुर्दश ॥१०॥

अर्थ—सूक्ष्मसाम्पराय नामक दशवें और छद्मस्थ वीतराग अर्थात् ग्यारहवें उपशांतमोह तथा बारहवें क्षीणमोह नामक गुणस्थानमें १४ परिषह होते हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—१ क्षुधा, २ तृषा, ३ शीत, ४ उष्ण, ५ दंशमशक, ६ चर्या, ७ शय्या, ८ वध, ९ अलाभ, १० रोग, ११ तृणस्पर्श, १२ मल, १३ प्रज्ञा और १४ अज्ञान ॥ १० ॥

एकादश जिने ॥ ११ ॥

× मोह और योगके निमित्तसे होनेवाली आत्मपरिणामोंकी तरतमताको गुणस्थान कहते हैं। वे १४ होते हैं—१ मिथ्यादृष्टि, २ सासादन, ३ मिश्र, ४ असंयत सम्यग्दृष्टि, ५ देशविरत, ६ प्रमत्तसंयत, ७ अप्रमत्तसंत, ८ अपूर्वकरण, ९ अनिवृत्तिकरण, १० सूक्ष्मसाम्पराय, ११ उपशांतमोह, १२ क्षीणमोह, १३ सयोगकेवली और १४ अयोगकेवली।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—सयोगकेवली नामक तेरहवें गुणस्थानमें रहनेवाले जिनेन्द्र भगवानके ऊपर लिखे हुये १४ परिषहोंमेंसे अलाभ, प्रज्ञा और अज्ञानको छोड़कर शेष ११ परिषह होते हैं।

नोट—जिनेन्द्र भगवानके वेदनीय कर्मका उदय होनेसे उसके उदयसे होनेवाले ११ परिषह कहे गये हैं। यद्यपि मोहनीय कर्मका उदय न होनेसे भगवानको क्षुधादिककी वेदना नहीं होती+ तथापि इन परिषहोंका कारण वेदनीय कर्म मौजूद है, इसलिए उपचारसे ११ परिषह कहे गये हैं। वास्तवमें उनके एक भी परिषह नहीं होता है॥ ११॥

बादरसाम्पराये सर्वे ॥ १२ ॥

अर्थ—बादरसाम्पराय अर्थात् स्थूल कषायवाले छठवेंसे नववें गुणस्थानतक सब परिषह होते हैं। क्योंकि इन गुणस्थानोंमें परिषहोंके कारणभूत सब कर्मोंका उदय है॥ १२॥

कौन परिषह किस कर्मके उदयसे होता है ?

ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने ॥ १३ ॥

अर्थ—प्रज्ञा* और अज्ञान ये दो परिषह ज्ञानावरण कर्मके उदयसे होते हैं॥ १३॥

+वेदनीय कर्म, मोहनीय कर्मकी संगति पाकर ही दुःखका कारण होता है, स्वतंत्र नहीं।

*ज्ञानावरण कर्मका उदय होने पर जो थोड़ा ज्ञान प्रकट होता है वह अहंकारको पैदा करता है। ज्ञानावरणका नाश हो जानेपर अहँकार नहीं होता। इसलिये प्रज्ञा परिषह भी ज्ञानावरण कर्मके उदयसे माना है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दर्शनमोहांतराययोरदर्शनालाभौ ॥ १४ ॥

अर्थ—दर्शनमोहनीय और अन्तरायकर्मका उदय होनेपर क्रमसे अदर्शन और अलाभ परिषह होते हैं ॥ १४ ॥

चारित्रमोहे नाग्न्यारतिस्त्रीनिषद्याक्रोशयाचनासत्कारपुरस्काराः ॥ १५ ॥

अर्थ—चारित्रमोहनीय कर्मका उदय होनेपर नाग्न्य, अरति, स्त्री, निषद्या, आक्रोश, याचना और सत्कार पुरस्कार ये ७ परिषह होते हैं।

वेदनीये शेषाः ॥ १६ ॥

अर्थ—शेषके ११ परिषह (क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दंशमशक, चर्या, शय्या, वध, तृणस्पर्श और मल) वेदनीय कर्मके उदयसे होते हैं ॥ १६ ॥

एकसाथ होनेवाले परिषहोंकी संख्या—

एकादयो भाज्या युगपदेकस्मिन्नैकोनविंशतेः ।१७।

अर्थ—(युगपत्) एकसाथ (एकस्मिन्) एक जीवमें (एकादयः) एकको आदि लेकर (आ एकोनविंशतेः) उन्नीस परिषह तक (भाज्याः) विभक्त करना चाहिये।

भावार्थ—एक जीवके एक कालमें अधिकसे अधिक १९ परिषह हो सकते हैं, क्योंकि शीत और उष्ण इन दो परिषहोंमेंसे एक कालमें एक ही होगा तथा शय्या चर्या और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निषद्या इन तीनमेंसे भी एक कालमें एक ही होगा। इसप्रकार ३ परिषह कम कर दिये गये हैं ॥ १७ ॥×

पांच चारित्र—

सामायिकच्छेदोपस्थापनापरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसांपराययथाख्यातमिति चारित्रम् ॥ १८ ॥

अर्थ—सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय और यथाख्यात ये चारित्रके पांच भेद हैं।

सामायिक चारित्र—भेदरहित सम्पूर्ण पापोंके त्याग करनेको सामायिक कहते हैं।

छेदोपस्थापना—प्रमादके वशसे चारित्रमें कोई दोष लग जाने पर प्रायश्चित्तके द्वारा उसको दूर कर पुनः निर्दोष चारित्रको स्वीकार करना सो छेदोपस्थापना कहते हैं।

परिहारविशुद्धि—जिस चारित्रमें जीवोंकी हिंसाका त्याग हो हो जानेसे विशेष शुद्धि प्राप्त होती है उसको परिहारविशुद्धि चारित्र कहते हैं।

सूक्ष्मसाम्पराय—अत्यन्त सूक्ष्म लोभ कषायका उदय होनेपर जो चारित्र होता है उसे सूक्ष्मसाम्पराय चारित्र कहते हैं।

यथाख्यात—सम्पूर्ण मोहनीय कर्मके क्षय अथवा उपशमसे

× यहां कोई प्रश्न कर सकता है कि प्रज्ञा और अज्ञान भी एकसाथ नहीं होंगे इसलिये १ परीषह और कम करना चाहिये। पर यह प्रश्न ठीक नहीं है, क्योंकि एक ही कालमें एक ही जीवके श्रुतज्ञानादिकी अपेक्षा प्रज्ञा और अवधिज्ञानादिककी अपेक्षा अज्ञान रह सकता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्माके शुद्ध स्वरूपमें स्थिर होनेको यथाख्यात चारित्र कहते हैं × ॥ १८ ॥

निर्जरातत्त्वका वर्णन

बाह्य तप—

अनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशा बाह्यं तपः ॥ १९ ॥

अर्थ—१-अनशन (संयमकी वृद्धिके लिये चार प्रकारके आहारका त्याग करना), २-अवमौदर्य (रागभाव दूर करनेके लिये भूखसे कम भोजन करना), ३-वृत्तिपरिसंख्यान (भिक्षाको जाते समय घर, गली आदिका नियम करना), ४-रसपरित्याग (इन्द्रियोंका दमन करनेके लिये घृत दुग्ध आदि रसोंका त्याग करना), ५-विविक्तशय्यासन (स्वाध्याय ध्यान आदिकी सिद्धिके लिये एकांत तथा पवित्र स्थानमें सोना बैठना) और ६-कायक्लेश (शरीरसे ममत्व न रखकर आतापन योग आदि धारण करना) ये बाह्य तप हैं। ये तप बाह्य द्रव्योंकी अपेक्षा होते हैं तथा बाह्यमें सबके देखनेमें आते हैं इसलिये बाह्य तप कहे जाते हैं ॥ १९ ॥

आभ्यन्तर तप—

प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानान्युत्तरम् ॥ २० ॥

× सामायिक और छेदोपस्थापना ये दो चारित्र ६ वें ७ वें ८ वें और ९ वें गुणस्थानमें होते हैं। परिहारविशुद्धि ६ वें और ७ वें सूक्ष्मसाम्पराय १० वें और यथाख्यात चारित्र ११ वें १२ वें, १३ वें और १४ वें गुणस्थानमें होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—१-प्रायश्चित्त (प्रमाद अथवा अज्ञानसे लगे हुए दोषोंकी शुद्धि करना), २-विनय (पूज्य पुरुषोंका आदर करना), ३-वैयावृत्त्य (शरीर तथा अन्य वस्तुओंसे मुनियोंकी सेवा करना), ४-स्वाध्याय (ज्ञानकी भावनामें आलस्य नहीं करना), ५-व्युत्सर्ग (बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रहका त्याग करना) और ६-ध्यान (चित्तकी चंचलताको रोककर उसे किसी एक पदार्थके चिन्तवनमें लगाना) ये आभ्यन्तर तप हैं। इन तपोंका आत्मासे घनिष्ट सम्बन्ध है इसलिये उन्हें आभ्यन्तर तप कहते हैं॥ २०॥

आभ्यन्तर तपोंके उत्तरभेद—

नवचतुर्दशपंचद्विभेदा यथाक्रमं प्राग्ध्यानात् ॥२१॥

अर्थ—ध्यानसे पहलेके पांच तप क्रमसे ९, ४ १०, ५, और २ भेदवाले हैं॥ २१॥

+प्रायश्चित्तके नव भेद—

आलोचनप्रतिक्रमणतदुभयविवेकव्युत्सर्गतपश्छेद-परिहारोपस्थापनाः ॥ २२ ॥

अर्थ—१-आलोचना (प्रमादके वशसे लगे हुए दोषोंको गुरुके पास जाकर निष्कपट रीतिसे कहना), २-प्रतिक्रमण (मेरे द्वारा किये हुए अपराध मिथ्या हों ऐसा कहना) ३-तदुभय (आलोचना और प्रतिक्रमण दोनोंको करना), विवेक—संयुक्त आहार पानीका तथा अन्य उपकरणोंका नियमित समयतक पृथक् विभाग करना), व्युत्सर्ग (कायोत्सर्ग करना), तप (उपवासादि करना), छेद

+ प्रायः=अपराध, चित्त=शुद्धि, अपराधकी शुद्धि करना प्रायश्चित्त है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(एक दिन, एक पक्ष, महीना आदिकी दीक्षाका छेद करना×), परिहार (दिन, पक्ष, महीना आदि नियमित समय तक संघसे पृथक् कर देना) और उपस्थापन (संपूर्ण दीक्षाका छेद कर फिरसे नवीन दीक्षा देना) ये ९ प्रायश्चित्त तपके भेद हैं। यह प्रायश्चित्त संघके आचार्य देते हैं॥ २२॥

विनय तपके ४ भेद—

ज्ञानदर्शनचारित्रोपचाराः ॥ २३ ॥

अर्थ—१ ज्ञान विनय (आदरपूर्वक योग्यकालमें शास्त्र पढ़ना, अभ्यास करना आदि), २ दर्शन (शङ्का कांक्षा आदि दोष रहित सम्यग्दर्शन धारण करना), ३ चारित्र विनय (चारित्रको निर्दोष रीतिसे पालना) और ४ उपचार विनय (आचार्य आदि पूज्य पुरुषोंको देखकर खड़े होना, नमस्कार करना आदि) ये चार विनय तपके भेद हैं॥ २३॥

वैयावृत्य तपके १० भेद—

आचार्योपाध्यायतपस्विशैक्ष्यग्लानगणकुलसङ्घ-साधुमनोज्ञानाम् ॥ २४ ॥

अर्थ—आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, शैक्ष्य, ग्लान, गण, कुल,

×बादमें दीक्षित हुए मुनि पहलेके दीक्षित मुनियोंको नमस्कार करते हैं, पर जितने समयकी दीक्षा छेद दो जाती है उसको उतने समयमें दीक्षित हुये नये मुनियोंको नमस्कारादि करना पड़ता है। जो मुनि पहले उनके शिष्य समझे जाते ये दीक्षा छेद होने पर वह मुनि उनका शिष्य कहलाने लगता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संघ, साधु और मनोज्ञ इन १० प्रकारके मुनियोंकी सेवा टहल करना सो आचार्य, वैयावृत्य आदि १० प्रकारका वैयावृत्य है।

आचार्य—जो मुनि पञ्चाचारका स्वयं आचरण करते और दूसरोंको आचरण कराते हैं उन्हें आचार्य कहते हैं।

उपाध्याय—जिनके पास शास्त्रोंका अध्ययन किया जाता हो वे उपाध्याय कहलाते हैं।

तपस्वी—महान् उपवासके करनेवाले साधुओंको तपस्वी कहते हैं।

शैक्ष्य—शास्त्रके अध्ययनमें तत्पर मुनि शैक्ष्य कहलाते हैं।

ग्लान—रोगसे पीड़ित मुनि ग्लान कहलाते हैं।

गण—वृद्ध मुनियोंके अनुसार चलनेवाले मुनियोंके समुदायको गण कहते हैं।

कुल—दीक्षा देनेवाले आचार्यके शिष्योंको कुल कहते हैं।

सङ्घ—ऋषि, यति, मुनि, अनगार इन चार प्रकारके मुनियोंके समूहको संघ कहते हैं।

मनोज्ञ—लोकमें जिनकी प्रशंसा बढ़ रही हो उन्हें मनोज्ञ कहते हैं॥ २४॥

स्वाध्याय तपके ५ भेद—

वाचनापृच्छनानुप्रेक्षाम्नायधर्मोपदेशाः॥ २५॥

अर्थ—वाचना (निर्दोष ग्रन्थको उसके अर्थको तथा दोनोंको भव्य जीवोंको श्रवण कराना), पृच्छना (संशयको दूर करनेके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिये अथवा कृत निश्चयको दृढ़ करनेके लिये प्रश्न पूछना), अनुप्रेक्षा (जाने हुए पदार्थका बार बार चिन्तवन करना), आम्नाय (निर्दोष उच्चारण करते हुए पाठ करना) और धर्मोपदेश (धर्मका उपदेश करना) ये पांच स्वाध्याय तपके भेद हैं।

व्युत्सर्ग तपके दो भेद—

बाह्याभ्यन्तरोपध्योः ॥ २६ ॥

अर्थ—बाह्योपधिव्युत्सर्ग (धनधान्यादि बाह्य पदार्थोंका त्याग करना), और आभ्यंतरोपधिव्युत्सर्ग (क्रोध, मान आदि खोटे भावोंका त्याग करना), ये दो व्युत्सर्ग तपके भेद हैं ॥ २६ ॥

ध्यान तपका लक्षण—

उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिन्तानिरोधो ध्यानमान्तर्मुहूर्त्तात् ॥ २७ ॥

अर्थ—(उत्तमसंहननस्य) ×उत्तम संहननवालेका (आन्तर्मुहूर्त्तात्) अन्तर्मुहूर्तपर्यन्त (एकाग्रचिन्तानिरोधः) एकाग्रतासे चिन्ताका रोकना (ध्यानम्) ध्यान है।

भावार्थ—किसी एक विषयमें चित्तको रोकना सो ध्यान है। वह उत्तम संहननधारी जीवोंके ही होता है और एक पदार्थका ध्यान अन्तर्मुहूर्तसे अधिक समय तक नहीं होता है।

× वज्रर्षभनाराच, वज्रनाराच और नाराच ये तीन संहनन उत्तम संहनन कहलाते हैं। इन संहनन धारी जीवोंके ध्यान होता है। यह कथन उत्कृष्ट ध्यानको लक्ष्यमें रखकर किया गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ध्यानके भेद—

आर्तरौद्रधर्म्यशुक्लानि ॥ २८ ॥

अर्थ—आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यान ये ध्यानके चार भेद हैं॥ २८॥

परे मोक्षहेतू ॥ २९ ॥

अर्थ—इनमेंसे धर्मध्यान और शुक्लध्यान मोक्षके कारण हैं।

नोट १—धर्मध्यान परम्परासे और शुक्लध्यान साक्षात् मोक्षका कारण है।

नोट २—शुरूके आर्त और रौद्र ये दो ध्यान संसारके कारण हैं।

×आर्तध्यानका लक्षण और भेद—

आर्त्तममनोज्ञस्य संप्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृति-समन्वाहारः ॥ ३० ॥

अर्थ—अनिष्ट पदार्थका संयोग होनेपर उसे दूर करनेके लिये बार बार विचार करना सो (१) अनिष्ट संयोगज नामक आर्तध्यान है॥ ३०॥

विपरीतं मनोज्ञस्य ॥ ३१ ॥

अर्थ—स्त्री पुत्र आदि इष्टजनोंका वियोग होनेपर उनके संयोगके लिये बार बार चिंता करना सो (२) इष्ट वियोगज नामक आर्तध्यान है॥ ३१॥

× दुःखमें होनेवाले ध्यानको आर्तध्यान कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वेदनायाश्च ॥ ३२ ॥

अर्थ—योगजनित पीड़ाका निरन्तर चिन्तवन करना सो (३) वेदनाजन्य नामक आर्तध्यान है ॥ ३२ ॥

निदानं च ॥ ३३ ॥

अर्थ—आगामी काल सम्बन्धी विषयोंकी प्राप्तिमें चित्तको तल्लीन करना सो (४) निदानज नामक आर्तध्यान है ॥ ३३ ॥

गुणस्थानोंकी अपेक्षा आर्तध्यानके स्वामी—

तदविरतदेशविरतप्रमत्तसंयतानाम् ॥ ३४ ॥

अर्थ—यह आर्तध्यान अविरत अर्थात् आदिके चार गुणस्थान, देशविरत अर्थात् पंचम गुणस्थान और प्रमत्तसंयत अर्थात् छठवें गुणस्थानमें होता है।

नोट—छठवें गुणस्थानमें निदान नामका आर्तध्यान नहीं होता है ॥ ३४ ॥

रौद्रध्यानके+ भेद व स्वामी—

हिंसानृतस्तेयविषयसंरक्षणेभ्यो रौद्रमविरत-देशविरतयोः ॥ ३५ ॥

अर्थ—हिंसा, झूठ, चोरी और विषय संरक्षणसे उत्पन्न हुआ ध्यान रौद्रध्यान कहलाता है और वह अविरत तथा देशविरत (आदिके पांच) गुणस्थानोंमें होता है।

+क्रूर परिणामोंके होते हुये जो ध्यान होता है उसे रौद्रध्यान कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ—निमित्तके भेदसे रौद्रध्यान चार प्रकारका होता है। १ हिंसानन्दी (हिंसामें आनन्द मानकर उसीके साधन जुटानेमें तल्लीन रहना) २ मृषानन्दी (असत्य बोलनेमें आनन्द मानकर उसीका चिन्तवन करना), ३ चौर्यानन्दी (चोरीमें आनंद मानकर उसीका चिन्तवन करना), और ४ परिग्रहानन्दी (परिग्रहकी रक्षाकी चिन्ता करना) ॥ ३५ ॥

*धर्मध्यानका स्वरूप व भेद—

आज्ञापायविपाकसंस्थानविचयाय धर्म्यम् ॥ ३६॥

अर्थ—आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और संस्थान-विचयके लिये चिन्तवन करना सो धर्मध्यान है।

भा०—धर्मध्यानके चार भेद हैं–१ आज्ञाविचय (आगमकी प्रमाणतासे अर्थका विचार करना), २ अपायविचय (संसारी जीवोंके दुःखका तथा उससे छूटनेके उपायका चिन्तवन करना), ३ विपाकविचय (कर्मोंके फलका-उदयका विचार करना) और ४ संस्थानविचय (लोकके आकारका विचार करना।)

स्वामी—यह धर्मध्यान चौथे गुणस्थानसे लेकर सप्तम गुण-स्थान तक श्रेणि चढ़नेके पहले पहले तक होता है॥ ३६ ॥

×शुक्लध्यानके स्वामी—

शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः+ ॥ ३७ ॥

---

*धर्मविशिष्टध्यानको धर्मध्यान कहते हैं। ×शुद्धध्यानको शुक्लध्यान कहते हैं। +यह कथन उत्कृष्टताकी अपेक्षा है। साधारण रूपसे यह ध्यान अष्ट प्रवचन मातृका तक ज्ञानधारीोंके भी हो सकता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—प्रारम्भके पृथक्त्ववितर्क और एकत्ववितर्क नामक दो शुक्लध्यान पूर्वज्ञानधारी श्रुतकेवलीके ही होते हैं।

नोट—चकारसे श्रुतकेवलीके धर्मध्यान भी होता है ॥ ३७॥

परे केवलिनः ॥ ३८ ॥

अर्थ—अन्तके सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति और व्युपरतक्रियानिवर्ति ये दो शुक्लध्यान सयोगकेवली और अयोगकेवलीके ही होते हैं। × ॥ ३८ ॥

शुक्लध्यानके चार भेदोंके नाम—

पृथक्त्वैकवितर्कसूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिव्युपरत-क्रियानिवर्तीनि ॥ ३९ ॥

अर्थ—पृथक्त्ववितर्क, एकत्ववितर्क, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति और व्युपरतक्रियानिवर्ति ये शुक्लध्यानके चार भेद हैं ॥ ३९ ॥

भावार्थ—जिसमें वितर्क और विचार दोनों हों उसे पृथक्त्व-

× पहला भेद सातिशय अप्रमत्त नामक सातवें गुणस्थानसे लेकर दशवें गुणस्थान तक रहता है। इनसे मोहनीय कर्मका उपशम अथवा क्षय होता है। दूसरा भेद बारहवें गुणस्थानमें होता है। इससे शेष घातिया कर्मोंका क्षय होकर केवलज्ञान प्राप्त होता है। तीसरा भेद तेरहवें गुणस्थानके अन्त समयमें होता है और चौथा भेद चौदहवें गुणस्थानमें होता है। इससे उपान्त्य तथा अन्त समयमें क्रमसे ७२ और १३ प्रकृतियोंका क्षय होकर मोक्ष प्राप्त होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वितर्क नामक शुक्लध्यान कहते हैं। और जो केवल वितर्कसे सहित हो उसे एकत्ववितर्क नामक शुक्लध्यान कहते हैं।

सूक्ष्मकाययोगके आलम्बनसे जो ध्यान होता है उसे सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति नामक शुक्लध्यान कहते हैं। जिसमें आत्मप्रदेशोंमें परिस्पन्द पैदा करनेवाली श्वासोच्छ्वास आदि समस्त क्रियाएं निवृत्त हो जाती हैं-रुक जाती हैं उसे व्युपरतक्रियानिवर्ति नामक शुक्लध्यान कहते हैं॥ ३९॥

शुक्लध्यानके आलम्बन—

त्र्येकयोगकाययोगायोगानाम् ॥ ४० ॥

अर्थ—उक्त चार भेद क्रमसे तीन योग, एक योग, काययोग और योगरहित जीवोंके होते हैं। अर्थात् पहला पृथक्त्ववितर्कध्यान काय, वचन, मन इन तीनों योगके धारकके होता है। दूसरा एकत्ववितर्क ध्यान तीन योगोंमेंसे किसी एक योगके धारकके होता है। तीसरा सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिध्यान सिर्फ काययोगके धारकके होता है और चौथा व्युपरतक्रियानिवर्ति योगरहित जीवोंके होता है॥ ४०॥

आदिके दो ध्यानोंकी विशेषता—

एकाश्रये सवितर्कवीचारे पूर्वे ॥ ४१ ॥

अर्थ—एक-परिपूर्ण श्रुतज्ञानीके आश्रित रहनेवाले प्रारम्भके दो ध्यान वितर्क और वीचारकर सहित हैं॥ ४१॥

अवीचारं द्वितीयम् ॥ ४२ ॥

अर्थ—किन्तु दूसरा शुक्लध्यान वीचारसे रहित है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तपके भेद

बाह्य तप

१ अनशन
२ अवमोदर्य
३ वृत्तिपरिसंख्यान
४ रस परित्याग
५ विविक्तशय्यासन
६ कायक्लेश

अन्तरङ्ग तप

प्रायश्चित्त ९	विनय ४	वैयावृत्य १०	स्वाध्याय ५	व्युत्सर्ग २	ध्यान
१ आलोचना	१ ज्ञानविनय	१ आचार्य वैयावृत्य	१ याचना	१ बाह्योपधि त्याग	
२ प्रतिक्रमण	२ दर्शनविनय	२ उपाध्याय ,,	२ पृच्छना	२ आभ्योन्तरोपधित्याग	
३ तदुभय	३ चारित्र ,,	३ तपस्वी वैयावृत्य	३ अनुप्रेक्षा		
४ विवेक	४ उपचार ,,	४ शैक्ष्य वैयावृत्य	४ आम्नाय		
५ व्युत्सर्ग		५ ग्लान ,,	५ धर्मोपदेश		
६ तप		६ गण ,,			
७ छेद		७ कुल ,,			
८ परिहार		८ संघ ,,			
९ उपस्थापन		९ साधु ,,			
		१० मनोज्ञ ,,			

ध्यान

आर्तध्यान	रौद्रध्यान	धर्मध्यान	शुक्लध्यान
१ अनिष्टसंयोगज	१ हिंसानन्दी	१ आज्ञाविचय	१ पृथक्त्ववितर्क
२ इष्टवियोगज	२ मृषानन्दी	२ अपायविचय	२ एकत्ववितर्क
३ वेदना	३ चौर्यानन्दी	३ विपाकविचय	३ सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति
४ निदान	४ परिग्रहानन्दी	४ संस्थानविचय	४ व्युपरतक्रियानिवर्ति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वितर्कका लक्षण—

वितर्कः श्रुतम् ॥ ४३ ॥

अर्थ—श्रुतज्ञानको वितर्क कहते हैं ॥ ४३ ॥

वीचारका लक्षण—

वीचारोऽर्थव्यञ्जनयोगसंक्रान्तिः ॥४४॥

अर्थ—अर्थ, व्यञ्जन और योगको पलटनाको वीचार कहते हैं।

अर्थसंक्रान्ति—अर्थ अर्थात् ध्यान करने योग्य पदार्थको छोड़कर उसकी पर्यायको ध्यावे और पर्यायको छोड़कर द्रव्यको ध्यावे सो अर्थसंक्रान्ति है।

व्यञ्जनसंक्रान्ति—श्रुतके एक वचनको छोड़कर अन्यका अवलम्बन करना और उसे छोड़कर किसी अन्यका अवलम्बन करना सो व्यञ्जनसंक्रान्ति है।

योगसंक्रान्ति—काययोगको छोड़कर मनोयोग या वचन-योगको ग्रहण करना और उन्हें छोड़कर किसी अन्य योगको ग्रहण करना सो योगसंक्रान्ति है ॥ ४४ ॥

पात्रकी अपेक्षा निर्जरामें न्यूनाधिकताका वर्णन—

सम्यग्दृष्टिश्रावकविरतानन्तवियोजकदर्शनमोह-क्षपकोपशमकोपशान्तमोहक्षपकक्षीणमोहजिनाः क्रमशोऽसंख्येयगुणनिर्जराः ॥ ४५ ॥

अर्थ—१ सम्यग्दृष्टि, २ पञ्चमगुणस्थानवर्ती श्रावक, ३ विरत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(मुनि), ४ अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करनेवाला*, ५ दर्शन-मोहका क्षय करनेवाला, ६ चारित्रमोहका उपशम करनेवाला, ७ उपशांतमोहवाला, ८ क्षपकश्रेणि चढ़ता हुआ, ९ क्षीणमोह (बारहवें गुणस्थानवाला) और १० जिनेन्द्र भगवान, इन सबके परिणामोंकी विशुद्धताकी अधिकतासे आयुकर्मको छोड़कर प्रतिसमय क्रमसे असंख्यातगुणी असंख्यातगुणी निर्जरा होती है ॥ ४५ ॥

निर्ग्रन्थ-साधुओंके भेद—

पुलाकवकुशकुशीलनिर्ग्रन्थस्नातकाः निर्ग्रन्थाः ॥ ४६

अर्थ—पुलाक, वकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक ये पांच प्रकारके निर्ग्रन्थ साधु हैं।

पुलाक—जो उत्तरगुणोंकी भावनासे रहित हों तथा किसी क्षेत्र व कालमें मूलगुणोंमें भी दोष लगावें उन्हें पुलाक कहते हैं।

वकुश—जो मूलगुणोंका निर्दोष पालन करते हों परन्तु अपने शरीर व उपकरणादिकी शोभा बढ़ानेकी कुछ इच्छा रखते हों उन्हें वकुश कहते हैं।

कुशील—मुनि दो प्रकारके होते हैं—एक प्रतिसेवनाकुशील और दूसरे कषायकुशील।

प्रतिसेवनाकुशील—जिनके उपकरण तथा शरीरादिसे विरक्तता न हो और मूलगुण तथा उत्तरगुणकी परिपूर्णता है, परन्तु उत्तरगुणोंमें कुछ विराधना दोष हों, उन्हें प्रतिसेवनाकुशील कहते हैं।

---

* अनन्तानुबन्धीके परमाणुओंको अप्रत्याख्यानावरणादि रूप बदलनेवाला।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कषायकुशील—जिन्होंने संज्वलनके सिवाय अन्य कषायोंको जीत लिया हो उन्हें कषायकुशील कहते हैं।

निर्ग्रन्थ—जिनका मोहकर्म क्षीण हो गया हो ऐसे बारहवें गुणस्थानवर्ती मुनि निर्ग्रन्थ कहलाते हैं।

स्नातक—समस्त घातिया कर्मोंका नाश करनेवाले केवली भगवान् स्नातक कहलाते हैं॥ ४६॥

पुलाकादि मुनियोंमें विशेषता—

संयमश्रुतप्रतिसेवनातीर्थलिङ्गलेश्योपपादस्थान-विकल्पतः साध्याः॥ ४७॥

अर्थ—उक्त मुनि संयम, श्रुत, प्रतिसेवना, तीर्थ, लिङ्ग, लेश्या, उपपाद और स्थान इन आठ अनुयोगोंके द्वारा भेदरूपसे साध्य हैं। अर्थात् इन आठ अनुयोगोंके पुलाक आदि मुनियोंके विशेष भेद होते हैं॥ ४७॥

इति श्रीमदुमास्वामिविरचिते मोक्षशास्त्रे नवमोऽध्यायः॥

प्रश्नावली

(१) संवरके कारण क्या हैं?

(२) गुप्ति और समितिमें क्या अन्तर है?

(३) परिषह किसलिये सहन करना चाहिये? एकसाथ कितने परिषह हो सकते हैं?

(४) प्रायश्चित्त तपके भेद लक्षण सहित गिनाओ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(५) क्या संवरके बिना भी निर्जरा हो सकती है?
(६) शुक्लध्यानके भेदोंका वर्णन कर उनके लक्षण बताओ और कौन भेद कब होता है? उसका क्या कार्य है? यह भी बताओ।
(७) पुलाक मुनि पूज्य हैं या अपूज्य?
(८) रौद्रध्यानी जीव मरकर कहां जाता है?
(९) आजकल ध्यान हो सकता है या नहीं?
(१०) ध्यानकी सिद्धिके उपयोगी कुछ नियम बताओ।

दशम अध्याय

मोक्षतत्वका वर्णन

केवलज्ञानकी उत्पत्तिका कारण*—

मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्चकेवलम् ॥ १

अर्थ—मोहनीय कर्मका क्षय होनेसे अन्तर्मुहूर्तके लिये क्षीणकषाय नामक बारहवां गुणस्थान पाकर एकसाथ ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मका क्षय होनेसे केवलज्ञान उत्पन्न होता है।

भावार्थ—चार घातिया कर्मोंका सर्वथा क्षय हो जाने पर केवलज्ञान होता है।

नोट—घातिया कर्मोंमें सबसे पहले मोहनीय कर्मका क्षय होता है, इसलिये सूत्रमें गौरव होनेपर भी उसका पृथक् निर्देश किया है ॥ १ ॥

* मोक्ष केवलज्ञानपूर्वक होता है, इसलिये मोक्षके पहले केवलज्ञानकी उत्पत्तिका वर्णन किया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मोक्षके कारण और लक्षण—

बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः ॥ २ ॥

अर्थ—बन्धके कारणोंका अभाव तथा निर्जराके द्वारा ज्ञानावरणादि समस्त कर्मप्रकृतियोंका अत्यन्त अभाव होना मोक्ष है।

भावार्थ—आत्मासे समस्त कर्मोंका सम्बन्ध छूट जाना मोक्ष है और वह संवर तथा निर्जराके द्वारा प्राप्त होता है ॥ २ ॥

मोक्षमें कर्मोंके सिवाय और किसका अभाव होता है?—

औपशमिकादिभव्यत्वानां च ॥ ३ ॥

अर्थ—मुक्त जीवके औपशमिक आदि भावोंका तथा पारिणामिक भावोंमेंसे *भव्यत्व भावका भी अभाव हो जाता है।

अन्यत्र केवलसम्यक्त्वज्ञानदर्शनसिद्धत्वेभ्यः ॥ ४ ॥

अर्थ—केवलसम्यक्त्व, केवलज्ञान, केवलदर्शन और सिद्धत्व इन भावोंको छोड़कर मोक्षमें अन्य भावोंका अभाव हो जाता है।

भावार्थ—मुक्त अवस्थामें जीवत्व नामक पारिणामिक भाव और कर्मोंके क्षयसे प्रकट होनेवाले आत्मिक भाव रहते हैं, शेषका अभाव हो जाता है।

नोट—जिन गुणोंका अनन्तज्ञानादिके साथ सहभाव सम्बन्ध है ऐसे अनन्तवीर्य, अनन्तसुख आदि गुण भी पाये जाते हैं ॥४॥

---

* जिसके सम्यग्दर्शनादि प्राप्त होनेकी योग्यता हो उसे भव्य कहते हैं। जब सम्यग्दर्शनादि गुण पूर्ण रूपसे प्रकट हो चुकते हैं तब आत्मामें भव्यत्वका व्यवहार मिट जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर्मोंका क्षय होनेके बाद—

तदनन्तरमूर्ध्वं गच्छत्यालोकान्तात् ॥ ५ ॥

अर्थ—समस्त कर्मोंका क्षय होनेके बाद मुक्त जीव लोकके अन्त भाग पर्यन्त ऊपरको जाता है ॥ ५ ॥

मुक्त जीवके ऊर्ध्वगमनमें कारण—

पूर्वप्रयोगादसङ्गत्वाद्बन्धच्छेदात्तथागति-परिणामाच्च ॥ ६ ॥

अर्थ—पूर्वप्रयोग-(पूर्वसंस्कार)से, सङ्गरहित होनेसे, कर्मबन्धनके नष्ट होनेसे और तथागतिपरिणाम अर्थात् ऊर्ध्वगमनका स्वभाव होनेसे मुक्त जीव ऊर्ध्वगमन करता है ॥ ६ ॥

उक्त चारों कारणोंके क्रमसे चार दृष्टांत—

आविद्धकुलालचक्रवद्व्यपगतलेपालाबुवदेरण्डबीजवदग्निशिखावच्च ॥ ७ ॥

अर्थ—(१) मुक्तजीव कुम्भकारके द्वारा घुमाये हुए चाकको तरह पूर्वप्रयोगसे ऊर्ध्वगमन करता है। अर्थात् जिस प्रकार कुम्भकार चाकको घुमाकर छोड़ देता है तब भी चक्र पहलेके भरे हुए वेगके वशसे घूमता रहता है, उसी प्रकार जीव भी संसार अवस्थामें मोक्षप्राप्तिके लिये बराबर अभ्यास करता था, मुक्त होनेपर यद्यपि उसका वह अभ्यास छूट जाता है, तथापि वह पहलेके अभ्याससे ऊपरको गमन करता है। (२) मुक्त जीव, दूर हो गया है लेप जिसका ऐसे तूम्बेकी तरह ऊपरको जाता है अर्थात् तूम्बेपर जबतक मिट्टीका लेप रहता है तबतक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वह वजनदार होनेसे पानीमें डूबा रहता है, पर ज्योंही उसकी मिट्टी गलकर दूर हो जाती है त्योंही वह पानीके ऊपर आ जाता है। इसीप्रकार यह जीव जबतक कर्मलेपसे सहित होता है तबतक संसारसमुद्रमें डूबा रहता है पर ज्योंही इसका कर्मलेप दूर होता है त्योंहि वह ऊपर उठ कर लोकके ऊपर पहुंच जाता है। (३) मुक्त जीव कर्मबन्धसे मुक्त होनेके कारण एरण्डके बीजके समान ऊपरको जाता है। अर्थात् एरण्ड वृक्षका सूखा बीज जब चटकता है तब उसकी मिंगी जिस प्रकार ऊपरको जाती है उसी प्रकार यह जीव कर्मोंके बन्धन दूर होनेपर ऊपरको जाता है। और (४) मुक्त जीव स्वभावसे ही अग्निकी शिखाकी तरह ऊर्ध्वगमन करता है अर्थात् जिसप्रकार हवाके अभावमें अग्नि (दीपक आदि) की शिखा ऊपरको जाती है उसी प्रकार कर्मोंके बिना यह जीव भी ऊपरको जाता है ॥७॥

लोकाग्रके आगे नहीं जानेमें कारण—

धर्मास्तिकायाभावात् ॥ ८ ॥

अर्थ—धर्मद्रव्यका अभाव होनेसे मुक्त जीव लोकाग्र भागके आगे अर्थात् अलोकाकाशमें नहीं जाते। क्योंकि जीव और पुद्गलोंका गमन धर्मद्रव्यकी सहायतासे ही होता है और अलोकाकाशमें धर्मद्रव्यका अभाव है* ॥ ८ ॥

---

* लोकके अन्तमें ४५ लाख योजन विस्तारवाली सिद्धशिला है, मुक्त जीव उसीके ऊपर तनुवातवलयमें ठहर जाते हैं। मोक्षमें मुक्त जीवोंके शिर एक बराबर स्थान पर रहते हैं। मुक्त जीवोंका सिद्धशिलासे सम्बन्ध नहीं रहता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुक्त जीवोंमें भेद होनेके कारण—

क्षेत्रकालगतिलिङ्गतीर्थचारित्रप्रत्येकबुद्धबोधित ज्ञानावगाहनांतरसंख्याल्पबहुत्वतः साध्याः ॥९॥

अर्थ—क्षेत्र, काल, गति, लिंग, तीर्थ, चारित्र प्रत्येकबुद्ध-बोधित, ज्ञान, अवगाहन, अन्तर, संख्या और अल्पबहुत्व इन बारह अनुयोगोंसे सिद्धोंमें भी भेद साधनेयोग्य हैं।

भावार्थ—क्षेत्र—कोई भरतक्षेत्रसे, कोई ऐरावतक्षेत्रसे, और कोई विदेहक्षेत्रसे सिद्ध हुए हैं।+ इस प्रकार क्षेत्रकी अपेक्षा सिद्धोंमें भेद होता है। काल×—कोई उत्सर्पिणीकालमें सिद्ध हुए हैं और कोई अवसर्पिणीकालमें। गति—कोई सिद्ध गतिसे और कोई मनुष्य गतिसे सिद्ध हुए हैं। लिङ्ग—वास्तवमें* अलिङ्गसे ही सिद्ध होते हैं अथवा द्रव्यपुल्लिङ्गसे ही सिद्ध होते हैं। भावलिङ्गकी अपेक्षा तीनों लिङ्गोंसे मुक्त हो सकते हैं। तीर्थ—कोई तीर्थंकर होकर सिद्ध होते हैं, कोई बिना तीर्थंकर हुए सिद्ध होते हैं। कोई तीर्थंकरके कालमें सिद्ध होते हैं और कोई तीर्थंकरके मोक्ष चले जानेके बाद उनके तीर्थ (आम्नाय) में सिद्ध होते हैं। चारित्र—चारित्रकी अपेक्षा कोई एकसे अथवा कोई

+ संहरणकी अपेक्षा अढाई द्वीप मात्रसे मुक्त होते हैं।

× अवसर्पिणीके सुषमादुषमा नामक तीसरे कालके अन्तिम भागसे लेकर दुषमासुषमा नामक चौथे कालतक उत्पन्न हुए जीव ही मुक्त होते हैं। चौथे कालका उत्पन्न हुआ जीव पंचमकालमें मुक्त हो सकता है पर पंचमका पैदा हुआ पंचममें मुक्त नहीं हो सकता।

* भाववेदका उदय नवम गुणस्थान तक रहता है इसलिये मोक्ष अवेद दशामें ही होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

+भूतपूर्व नयकी अपेक्षा दो तीन चारित्रसे सिद्ध हुए हैं। प्रत्येक बुद्धबोधित–कोई स्वयं संसारमें विरत होकर मोक्षको प्राप्त हुए हैं और कोई किसीके उपदेशसे। ज्ञान–कोई एक ही ज्ञानसे और कोई भूतपूर्व नयकी अपेक्षा दो तीन चार ज्ञानसे सिद्ध हुए हैं।

अवगाहना—कोई उत्कृष्ट अवगाहना–पांचसौ पचीस धनुषसे सिद्ध हुए हैं, कोई मध्यम अवगाहनासे और कोई जघन्य अवगाहना–कुछ कम साढ़े तीन हाथसे सिद्ध हुए हैं।

अन्तर—एक सिद्धसे दूसरे सिद्ध होनेका अन्तर जघन्यसे एक समय और उत्कृष्टसे आठ समयका है तथा विरहकाल जघन्यसे एक समय और उत्कृष्टसे छ माहका होता है।

संख्या—जघन्यसे एक समयमें एक ही जीव सिद्ध होता है। और उत्कृष्टतासे १०८ जीव सिद्ध हो सकते हैं।

अल्पबहुत्व—समुद्र आदि जल–क्षेत्रोंसे थोड़े सिद्ध होते हैं और विदेहादि क्षेत्रोंसे अधिक सिद्ध होते हैं। इस प्रकार सिद्ध जीवोंमें बाह्य निमित्तकी अपेक्षा भेदकी कल्पना की गई है। वास्तवमें आत्मीय गुणोंकी अपेक्षा कुछ भी भेद नहीं रहता ॥९॥

॥ इति श्रीमदुमास्वामिविरचिते मोक्षशास्त्रे दशमोऽध्यायः ॥

× भूतकालकी बातको वर्तमानमें कहनेवाला।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोधक वृत्त—

अक्षरमात्रपदस्वरहीनं व्यञ्जनसन्धिविवर्जितरेफम् ।
साधुभिरत्र मम क्षन्तव्यं को न विमुह्यति शास्त्र-
समुद्रे ॥ १ ॥

अर्थ—इस शास्त्रमें यदि कहीं अक्षर मात्रा पद या स्वर रहित हो तथा व्यंजन सन्धि व रेफसे रहित हो तो सज्जन पुरुष मुझे क्षमा करें। क्योंकि शास्त्ररूपी समुद्रमें कौन पुरुष मोहको प्राप्त नहीं होता अर्थात् भूल नहीं करता ॥ १ ॥

अनुष्टुप्—

दशाध्याये परिच्छिन्ने तत्त्वार्थे पठिते सति ।
फलं स्यादुपवासस्य भाषितं मुनिपुङ्गवैः ॥ २ ॥

अर्थ—दश अध्यायोंमें बिभक्त इस तत्वार्थसूत्र (मोक्षशास्त्र) के पाठ करने तथा परिच्छेदन अर्थात् मननसे, श्रेष्ठ मुनियोंने एक उपवासका फल कहा है।

भावार्थ—जो पुरुष भावपूर्वक पूर्ण मोक्षशास्त्रका पाठ करता है और उसका चिन्तन करता है उसे एक उपवासका फल लगता है ॥ २ ॥×

× ये दोनों श्लोक मूल ग्रन्थकर्ताके बनाये हुए नहीं हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रश्नावली

(१) घातिया कर्मोंमें सबसे पहले किसका क्षय होता है ?

(२) क्या केवलज्ञानके बिना भी मोक्ष प्राप्त हो सकता है ?

(३) मोक्षका क्या लक्षण है ?

(४) "कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः" इस वाक्यमें विप्र शब्दका क्या अर्थ होता है ?

(५) मोक्षमें जीवोंका आकार कैसा होता है ?

(६) जबकि भव्यत्वभाव पारिणामिक भाव है तब सिद्ध अवस्थामें उसका अभाव क्यों हो जाता है ? यदि अभव्यत्वका अभाव होता है तो जीवत्वका भी अभाव क्यों नहीं होता ?

(७) मुक्त जीवोंमें भेद किसप्रकार होता है ?

(८) जीवका ऊर्ध्वगमन क्यों होता है ? उदाहरण सहित बतलाओ ।

(९) मुक्त जीव सिद्ध-शिलासे आगे क्यों नहीं जाते ?

(१०) मुक्त जीवोंको मध्य लोकसे मोक्षगमन तक पहुँचनेमें कितना समय लगता है ?

(११) "जो जीव मोक्षमें रहते हैं उन्हें मुक्त कहते हैं" यदि मुक्त जीवोंका यह लक्षण माना जावे तो क्या हानि होगी ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिशिष्ट—

शंका-समाधान

(ले:-पं० फूलचन्द्रजी जैन सिद्धांतशास्त्री, सम्पादक, जयधवला)

पाठशालाओंमें तत्त्वार्थसूत्र पढ़ाया जाता है। इसमें उपयोगी सब विषयोंका संकलन है। हमारे मित्र पंडित पन्नालालजी साहित्याचार्यका आग्रह रहा कि इसके परिशिष्टमें कुछ ऐसे प्रश्नोत्तरोंका संकलन कर दिया जाये जिससे अध्यापक व स्वाध्यायप्रेमी सबको लाभ हो। यह सोचकर हम दोनोंने कुछ प्रश्न तैयार किये थे उन्हींके अनुसार यह परिशिष्ट तैयार किया है। इसमें प्रत्येक अध्यायके क्रमसे प्रश्न व उनके उत्तर संकलित किये गये हैं।

पहला अध्याय—

१-शंका—किस योग्यताके होनेपर जीवको सम्यग्दर्शन प्राप्त हो सकता है?

१-समाधान—सम्यग्दर्शन तीन हैं-औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक। इनमेंसे पहले औपशमिक सम्यग्दर्शनकी अपेक्षा विचार करते हैं। ऐसा नियम है कि संसारमें रहनेका काल अर्ध पुद्गल परिवर्तन शेष रह जानेपर औपशमिक सम्यग्दर्शन हो सकता है। यह एक काललब्धि है। इस काललब्धिके प्राप्त हो जानेपर भी उसी जीवके औपशमिक सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है जो संज्ञी, पर्याप्त, साकार उपयोगसे युक्त और निर्मल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिणामवाला होता है, अन्यके नहीं। लेश्याओंके विषयमें यह नियम है कि मनुष्य और तिर्यंचोंके वर्तमान शुभ लेश्याएँ होनी चाहिये। किन्तु देव और नारकियोंके जहां जो लेश्या बतलाई है उसीके रहते हुए औपशमिक सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति हो जाती है। इसीप्रकार गोत्रके विषयमें भी जानना चाहिये। अर्थात् जिस गतिमें जो उच्च या नीच गोत्र सम्भव है उसके रहते हुए औपशमिक सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति हो जाती है। यह भवनिमित्तक दूसरी कालब्धि है। तीसरी कालब्धिका सम्बन्ध कर्मोंकी स्थितिसे है। ऐसा नियम है कि जिसके कर्मोंकी स्थिति अन्तः कोड़ाकोड़ी सागरसे अधिक होती है उसके प्रथमोपशम सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति सम्भव नहीं। किन्तु जिसके बन्धको प्राप्त होनेवाले कर्मोंकी स्थिति अन्त कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण प्राप्त होती है और सत्तामें स्थित कर्मोंकी स्थिति संख्यात हजार सागर कम अन्तः कोड़ाकोड़ी सागर शेष रह जाती है वही प्रथमोपशम सम्यग्दर्शनको प्राप्त होता है। चौथी कालब्धिका सम्बन्ध कर्मोंके अनुभागसे है। जिसके अप्रशस्त कर्मोंका अनुभाग द्विस्थानगत है और प्रशस्त कर्मोंका अनुभाग चतुःस्थानगत है और उसीके प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन प्राप्त हो सकता है। इसी प्रकार प्रकृति या प्रदेशगत और भी विशेषताएँ हैं जिन्हें लब्धिसार आदि ग्रन्थोंसे जान लेना चाहिये। उनमेंसे एक दो बातोंका यहां उल्लेख किये देते हैं। जिसके आहारक शरीर और आहारक आंगोपांगकी सत्ता होती है उसे प्रथमोपशम सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति नहीं होती।

बात यह है कि तेरह उद्वेलना प्रकृतियोंमें इन दोनोंका भी समावेश है। यह मानी हुई बात है कि वेदक कालके भीतर प्रथमोपशम सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति नहीं होती। किन्तु इन दोनों प्रकृतियोंकी उद्वेलनामें यदि पल्यका असंख्यातवां भाग काल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लगता है तो भी वह वेदककालसे कम है। अतः सिद्ध हुआ है कि इन दोनों प्रकृतियोंकी सत्ता रहते हुए प्रथमोपशम सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति नहीं होती। वेदक कालके विषयमें यह बतलाया है कि सम्यक्त्वसे च्युत हुआ मिथ्यादृष्टि जीव, एकेन्द्रिय पर्यायमें परिभ्रमण करता रहता है, वह संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्यायको प्राप्त करके प्रथमोपशम सम्यग्दर्शनको तभी प्राप्त कर सकता है, जब उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दो प्रकृतियोंकी स्थिति एक सागरसे कम शेष रह जाय। यदि इस जीवके एक सागरसे अधिक स्थिति शेष है तो उसे नियमसे वेदक सम्यग्दर्शन ही प्राप्त हो सकता है। ऐसे जीवके तबतक वेदकाल माना गया है और यदि सम्यक्त्वसे च्युत हुआ जीव विकलत्रय पर्यायमें परिभ्रमण करता रहता है तो उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सागर पृथक्त्वकी स्थितिके शेष रहनेतक वेदक काल होता है। यह जीव इन दोनों प्रकृतियोंकी इतनी स्थितिके शेष रहने तक यदि सम्यग्दर्शनको प्राप्त करे तो नियमसे वेदक सम्यक्त्वको या सम्यग्मिथ्यात्व सहित दोनोंकी उद्वेलना हो जाने पर सर्व प्रथम जीव प्रथमोशम सम्यक्त्वको ही प्राप्त करता है। इतने विवेचनसे निम्न बातें फलित हुईं।

(१) अभव्यके सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति सम्भव नहीं। भव्यके भी अर्धपुद्गल परिवर्तन कालके शेष रहनेपर ही सम्यग्दर्शन प्राप्त हो सकता है।

(२) औपशमिक सम्यग्दर्शनको प्राप्त करनेवाला जीव संज्ञी पर्याप्त, साकार उपयोगवाला, विशुद्ध लेश्यावाला और पर्याप्त योगवाला आदि होता है।

(३) बन्धनेवाले कर्मोंकी स्थिति अन्तः कोड़ाकोड़ी सागरसे सत्तामें स्थित कर्मोंकी स्थिति संख्यात हजार सागर अन्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कोड़ाकोड़ी सागरसे अधिक नहीं होती। अनुभाग भी अशुभ कर्मोंका द्विस्थानगत और शुभ कर्मोंका चतुःस्थानगत होता है।

(४) अनादि मिथ्यादृष्टि जीव सर्व प्रथम प्रथमोपशम सम्यक्त्वको ही प्राप्त करता है। सादि मिथ्यादृष्टियोंमें जिसके मोहनीयकी २६ या २७ प्रकृतियोंकी सत्ता है वह सर्वप्रथम प्रथमोपशम सम्यक्त्वको ही प्राप्त होता है। किन्तु जिसके २८ प्रकृतियोंकी सत्ता है वह वेदक कालके भीतर सर्वप्रथम वेदक सम्यक्त्वको ही प्राप्त होता है। हां, वेदक कालके व्यतीत हो जाने पर वह भी सर्वप्रथम प्रथमोपशम सम्यक्त्वको ही प्राप्त होता है।

(५) जिसके आहारक द्विककी सत्ता है उसे प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी प्राप्ति सम्भव नहीं।

(६) कषायपाहुड़में एक नियम यह भी बतलाया है कि जिस अनादि मिथ्यादृष्टिको सर्व प्रथम प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त होता है वह उक्त सम्यक्त्वसे च्युत होकर नियमसे मिथ्यात्वमें ही जाता है, अन्यत्र नहीं। अन्यत्र जाना इसका इसके पश्चात् ही सम्भव है।

औपशमिक सम्यग्दर्शनके दो भेद हैं—प्रथमोपशम और द्वितीयोपशम। इनमेंसे प्रथमोपशमके प्राप्त करनेमें जिस योग्यताकी आवश्यकता है इसका उल्लेख ऊपर किया ही है। अब रहा द्वितीयोपशम सम्यक्त्व, सो इसकी प्राप्ति वेदक सम्यग्दृष्टिके सातिशय अप्रमत्त गुणस्थानमें ही होती है। यह जीव अनन्तानुबन्धी चारकी विसंयोजना करके दर्शन मोहनीयकी तीन प्रकृतियोंकी उपशमना करता है तब यह द्वितीयोपशम सम्यक्त्व कहलाता है। आगममें एक ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टिके भी अनन्तानुबंधी चारकी विसंयोजना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हो सकती है। यह क्रिया चारों गतिका जीव करता है। किन्तु यह सम्यग्दर्शन प्रथमोपशम सम्यक्त्वका ही अवान्तर भेद है। ऊपर जिस द्वितीयोपशम सम्यक्त्वका उल्लेख किया है वह इससे भिन्न है।

लब्धिसारमें प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त होनेके पहले पांच लब्धियां बतलाई हैं उनका स्वरूप निम्न प्रकार है—

(१) क्षयोपशमलब्धि—अशुभ कर्मोंकी अनुभाग शक्तिके प्रति समय अनन्तगुणी न होकर उदीरणाको प्राप्त होना क्षयोपशम लब्धि है। इससे उत्तरोत्तर परिणाम निर्मल होते जाते हैं।

(२) जिन परिणामोंसे साता आदि प्रशस्त प्रकृतियोंका ही बन्ध होता है उसे विशुद्धलब्धि कहते हैं। प्रथम लब्धि इस लब्धिकी प्राप्तिमें कारण है।

(३) छह द्रव्य और नौ पदार्थों के ज्ञाता गुरुके मिलनेपर उनके द्वारा उपदेशे गये पदार्थके धारण करनेको देशनालब्धि कहते हैं।

(४) आयुको छोड़कर शेष सब कर्मोंकी स्थितिको अन्तः कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण कर देना और अशुभ कर्मोंमेंसे घातिया कर्मों के अनुभागको लता और दारु इन दो स्थानगत तथा अघातिया कर्मों के अनुभागको नीम और कांजी इन दो स्थानगत कर देना प्रायोग्यलब्धि है।

पहले हमने जितनी विशेषताएँ बतलाई हैं उन सबका इन चार लब्धियोंमें अन्तर्भाव हो जाता है। पांचवीं करणलब्धि है। करणका अर्थ परिणाम है। अर्थात् वे परिणाम जो नियमसे प्रथमोपशम सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिमें कारण हैं उनकी प्राप्तिको करणलब्धि कहते हैं। यह लब्धि सम्यग्दर्शनको प्राप्त करनेवाले

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीवके ही होती है। इसके तीन भेद हैं जिनका विस्तृत खुलासा लब्धिसारमें किया है। उपर्युक्त लब्धियोंके साथ इस लब्धिके होनेपर नियमसे सम्यग्दर्शन होता है। संक्षेपके कारण यहां हमने प्रत्येक लब्धिगत विशेषताका वर्णन नहीं किया है।

(२) क्षायोपशमिक सम्यक्त्वका दूसरा नाम वेदक सम्यक्त्व है इसे मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि दोनों उत्पन्न कर सकते हैं। मिथ्यादृष्टियोंमें जो वेदककालके भीतर स्थित है; संज्ञी, पर्याप्त और विशुद्ध परिणामवाला है उसीके वेदक सम्यक्त्व उत्पन्न होता है। कर्मोंकी स्थिति इसके अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर होनी चाहिये ऐसा कोई नियम नहीं है। अधिक भी हो सकती है जो प्रत्येक कर्मकी अपने अपने उत्कृष्ट स्थिति सत्तासे अन्तर्मुहूर्त कम तक हो सकती है। हां, सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिके समय इसके बन्ध अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरका ही होगा। सम्यग्दृष्टियोंमें प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि या द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि जीवके सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय हो जानेपर वेदक सम्यक्त्व होता है। जैन शतक आदिमें क्षायोपशमिकके तीन और वेदकके चार इस प्रकार सात भेद लिखे हैं इनमेंसे वेदकके चार भेद सही हैं। तथा क्षायोपशमिकके तीन भेदोंमेंसे अनन्तानुबन्धी चारकी विसंयोजना और दर्शन-मोहनीय तीनके उपशमसे जो सम्यक्त्व उत्पन्न होता है वह औपशमिक ही है, जिसका उल्लेख औपशमिक सम्यक्त्वके प्रकरणमें कर आये हैं। अब रहे शेष दो भेद सो वे नहीं बनते, क्योंकि औपशमिक सम्यग्दृष्टि क्षायिक सम्यक्त्वको नहीं उत्पन्न करता है ऐसा नियम है और इसके बिना ये भेद बन नहीं सकते। इसका विशेष खुलासा हम सर्वार्थसिद्धि टीकामें करने-वाले हैं। विस्तारभयसे यहां नहीं लिखा।

(३) क्षायिक सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाले जीवके वेदक सम्यक्त्वका होना आवश्यक है। इसकी उत्पत्ति केवली और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रुतकेवलीके पादमूलमें कर्मभूमिज मनुष्यके ही होती है। जिसने तीर्थंकर प्रकृतिका बंध करके उस भवमें क्षायिक सम्यक्त्वको प्राप्त नहीं किया उसके अन्तिम भवमें अपने निमित्तसे भी क्षायिक सम्यक्त्वकी उत्पत्ति होती हुई देखी जाती है, इस प्रकार किस योग्यताके होने पर जीवके कौनसा सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है इसका विचार किया।

२-शंका—सम्यग्दर्शनके कितने भेद हैं?

२-समाधान—सामान्यसे सम्यग्दर्शन एक है। उत्पत्तिके निमित्तोंके वर्गीकरणकी अपेक्षा सम्यग्दर्शनके दो भेद हैं-निसर्गज और अधिगमज। निसर्गका अर्थ स्वभाव है और अधिगमका अर्थ परोपदेश। तात्पर्य यह है कि जो सम्यग्दर्शन परोपदेशकी अपेक्षा उत्पन्न होता है वह निसर्गज सम्यग्दर्शन है और जो सम्यग्दर्शन परोपदेशपूर्वक उत्पन्न होता है वह अधिगमज सम्यग्दर्शन है। कर्मोंके उपशमादिककी अपेक्षा सम्यग्दर्शनके तीन भेद हैं—औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक। जो दर्शन मोहनीयकी तीन प्रकृतियोंके अन्तरकरण उपशमसे और अनंतानुबंधी चारके उपशम या विसंयोजनासे उत्पन्न होता है उसे औपशमिक सम्यग्दर्शन कहते हैं। जो पूर्वोक्त सातों प्रकृतियोंके क्षयसे उत्पन्न होता है उसे क्षायिक सम्यग्दर्शन कहते हैं, तथा जो सम्यक्त्व प्रकृतिके उदयसे उत्पन्न होता है उसे क्षायोपशमिक या वेदक सम्यग्दर्शन कहते हैं। इस प्रकार उत्तरोत्तर शब्दोंकी अपेक्षा संख्यात, श्रद्धान करनेवालोंकी अपेक्षा असंख्यात और श्रद्धान करनेयोग्य पदार्थोंकी अपेक्षा अनन्त भेद हैं। तब भी सम्यग्दर्शनके दश भेदोंका सर्वत्र मुख्यतासे उल्लेख मिलता है। जो ये हैं—आज्ञा सम्यक्त्व, मार्ग सम्यक्त्व, उपदेश सम्यक्त्व, सूत्र सम्यक्त्व, बीज सम्यक्त्व, संक्षेप सम्यक्त्व, विस्तार सम्यक्त्व, अर्थ सम्यक्त्व,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अवगाढ़ सम्यक्त्व और परमावगाढ़ सम्यक्त्व। जो सम्यक्त्व सर्वज्ञ जिनदेवके प्रवचनके निमित्तसे होता है उसे आज्ञा सम्यक्त्व कहते हैं। जो सम्यक्त्व निःसंग मोक्षमार्गके श्रवणमात्रसे उत्पन्न होता है उसे मार्ग सम्यक्त्व कहते हैं। जो सम्यक्त्व तीर्थंकर बलदेव आदिके शुभ चरित्र सुननेसे होता है उसे उपदेश सम्यक्त्व कहते हैं। दीक्षाकी मर्यादाके प्ररूपण करनेवाले आचारसूत्रके सुननेमात्रसे जो सम्यक्त्व होता है उसे सूत्र सम्यक्त्व कहते हैं। बीजपदके ग्रहणसे जो सूक्ष्म अर्थका श्रद्धान होता है उसे संक्षेप सम्यक्त्व कहते हैं। जीवादि पदार्थोंका विस्तारसे ज्ञान होनेसे जो श्रद्धान होता है उसे विस्तार सम्यक्त्व कहते हैं। वचनोंके विस्तारके बिना अर्थके ग्रहण होनेसे जो श्रद्धान होता है उसे अर्थ सम्यक्त्व कहते हैं। आचारांग आदि बारह अंगोंके मननसे जिसकी श्रद्धा दृढ़ हो गई है उसे अवगाढ़ सम्यक्त्व कहते हैं। परमावधि ज्ञानी और केवलज्ञानीके श्रद्धानको परमावगाढ़ सम्यक्त्व कहते हैं। इसी प्रकार आगमके अनुसार सम्यग्दर्शनके यथायोग्य भेद जानना चाहिये।

३-शंका—निक्षेप व्यवस्था किस प्रकार घटित होती है?

३-समाधान—लोकमें जितना शब्द व्यवहार या तदतिरिक्त व्यवहार होता है वह कहां किस अपेक्षासे किया जा रहा है इस गुत्थीको सुलझाना निक्षेप व्यवस्थाका काम है। निक्षेपके मुख्यतः चार भेद हैं—नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव। आगे इस व्यवस्थाको कर्मकी अपेक्षा घटित करके बतलाते हैं। लोकमें गुणादिकी अपेक्षा न करके जितना संज्ञा व्यवहार चालू है वह सब नाम निक्षेपका विषय है। गुणादिकी अपेक्षा जब यह व्यवहार किया जाता है तो वह नाम निक्षेपका विषय न होकर अन्य निक्षेपका विषय होता है। जैसे आगममें मनुष्यनी यह शब्द

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्त्रीधर्मकी प्रधानतासे आया है अतः इसका भावनिक्षेपमें अन्तर्भाव होता है। और स्त्रीवेदका नाश होजानेके पश्चात् मनुष्यनी शब्दका व्यवहार नामनिक्षेपका विषय हो जाता है। तो भी इसका प्रयोजक भूतप्रज्ञापन नय है इसलिये आगे भी यह व्यवहार चलू रहता है। पूर्व व्यवहारसे इसमें किसी प्रकारका अन्तर नहीं होता। इससे स्पष्ट हुआ कि नाम निक्षेपमें संज्ञाकी प्रधानता है गुणादिककी नहीं, अतः जिस किसी चेतन या अचेतन पदार्थका 'कर्म' यह नाम रखना नामकर्म है। स्थापना निक्षेपका व्यवहार प्रतिनिधिके स्थानमें होता है अतः तदाकार या अतदाकार वस्तुमें यह 'कर्म' इस प्रकारकी स्थापना करना स्थापना कर्म है। द्रव्य कर्मके दो भेद हैं—आगम द्रव्य कर्म और नोआगम द्रव्य कर्म। जो कर्म विषयक शास्त्रका ज्ञाता है किन्तु वर्तमानमें उसके उपयोगसे रहित है उसे आगम द्रव्यकर्म कहते हैं। नोआगम द्रव्य कर्मके तीन भेद हैं—ज्ञायकशरीर, भावी और तद्व्यतिरिक्त। ज्ञायकशरीरमें कर्मविषयक शास्त्रके ज्ञाताका भूत, भविष्यत् और भावी इन तीनों प्रकारके शरीरका ग्रहण किया है। जो भविष्य कालमें कर्मविषयक शास्त्रका ज्ञाता होगा उसे भावी नोआगम द्रव्यकर्म कहते हैं। तद्व्यतिरिक्तके दो भेद हैं—कर्मतद्व्यतिरिक्त नोआगम द्रव्यकर्म और नोकर्मतद्व्यतिरिक्त नोआगम द्रव्यकर्म। ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंको कर्मतद्व्यतिरिक्त नोआगम द्रव्यकर्म कहते हैं। और इन कर्मोंके उदयमें जिसको सहायता मिलती है उन सहकारी कारणोंको नोकर्मतद्व्यतिरिक्त नोआगम द्रव्यकर्म कहते हैं। भावनिक्षेपके दो भेद हैं—आगम भावनिक्षेप और नोआगम भावनिक्षेप। इनमेंसे जो कर्मविषयक शास्त्रको जानता है और वर्तमानमें उसके उपयोगसे युक्त है उसे कर्म आगम भावनिक्षेप कहते हैं। तथा जो जीव कर्मोंके फलको भोग रहा है उसे कर्मनोआगम भावनिक्षेप कहते हैं। कर्म दो प्रकारके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं—जीवविपाकी और पुद्गलविपाकी। पुद्गलविपाकी कर्मोंका फल जीवमें नहीं होता इसलिये इन कर्मोंका नोआगम भावनिक्षेप नहीं होता। किन्तु जीवविपाकी कर्मोंका फल जीवमें होता है इसलिये इनका नोआगम भावनिक्षेप होता है। संसारी जीवके जितने भेद किये गये हैं नोआगम भावनिक्षेपकी अपेक्षा ही किये गये हैं।

४-शंका—मतिज्ञानके मति आदि नामान्तर हैं या प्रत्येक शब्दका जो अर्थ वह यहां लिया गया है ?

४-समाधान—षट्खण्डागमके कर्मप्रकृति अनुयोगद्वारमें मति-ज्ञानावरण कर्मके कथन करनेके पश्चात् एक सूत्र आया है जिसका भाव है कि 'अब आभिनिबोधिक ज्ञानकी अन्य प्ररूपणा करते हैं' इसका खुलासा करते हुये वीरसेनस्वामीने लिखा है कि अब आभिनिबोधिक ज्ञानके पर्यायवाची शब्दोंकी प्ररूपणा करते हैं। इससे ज्ञात होता है कि मति आदिक शब्द मतिज्ञानके पर्यायवाची नाम हैं। यहां जो प्रत्येक शब्दका अलग अलग व्युत्पत्त्यर्थ लेकर मतिसे वर्तमान ज्ञान, स्मृतिसे स्मरण ज्ञान, संज्ञासे प्रत्यभिज्ञान, चिन्तासे तर्कज्ञान और अभिनिबोधसे अनुमान ज्ञान लिया जाता है यह ठीक नहीं। क्योंकि ऐसा माननेपर ये पर्यायवाची नाम नहीं रहते। सर्वार्थसिद्धिमें जो इन शब्दोंका 'मननं मतिः' इत्यादि रूपसे विग्रह किया है उसका प्रयोजन केवल शब्द सिद्धि मात्र है, उससे अलगर अर्थ लेना ठीक नहीं। जैसे इन्द्र, शक्र और पुरन्दर इनका व्युत्पत्त्यर्थ अलगर है तो भी उनसे एक देवराज रूप अर्थका ही बोध होता है। उसी प्रकार प्रकृतिमें भी जानना चाहिये। समभिरूढ़ नय एक शब्दको एक ही अर्थमें स्वीकार करता है, इस दृष्टिसे यदि विचार करके मति आदि शब्दोंका अलगर अर्थ लिया जाता है तो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी कोई आपत्ति नहीं। किन्तु मतिज्ञानकी मर्यादाके अन्दर ही इन शब्दोंका अर्थ घटित करना चाहिये। यहां इतना विशेष जानना कि आगम ग्रन्थोंमें आभिनिबोधिक ज्ञान यह नाम मुख्यतासे आया है और उसके संज्ञा, स्मृति, मति और चिंता ये चार पर्यायवाची नाम आये हैं। वहां इन नामोंका क्रम वह है जो हमने ऊपर दिया है।

५-शङ्का—दर्शनका क्या स्वरूप है ?

५-समाधान—आगममें सामान्य ग्रहणको दर्शन बतलाया है। इसकी व्याख्या करते हुये वीरसेनस्वामीने सामान्य शब्दका अर्थ आत्मा किया है। वे लिखते हैं कि वस्तु सामान्य विशेषात्मक है। इसलिए दर्शनके द्वारा केवल सामान्यका और ज्ञानके द्वारा केवल विशेषका ग्रहण नहीं हो सकता। किन्तु दर्शन और ज्ञान दोनोंके द्वारा सामान्य विशेषात्मक वस्तुका ही ग्रहण होता है। इससे यह निश्चित हुआ कि जब आत्मा किसी पदार्थको ग्रहण करनेके सन्मुख होता है तब सर्व प्रथम जो अन्तर्मुख उपयोग होता है उसे दर्शन कहते हैं और बहिर्मुख पदार्थके उपयोगको ज्ञान कहते हैं।

६-शङ्का—व्यंजन और अर्थमें क्या भेद है ?

६-समाधान—वीरसेनस्वामीने प्रकृति अनुयोगद्वारमें अर्थावग्रह और व्यंजनावग्रहका जो लक्षण लिखा है उससे ज्ञात होता है कि जो पदार्थ इन्द्रियोंसे सम्बद्ध होकर जाना जाता है वह इन्द्रियों द्वारा ग्रहण करनेकी प्रथम अवस्थामें व्यंजन कहलाता है। तथा जो पदार्थ इन्द्रियोंसे सम्बद्ध न होकर जाना जाता है वह, और जो पदार्थ इन्द्रियोंसे सम्बद्ध होकर जाना जाता है वह भी आद्य ग्रहणके पश्चात् अर्थ कहलाता है। सर्वार्थसिद्धिमें चक्षु आदि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन्द्रियोंके विषयको अर्थ और अव्यक्त शब्दादिको व्यंजन कहा है। यहां व्यंजनावग्रह और अर्थावग्रहको दृष्टान्त द्वारा समझाते हुए लिखा है कि जिस प्रकार नया मिट्टीका सकोरा एकबार दो तीन बून्दोंके डालनेसे गीला नहीं होता है किन्तु पुनः पुनः सींचनेसे वह गीला हो जाता है उसी प्रकार श्रोत्र आदि इन्द्रियों द्वारा दो तीन आदि समयोंमें ग्रहण किये शब्दादि विषय व्यक्त नहीं होते हैं किन्तु पुनः पुनः अवग्रह होनेपर वे व्यक्त हो जाते हैं। व्यंजनावग्रह और अर्थावग्रहमें यही अन्तर है। किन्तु वीरसेनस्वामी "अस्पष्ट ग्रहणको व्यंजनावग्रह और स्पष्ट ग्रहणको अर्थावग्रह कहते हैं" इस मतका खण्डन किया है। वे लिखते हैं कि यदि अस्पष्ट ग्रहणको व्यंजनावग्रह माना जाय तो चक्षु इन्द्रियोंके द्वारा अस्पष्ट ग्रहण होनेपर उसे भी व्यंजनावग्रहका प्रसंग प्राप्त होगा। परन्तु चक्षु इन्द्रियोंसे व्यंजनावग्रह होता नहीं ऐसा सूत्र वचन है। अतः प्राप्त अर्थका ग्रहण व्यंजनावग्रह और अप्राप्त अर्थका ग्रहण अर्थावग्रह है यह निष्कर्ष निकलता है। इस परसे यह फलित होता है कि चक्षु और मनसे केवल अप्राप्त अर्थका ही ग्रहण होता है, किन्तु शेष चार इन्द्रियां प्राप्त और अप्राप्त दोनों प्रकारके अर्थका ग्रहण करती हैं।

वीरसेनस्वामी लिखते हैं कि यदि ऐसा न माना जाय तो स्पर्शन आदि इन्द्रियोंका विषय ९ योजन आदि बतलाया है वह नहीं बनता है। क्योंकि ये स्पर्शन आदि इन्द्रियां दूरके पदार्थको नहीं जानतीं, केवल स्पष्ट पदार्थको ही ग्रहण करती है तो इनका विषय स्पष्ट ही लिखना था। परन्तु ऐसा न करके अलग अलग इन्द्रियवाले जीवोंके इनका विषय परिणाम जबकि अलग अलग बतलाया है इससे ज्ञात होता है कि ये स्पर्शनादि इन्द्रियां प्राप्त और अप्राप्त दोनों प्रकारके पदार्थोंको जानती हैं।

७-शंका—चक्षुइन्द्रिय अप्राप्यकारी क्यों है?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७-समाधान—एक तो चक्षुइन्द्रिय स्पृष्ट अंजन आदिको ग्रहण नहीं करती है। दूसरे भिन्न देशमें स्थित दो पदार्थोंका इसके द्वारा एकसाथ ग्रहण होता है। तीसरे चक्षुइन्द्रियके विषयमें क्षेत्रभेद प्रतीत होता है। जब कोई चक्षुइन्द्रियके द्वारा किसी पदार्थको ग्रहण करता है वह उससे कितनी दूर है यह स्पष्ट मालूम होता है इससे ज्ञात होता है कि चक्षु इन्द्रिय अप्राप्यकारी है।

८-शंका—अङ्ग और पूर्वोंका क्या विषय है?

८-समाधान—आगममें अङ्गोंके बारह भेद किये हैं—आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, व्याख्याप्रज्ञप्ति, ज्ञातृधर्मकथा, उपासकाध्ययन, अन्तःकृद्दश, अनुत्तरोपपादिकदश, प्रश्नव्याकरण, विपाकसूत्र और दृष्टिप्रवाद। आचारांगमें मुनियोंके आचारका वर्णन है। सूत्रकृतांगमें ज्ञानविनय, प्रज्ञापना, कल्प्याकल्प्य, छेदोपस्थापना और व्यवहार धर्म क्रियाका व्याख्यान है। स्थानांगमें पदार्थोंके एकादिक भेदोंका वर्णन है। क्रम यह है कि एक स्थानका वर्णन करते समय सबके एकसाथ भेद बतलाये हैं। दो स्थानका वर्णन करते समय सबके दो दो भेद बतलाये हैं इसी प्रकार आगे समझना। समवायांगमें सब पदार्थोंके समवायका कथन है। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी अपेक्षा समवाय चार प्रकारका है। धर्म अधर्म लोकाकाश और एक जीवके प्रदेश समान हैं यह द्रव्य समवाय है, सीमान्तक नरक, मानुषलोक, ऋजुविमान और सिद्धक्षेत्र समान है यह क्षेत्र समवाय है। एक समय दूसरे समयके बराबर है। एक मुहूर्त दूसरे मुहूर्तके बराबर है यह काल समवाय है। केवलज्ञान केवलदर्शनके समान है यह भाव समवाय है। इसी प्रकार सर्वत्र जानना। 'व्याख्याप्रज्ञप्तिमें क्या जीव है इत्यादि प्रश्नोंका समाधान किया है। ज्ञातृधर्मकथामें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तीर्थंकरके धर्मोपदेश, अनेक प्रकारकी कथाओं और उपकथाओंका व्याख्यान किया है। उपासकाध्ययनमें ग्यारह प्रकारके श्रावकोंकी चर्याका वर्णन है। अन्तःकृतदशमें एक एक तीर्थंकरके समयमें दारुण उपसर्गोंको सहकर निर्वाणको प्राप्त हुए दस दस मुनियोंका वर्णन है। अनुत्तरोपपादिक दशमें एक एक तीर्थंकरके समयमें दारुण उपसर्गोंको सहकर अनुत्तर विमानको प्राप्त हुए दस दस मुनियोंका वर्णन है। प्रश्नव्याकरणमें आक्षेपिणी, विक्षेपिणी, संवेगनी और निर्वेदनी इन चार प्रकारकी कथाओंका वर्णन है। विपाकसूत्रमें पुण्यकर्म और पापकर्मोंके फलोंका विवेचन है। दृष्टिप्रवादमें तीनसौ त्रेसठ प्रकारके मतोंका निरूपण करके उनका निग्रह किया गया है। इस अंगके पांच भेद हैं—परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत और चूलिका। परिकर्मके पांच भेद हैं—चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, द्वीपसागरप्रज्ञप्ति और व्याख्याप्रज्ञप्ति। चन्द्रप्रज्ञप्तिमें चन्द्रमाकी आयु, अवगाहना और उसके परिवार आदिका विस्तृत विवेचन है।

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिमें जम्बूद्वीपमें रहनेवाले मनुष्य आदिका तथा कुलाचल, नदी और तालाब आदिका विस्तृत वर्णन है। द्वीपसागरप्रज्ञप्तिमें सब द्वीपों और समुद्रोंका तथा अवान्तर रचना आदिका वर्णन है। व्याख्याप्रज्ञप्तिमें रूपी अरूपी द्रव्योंका और भव्य तथा अभव्यादिका वर्णन है। दृष्टिवादका जो दूसरा भेद सूत्र है उसमें आत्मा अबन्धक है अभेदक है तथा त्रैराशिक, नियतिवाद, विज्ञानवाद, शब्दवाद, प्रधानवाद, द्रव्यवाद और पुरुषवादका वर्णन है। दृष्टिवादके तीसरे भेद प्रथमानुयोगमें शलाका पुरुषों व पुण्य पुरुषोंके चरित्रका वर्णन है। दृष्टिवादके चौथे भेद पूर्वगतके चौदह भेद हैं—उत्पादपूर्व, अग्रायणीय, वीर्यानुवाद, अस्ति नास्तिप्रवाद ज्ञानप्रवाद, सत्यप्रवाद, आत्मप्रवाद, कर्मवाद, प्रत्याख्यान, विद्यानुप्रवाद, कल्याण, प्राणावाय, क्रियाविशाल, और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोकबिन्दुसार। इनमेंसे उत्पाद पूर्वमें सब द्रव्योंके उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य रूप अवस्थाओंका विचार किया है। अग्रायणीय पूर्वमें सब अंगोंके प्रधानभूत विषयका वर्णन है। वीर्यानुवादमें आत्मवीर्य, परवीर्य, उभयवीर्य और क्षेत्रवीर्य आदिका वर्णन है। अस्तिनास्ति प्रवादमें अस्तित्व और नास्तित्वकी प्रमुखतासे जीवादि पदार्थोंका वर्णन है। ज्ञानप्रवादमें पांच ज्ञान और तीन अज्ञानोंका वर्णन है। सत्यप्रवादमें वचनगुप्ति, वचनके संस्कारके कारण उसके प्रयोग और बारह प्रकारकी भाषा आदिका कथन है। आत्मप्रवादमें आत्मा ज्ञाता है, विष्णु है, भोक्ता है इत्यादि रूपसे विस्तारके साथ आत्मतत्त्वका विवेचन किया है। कर्मप्रवादमें आठ प्रकारके कर्मोंका वर्णन है। प्रत्याख्यान पूर्वमें सब प्रकारके प्रत्याख्यानका, उपवासोंकी विधिका और समिति तीन गुप्ति आदिका वर्णन है। विद्यानुप्रवादमें अंगुष्ठसेना आदि सातसौ छोटी विद्याओंका, रोहिणी आदि पांचसौ महाविद्याओंका और अष्टांग महानिमित्तोंका वर्णन है। अन्तरीक्ष, भौम, अंग, स्वर, स्वप्न, लक्षण, व्यंजन और छिन्न ये आठ महानिमित्त हैं, इनको देखकर जो शुभाशुभका ज्ञान होता है वह निमित्त ज्ञान है। कल्याण पूर्वमें सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र और तारागणोंके गमन, उपपाद, गतिफल आदिका तथा शलाका पुरुषोंके गर्भावतरण आदि कल्याणकोंका कथन है। प्राणावाय पूर्वमें अष्टांग आयुर्वेद, भूतिकर्म, जांगुलिप्रकर्म और प्राणापानके विभागका वर्णन है। शलाका कर्म, कायचिकित्सा, भूततन्त्र, शल्ययन्त्र, अंगदतन्त्र, बालरक्षातन्त्र और बीजवर्द्धनतन्त्र ये अष्टांग आयुर्वेद हैं। शरीर आदिकी रक्षाके लिये जो भस्म और सूत्र आदिके द्वारा वेष्टन किया जाता है उसे भूतिकर्म कहते हैं। जांगुलिप्रकर्मका अर्थ विषविद्या है। क्रियाविशालपूर्वमें लेख आदि बहत्तर कलाओंका और स्त्रियोंमें चौसठ गुणों आदिका वर्णन है। लोकबिन्दुसारमें आठ व्यवहार, चार बीज, मोक्षगमन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्रिया और मोक्षसूत्रका वर्णन है। दृष्टिवादके पांचवें भेद चूलिकाके पांच भेद हैं—जलगता, स्थलगता, मायागता, रूपगता और आकाशगता। इनमें अपने अपने नामानुसार विद्याओंका वर्णन है।

९–शंका—विभंगज्ञानके पहले कौनसा दर्शन होता है?

९–समाधान—सत्प्ररूपणाके १३४ वें सूत्रकी टीका करते वीरसेनस्वामीने बतलाया है कि विभंगज्ञानके पहले होनेवाले दर्शनका अवधिदर्शनमें अन्तर्भाव हो जाता है। इससे इतना तो ज्ञात होता है कि विभंगज्ञानके पहले अवधिदर्शन होता है। तब भी आगममें इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है, क्योंकि अवधिदर्शन चौथे गुणस्थानसे बतलाय है और विभंग ज्ञान इसके पहले होता है।

१०–शंका—मनःपर्ययज्ञानका क्या विषय है?

१०–समाधान—मनःपर्ययज्ञानके विषयका निर्णय करते समय मुख्यतः इस बातका विचार करना आवश्यक है कि मनःपर्ययज्ञान केवल मनकी पर्यायोंको ही जानता है या मनके निमित्तसे प्रवृत्त होकर वह सीधे अन्य पदार्थोंको भी जानता है।

मनःपर्ययज्ञानकी व्युत्पत्ति करते हुए वीरसेनस्वामीने प्रकृति अनुयोगद्वारमें लिखा है कि दूसरेके मनोगत अर्थको मन कहते हैं और पर्यय शब्दका अर्थ विशेष है, इससे यह निष्कर्ष निकला कि मनकी अवस्थाएँ मनःपर्यय कहलायीं और उनका ज्ञान मनःपर्यय ज्ञान कहलाया। यदि इस लक्षणपर बारीकीसे ध्यान दिया जाता है तो इससे यही ज्ञात होता है कि मनःपर्यय ज्ञान साक्षात्‌रूपसे मनकी अवस्थाओंको जानता है। किंतु वही प्रकृति अनुयोगद्वारमें जो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मनःपर्ययज्ञानके विषयका ज्ञान करानेके लिये सूत्र आया है उससे ज्ञात होता है कि मनःपर्यय ज्ञान अन्य विषयोंको भी जानता है। सूत्र निम्न प्रकार है:—

"मणेण माणसे पडिविंदइत्ता परेसिं सण्णा सदि मदि चिन्ता जीविद मरणं लाहालाहं सुहदुक्खं णगरविणासं देसविणासं जणपयविणासं खेडविणासं कव्वडविणासं मडंवविणासं पट्टणा-विणासं दोणमुहविणासं अइवुट्ठि अणावुट्ठि सुवुट्ठि दुवुट्ठि सुभिक्खं दुभिक्खं खेमाखेम भयरोग काल संजुत्ते अत्थे वि जाणादि।"

तात्पर्य यह है कि मतिज्ञानसे दूसरेके मनको ग्रहण करके ही यह जीव मनःपर्यय ज्ञानसे दूसरेका नाम स्मृति, मति, चिंता जीवन, मरण, लाभ, अलाभ, सुख, दुःख, नगरविनाश, देश-विनाश, जनपदविनाश, खेटविनाश कर्वटविनाश, मडम्बविनाश, पत्तनविनाश, द्रोणमुखविनाश, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, सुवृष्टि, दुर्वृष्टि, सुभिक्ष, दुर्भिक्ष, क्षेम, अक्षेम, भय, रोगको कालकी मर्यादा लिये हुए जानता है। तात्पर्य यह है कि इन सबके उत्पाद, स्थिति और भंगको मनःपर्ययज्ञानी जानता है।

इस प्रकार यद्यपि इस सूत्रमें संज्ञा, मति आदि अन्य विषयोंका उल्लेख है तो भी इनको मनःपर्ययज्ञानी तभी जानता है जब वे किसीके मनके विषय हों गये हों या होनेवाले हों। इससे ज्ञात होता है कि मनःपर्यय ज्ञानके द्वारा मुख्यतः भूत, भविष्य और वर्तमानरूप मनकी पर्यायें जानी जाती हैं। तत्त्वार्थ-सूत्रमें मनःपर्ययज्ञानका विषय जो अवधिज्ञानके विषयका अनन्तवां भाग बतलाया है उससे भी उक्त निष्कर्ष निकलता है।

११—शंका—मनके आलंबनसे मनःपर्यय ज्ञान होता है इसका क्या अभिप्राय है?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

११-समाधान—मनःपर्ययज्ञान मनोयोग अर्थको ही जानता है इतना ही मनका आलम्बन यहांपर विवक्षित है। जैसे 'आकाशमें चन्द्रमाको देखो' इस उदाहरणमें आकाश चन्द्रमाका आलम्बन मात्र है। यह कुछ चन्द्रमाकी उत्पत्तिमें सहायक नहीं। इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञान कुछ मनके निमित्तसे उत्पन्न नहीं होता किन्तु मनोगत विषय ही मनःपर्ययज्ञानका विषय है। मनःपर्ययज्ञानमें इतना ही मनका अवलंबन वक्षित है।

१२-शंका—ऋजुमति और विपुलमतिमें क्या अन्तर है?

१२-समाधान—ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान उन्हींके द्वारा विचारे गये पदार्थको जानता है जिनका मन संशय विपर्यय और अनध्यवसायसे रहित है, या ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान तीनों कालके विषयको जानता हुआ भी अतीत और अनागत मनके विषयको नहीं जानता किन्तु जो जीव विद्यमान है और वर्तमान कालमें विचार कर रहे हैं उन्हींके मनमें सम्बन्ध रखनेवाले तीनों कालके विषयको जानता है। परन्तु विपुलमति मनःपर्ययज्ञानकी यह बात नहीं है। वह तो उन सभी विषयोंको जानता है जिनका चिन्तवन किया जाचुका है, चिन्तवन किया जारहा है या चिन्तवन किया जायगा। तथा ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान प्रतिपाती भी है। वह, जो जीव उपश्रेणी पर चढ़ता है उसके भी होता है। किन्तु विपुलमति मनःपर्ययज्ञान इस प्रकारका नहीं है। इस प्रकार इन दोनोंमें बड़ा अन्तर है।

१३-शंका—केवलज्ञान क्या विषय है।

१३-समाधान—प्रकृति अनुयोगद्वारमें बतलाया है कि केवली जिन, देवलोक, असुरलोक और मनुष्यलोककी गति और आगति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मरण, उपपाद, बन्ध, मोक्ष, ऋद्धि, स्थिति, युति, अनुमार्ग, तर्क, कल, मन, मानसिक, भुक्त, कृत प्रतिसेवित आदिकर्म, अर्हकर्म, सब लोक सब जीव और सब भाव इन सबको जानते और देखते हुए विहार करते हैं। इससे ज्ञात होता है कि केवलज्ञानका विषय सब द्रव्य और उनकी सब अर्थ और व्यंजन पर्यायें हैं।

आत्माका स्वभाव जानना और देखना है। चूंकि संसारी आत्मा आवरणकी हीनाधिकताके कारण सबको नहीं जान देख पाता है। पर जिस आत्माके ये आवरण नष्ट हो गये वह या तो सबको जाने और सबको देखे या किसीको न जाने और किसीको न देखे। दूसरे विकल्पके माननेपर जानना और देखना आत्माका स्वभाव नहीं ठहरता। अतः यही सिद्ध होता है कि सब द्रव्यकी और उनकी त्रिकालवर्ती सब अर्थपर्याय और व्यंजन पर्याय केवलज्ञानका विषय है।

१४-शङ्का—सात नयोंका स्वरूप क्या है और उनमें परस्पर क्या तारतम्य है?

१४-समाधान—जो संग्रह और असंग्रहरूप दोनों प्रकारके विषयोंको ग्रहण करता है उसे नैगमनय कहते हैं। या अर्थके अनिष्पन्न रहते हुए संकल्प मात्रको ग्रहण करनेवाला नैगमनय है। जो गुणादिककी अपेक्षा भेद न करके सबको एकरूपसे ग्रहण करता है वह संग्रहनय है। जो संग्रहनयके द्वारा ग्रहण किये गये पदार्थोंमें विधिपूर्वक भेद करता है वह व्यवहार नय है। ये तीनों द्रव्यार्थिक नय हैं। क्योंकि इनका विषय द्रव्य है। इनमें काल भेद नहीं पाया जाता। तो भी ये उत्तरोत्तर सूक्ष्म हैं, क्योंकि संग्रहनय केवल संग्रहरूप पदार्थको विषय करता है परन्तु नैगमनय संग्रह और असंग्रहरूप दोनों प्रकारके पदार्थोंको विषय करता है इसलिए नैगमनयके विषयसे संग्रहनयका विषय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सूक्ष्म है और नैगमनयका विषय स्थूल। इसी प्रकार व्यवहार-नय संग्रहनयके विषयमें विधिपूर्वक भेद करके प्रवर्तता है इसलिए संग्रहनयके विषयसे व्यवहारनयका विषय सूक्ष्म है और संग्रहनयका विषय स्थूल।

जो वर्तमान पर्याय मात्रको विषय करता है उसे ऋजुसूत्र नय कहते हैं। लिंगादिकका व्यभिचार हटाकर जो शब्दद्वारा वर्तमान पर्यायको ग्रहण करता है उसे शब्दनय कहते हैं। जो शब्द जिस अर्थमें रूढ़ हो उसी शब्द द्वारा जो वर्तमान पर्यायका ग्रहण करता है वह समभिरूढ़ नय है। तथा जिस शब्दका जो व्युत्पत्ति अर्थ हो तत्क्रियापरिणत अर्थको जो उस शब्दका द्वारा ग्रहण करता है उसे एवंभूत नय कहते हैं। ये चारों पर्यायार्थिक नय हैं इसलिये द्रव्यार्थिक नयोंसे इनका विषय सूक्ष्म है ही। फिर भी परस्पर इनका उत्तरोत्तर सूक्ष्म विषय है। ऋजुसूत्र नय लिंगादिकका भेद नहीं करता। वह शब्द व्यवहारको महत्व ही नहीं देता इसलिये इसके विषयसे शब्दनयका विषय सूक्ष्म है और इसका विषय स्थूल। समभिरूढ़ नय लिंगादिकका भेद हो जानेपर भी एक अर्थमें एक शब्दको ही स्वीकार करता है किन्तु शब्दनयमें यह बात नहीं पाई जाती इसलिये शब्दनयके विषयसे समभिरूढ़ नयका विषय सूक्ष्म है और शब्दनयका विषय स्थूल। एवंभूत नय रौढ़िक अर्थको स्वीकार न करके तत्क्रियापरिणत समयमें व्युत्पत्तिरूप अर्थको ही स्वीकार करता है इसलिये समभिरूढ़ नयके विषयसे एवंभूत नयका विषय सूक्ष्म है और समभिरूढ़ नयका विषय स्थूल। इनमेंसे प्रारम्भके चार नय अर्थ नय हैं, क्योंकि शब्दकी अपेक्षा इनके विषयका विचार नहीं किया जाता और अन्तके तीन नय शब्दनय हैं क्योंकि इनके विषयका शब्दकी अपेक्षा विचार किया है। इस प्रकार सात नयोंका स्वरूप और उनमें परस्पर तारतम्य जानना चाहिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दूसरा अध्याय—

१५-शंका—एकसाथ एक जीवके कमसे कम और अधिकसे अधिक कितने भाव हो सकते हैं?

१५-समाधान—भाव पांच हैं-औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक औदयिक और पारणामिक। मिथ्यादृष्टि जीवके तीन भाव हैं—क्षायोपशमिक औदयिक और पारणामिक। यहां मतिज्ञान आदि क्षायोपशमिक भाव हैं। क्रोधादि औदयिक भाव हैं और जीवत्व आदि पारिणामिक भाव हैं। तथा जो क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव उपशम श्रेणीपर चढ़कर उपशान्त मोही हो जाते हैं उनके पांचों भाव होते हैं। यहां कषायका उपशम हो जानेसे उपशान्त कषाय यह औपशमिक भाव है। दर्शन मोहनीयका क्षय होनेसे क्षायिक सम्यग्दर्शन यह क्षायिक भाव है। शेष तीन भाव पूर्ववत् हैं, किन्तु इतनी विशेषता है कि गुणस्थान प्रतिबद्ध जीवोंके अभव्यत्व भाव नहीं होता। इसप्रकार संसार अवस्थामें एक जीवके एकसाथ कमसे कम तीन और अधिकसे अधिक पांच भाव होते हैं किन्तु मुक्तात्माके क्षायिक और पारिणामिक ये दो ही भाव पाये जाते हैं। इसलिये यदि संसार मोक्ष अवस्थाका भेद न करके विचार किया जाता हो तो एकसाथ एक जीवके कमसे कम दो और अधिकसे अधिक पांच भाव भी बन जाते हैं। यहां पर प्रत्येक भावके अवान्तर भावोंकी विवक्षा नहीं की है।

१६-शंका—क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शनकी उत्कृष्ट स्थिति कितनी और वह किस प्रकार घटित होती है?

१६-समाधान—क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शनकी उत्कृष्ट स्थिति छयासठ सागर बतलायी है, किन्तु पूरा छयासठ सागर उसी वेदक सम्यग्दृष्टिके प्राप्त होता है जो वेदक सम्यक्त्वके अन्तमें क्षायिक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यग्दर्शन हो जाता है। यदि ऐसा जीव मिथ्यात्वमें जाता है तो उसके क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शनका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कम छ्यासठ सागर ही प्राप्त होता है। मानलो कोई एक उपशम सम्यग्दृष्टि मनुष्य वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त होकर मनुष्य पर्याय सम्बन्धी शेष भुज्यमान आयुसे रहित बीस सागरकी आयुवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ।

वहांसे पुनः मनुष्य होकर तदनन्तर मनुष्य आयुसे न्यून बाईस सागरकी आयुवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ। वहांसे पुनः मनुष्य होकर तदनन्तर भुज्यमान मनुष्यायुसे तथा देव पर्यायके अनन्तर प्राप्त होनेवाली मनुष्यायुमेंसे क्षायिक सम्यग्दर्शनके प्राप्त होने तकके कालसे पुनः चौबीस सागर आयुवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ। तदनन्तर मनुष्य हुआ और इसके जब वेदक सम्यक्त्वके कालमें अन्तर्मुहूर्त शेष रह जाय, तब दर्शनमोहनीयके क्षपणका प्रारंभ करके यह जीव कृतकृत्य वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त करता है। इस प्रकार कृतकृत्य वेदक सम्यक्त्वके अन्तिम समय तक पूरे छ्यासठ सागर होजाते हैं। वेदक सम्यक्त्वकी छ्यासठ सागर स्थितिको प्राप्त करनेका यह एक प्रकार है इसी तरह अन्य प्रकारसे भी छ्यासठ सागर स्थिति प्राप्त की जा सकती है।

मूल बात इतनी है कि ऐसे जीवको मनुष्यसे देव और देवसे मनुष्य पर्यायमें उत्पन्न करते जाना चाहिए। किन्तु छ्यासठ सागरको मनुष्य पर्यायमें पूरा करावे, क्योंकि दर्शन-मोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भ कर्मभूमिया मनुष्यके ही होता है।

१७ शंका—पांच परिवर्तनका क्या स्वरूप है?

१७—समाधान—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भावकी अपेक्षा परिवर्तन हैं। इनमेंसे पहले द्रव्य परिवर्तनमें कर्म और नोकर्मके ग्रहणकी मुख्यता है। इस अपेक्षासे इसके दो भेद हो जाते हैं—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक ऐसा जीव है जिसने विवक्षित रूप, रस, गन्ध और स्पर्श-वाली नोकर्म वर्गणाओंका विवक्षित योगसे ग्रहण किया। अनन्तर द्वितीयादि समयोंमें वे निर्जीर्ण हो गईं। तदनन्तर वह जीव संसारमें परिभ्रमण करता रहा। और ऐसा करते हुए उसके जब उन्हीं नोकर्म वर्गणाओंका पूर्वोक्त अवस्थाके रहते हुए ग्रहण होता है तब जाकर एक नोकर्म द्रव्य परिवर्तन होता है। इसी प्रकार कर्मद्रव्य परिवर्तनका स्वरूप जान लेना चाहिए। किन्तु इसमें इतनी विशेषता है कि कर्मवर्गणाओंकी निर्जरा उनको ग्रहण करनेके अनन्तर द्वितीयादि समयसे न होकर एक समय अधिक एक आवलिकालके पश्चात् प्रारम्भ होती है। ये दोनों मिलकर एक द्रव्य परिवर्तन है। इसको विशेष विधि अन्यत्रसे जान लेना चाहिये।

एक सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव है जो लोकाकाशके आठ मध्यप्रदेशोंको अपने शरीरके मध्यमें करके उत्पन्न हुआ और क्षुद्रभव तक जीवित रहकर मर गया। पुनः उसी अवगाहनासे वहां दूसरीबार उत्पन्न हुआ और क्षुद्र भव तक जीवित रहकर मर गया। इसप्रकार अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण आकाशमें जितने प्रदेश सामने हैं उतनी बार वहीं वहीं उत्पन्न होकर मरा। तदनन्तर एक एक प्रदेश सरक कर वह उत्पन्न हुआ, और इस प्रकार लोकाकाशके सब प्रदेशोंको अपनी उत्पत्तिसे समाप्त किया। इस प्रकार यह सब मिलकर एक क्षेत्रपरिवर्तन कहलाता है।

एक जीव प्रथम उत्सर्पिणीके प्रथम समयमें उत्पन्न हुआ और आयुके समाप्त होनेपर मर गया। पुनः दूसरी उत्सर्पिणीके दूसरे समयमें उत्पन्न हुआ और आयुके समाप्त होनेपर मर गया। पुनः तीसरी उत्सर्पिणीके तीसरे समयमें उत्पन्न हुआ और आयुके समाप्त होने पर मर गया। इस प्रकार एक एक समय बढ़ाते हुए वह उत्सर्पिणीके सब समयोंमें उत्पन्न हुआ। तथा इसी प्रकार अव-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर्पिणीके सब समयोंमें भी उत्पन्न कराना चाहिये। जो उत्पत्तिका क्रम बतलाया है वही क्रम मरणका भी समझना चाहिये। अर्थात् एक जीव प्रथम उत्सर्पिणीके प्रथम समयमें मरा, दूसरी उत्सर्पिणीके दूसरे समयमें मरा आदि। इस प्रकार यह सब मिलकर एक काल परिवर्तन कहलाता है।

नरककी जघन्य आयु दश हजार वर्षकी है। इस आयुके साथ एक जीव नरकमें उत्पन्न हुआ। पुनः इसी आयुके साथ दूसरी बार नरकमें उत्पन्न हुआ। इस प्रकार दस हजार वर्षके जितने समय हो उतनी बार पूर्वोक्त आयुके साथ ही नरकमें उत्पन्न होता रहा। तदनन्तर एक समय अधिक दस हजार वर्षकी आयुके साथ नरकमें उत्पन्न हुआ।

इस प्रकार एक एक समय बढ़ाते हुए नरककी तेतीस सागर आयु समाप्त करना चाहिए। तिर्यंचगतिकी जघन्यआयु अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट आयु तीन पल्य है। देवगतिकी जघन्य आयु दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट आयु तेतीस सागर है। किन्तु यहां इकतीस सागर तककी आयुका ग्रहण करना चाहिये।

क्योंकि देवपर्यायकी इकतीस सागरसे अधिक आयुवाले जीव सम्यग्दृष्टि ही होते हैं, जो पांच परावर्तनसे रहित हैं। इन तिर्यंच आदि गतिमें वही क्रम जानना चाहिये जो नरकगतिमें बतलाया है। किन्तु सर्वत्र अपनार जघन्य और उत्कृष्ट आयुका विचार करके कथन करना चाहिये। इस प्रकार यह सब मिलकर एक भवपरिवर्तन कहलाता है।

एकसंज्ञी पंचेंद्रिय मिथ्यादृष्टि जीवने ज्ञानावरणकी सबसे जघन्य अन्तः कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण स्थितिका बन्ध किया। उसके उस स्थितिके योग्य सबसे जघन्य कषाय अध्यवसाय स्थान, सबसे जघन्य अनुभाग अध्यवसाय स्थान और सबसे जघन्य योगस्थान हैं। अब उसके स्थिति, कषाय, अध्यवसायस्थान और अनुभाग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अध्यवसायस्थान तो वही रहे, किन्तु योगस्थान दूसरा हुआ। इस प्रकार जगत्श्रेणीके असंख्यातवें भागप्रमाण योगस्थानोंके होनेतक पूर्वोक्त तीनों चीजें वही रहीं। अनन्तर उसके स्थिति और कषाय अध्यवसाय स्थान तो वही रहे किन्तु अनुभाग अध्यवसाय स्थान दूसरा हुआ। यहां जगत्श्रेणीके असंख्यातवें भाग प्रमाण योगस्थान हो लेते हैं। इस प्रकार असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागस्थानोंके होनेतक स्थित और कषाय अध्यवसाय स्थान वही रहते हैं किन्तु प्रत्येक अनुभागस्थान प्रति योगस्थान जगत्श्रेणीके असंख्यातवें भागप्रमाण हो लेते हैं। अनन्तर स्थिति तो वही रही किन्तु कषाय अध्यवसाय स्थान दूसरा हुआ। इस दूसरे कषाय अध्यवसाय स्थानके प्रति भी असंख्यात लोकप्रमाण अनुभाग अध्यवसाय स्थान होते हैं, और प्रत्येक अनुभाग अध्यवसायस्थानके प्रति जगत्श्रेणीके असंख्यातवें भाग प्रमाण योगस्थान होते हैं। इस क्रमसे स्थिति तो वही रहती है किंतु कषाय अध्यवसायस्थान असंख्यात लोकप्रमाण होते हैं। इस प्रकार जब इन तीनोंका घेरा पूरा हो लेता है तब पूर्वोक्त स्थितिसे एक समय अधिक स्थितिका बन्ध होता है। अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थितिके प्रति जो कषाय अध्यवसायस्थान, अनुभाग अध्यवसायस्थान और योगस्थानके क्रमका कथन किया है वही क्रम समयाधिक अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थितिके प्रति भी जानना चाहिये। आगे भी क्रमसे ज्ञानावरण कर्मकी तीस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थिति समाप्त करना चाहिये। तथा ज्ञानावरण कर्मकी स्थितिका जो परिवर्तन क्रम बतलाया है उसी प्रकार सब मूल प्रकृति और उत्तर प्रकृतियोंका जानना चाहिये। इस प्रकार यह सब मिलकर एक भाव परिवर्तन होता है।

इस प्रकार ये पांच परिवर्तन हैं। इनमें उत्तरोत्तर अधिक काल लगता है। इन परिवर्तनोंका कथन करते समय हमारी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दृष्टि संक्षेपसे इनके स्वरूपके बतलानेकी रही। इनका विशेष खुलासा जो जानना चाहें वे अन्यत्रसे जान सकते हैं।

१८-शंका—चक्षु आदि इन्द्रियावरण कर्मका क्षयोपशम सर्वाङ्ग होता है या नियत स्थानमें?

१८-समाधान—चक्षु आदि इंद्रियावरण कर्मका क्षयोपशम सर्वांग होता है। नियत स्थानमें तो उनकी निवृत्ति होती है। बात यह है कि एक तो क्षयोपशम नियत स्थानमें बन नहीं सकता। दूसरे आत्माके आठ मध्य प्रदेशोंको छोड़कर शेष सब प्रदेश चलायमान रहते हैं। अब जिन प्रदेशोंमें चक्षु आदि इन्द्रियावरण कर्मका क्षयोपशम है उनके नियत स्थानसे हट जाने पर और उनके स्थानमें अन्य प्रदेशोंके आ जानेपर उनसे रूपादिकका ग्रहण नहीं हो सकता। परन्तु ऐसी बात होती नहीं अतः सिद्ध हुआ कि चक्षु आदि इन्द्रियावरणका क्षयोपशम सर्वांग ही होता है।

१९-शंका—जन्म और योनिमें क्या अन्तर है?

१९-समाधान—योनि आधार है और जन्म आधेय। योनि उसे कहते हैं जिसमें जीव उत्पन्न होता है और जन्म नूतन पर्यायके ग्रहणका नाम है। इस प्रकार इन दोनोंमें बड़ा अन्तर है।

२०-शंका—शरीरके कितने भेद हैं?

२०-समाधान—शरीरके पाँच भेद हैं—औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मण। किन्तु संयोगसे ये पन्द्रह प्रकारके हो जाते हैं। यथा-औदारिक औदारिक, औदारिक तैजस, औदारिक कार्मण, औदारिक तैजसकार्मण, वैक्रियिकवैक्रियिक,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वैक्रियिकतैजस, वैक्रियककार्मण, वैक्रियकतैजसकार्मण, आहारक-आहारक, आहारकतैजस, आहारककार्मण, आहारकतैजसकार्मण, तैजसतैजस, तैजसकार्मण और कार्मणकार्मण। औदारिक शरीरके स्कन्धोंका अन्य औदारिक शरीरके स्कन्धोंसे सम्बन्ध होनेपर औदारिक कहलाता है। इसी प्रकार तैजस, कार्मण या इन दोनोंके सम्बन्धके होनेपर कथन करना चाहिये। अन्य संयोगी भंगोंमें भी इसी प्रकार कथन करना चाहिये।

यद्यपि औदारिक शरीरके रहते हुए वैक्रियिक शरीर नहीं होता है यह ठीक है, तो भी औदारिक शरीरके सद्भावमें आहारक शरीर तो होता है अतः औदारिक आहारक या आहारक औदारिक इस प्रकार संयोगी भंग कहना चाहिये था, पर नहीं कहा, सो इसका कारण यह है कि आहारक शरीरके होनेपर औदारिक शरीरका उदय नहीं होता अतः औदारिक और आहारकका बन्ध नहीं प्राप्त होता।

यहां इतना विशेष जानना कि यद्यपि औदारिक वैक्रियिक या आहारक शरीरके रहते हुए तैजस और कार्मण शरीर नियमसे होते हैं तो भी इनके द्विसंयोगी और त्रिसंयोगी भङ्गोंके दिखलानेके लिये पृथक् पृथक् कथन किया।

२१-शङ्का—अनपवर्त्य आयुका खास अभिप्राय क्या है?

२१-समाधान—अनपवर्त्यमे अन् और अपवर्त्य ये दो शब्द हैं इसलिये यह अर्थ हुआ कि जिसकी आयु घटने योग्य नहीं है वे अनपवर्त्य आयुवाले कहलाते हैं। ऐसा नियम है कि प्रत्येक कर्मकी स्थिति और अनुभागमें उत्कर्षण और अपकर्षण होता रहता है। किंतु उत्कर्षण बन्धके समय ही होता है और अपकर्षण कभी भी हो सकता है। बन्धके समय भी हो सकता है और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसके बिना भी हो सकता है। यहां आयु कर्मका प्रकरण है। पूर्वोक्त नियमके अनुसार चारों गतियोंकी भुज्यमान आयुमें अपकर्षण सम्भव है इस 'औपपादिक चरमोत्तम' इत्यादि सूत्रके द्वारा यह नियम किया गया है कि उपपाद जन्मवाले, चरम-शरीरी और भोगभूमियां इन तीन जीवोंकी आयु नहीं घटती। भवके प्रथम समयमें इन्हें जितनी आयु प्राप्त होती है उतने कालतक इन जीवोंको उस पर्यायमें रहना ही पड़ता है।

तीसरा अध्याय—

२२-शंका—नरकोंमें पटलोंके क्रमसे किस प्रकार आयु बढ़ती है?

२२-समाधान—प्रथम नरकमें तेरह, दूसरेमें ग्यारह, तीसरेमें नौ, चौथेमें सात, पांचवेंमें पांच, छठेमें तीन और सातवें नरकमें एक पटल है। इनमेंसे पहले नरकके प्रथम पटलमें जघन्य आयु दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट आयु नब्वे हजार वर्ष है। दूसरे पटलमें जघन्य आयु नब्वे हजार वर्ष और उत्कृष्ट आयु नब्वे लाख वर्ष है। तीसरे पटलमें जघन्य आयु एक पूर्व कोटि है। चौथे पटलमें जघन्य आयु असंख्यात पूर्वकोटि और उत्कृष्ट आयु एक सागरका दसवां भाग है। अगले पटलोंमें पूर्व पूर्व पटलकी उत्कृष्ट आयु उस पटलकी जघन्य आयु है और उत्कृष्ट आयुमें प्रत्येक पटलमें एक सागरके दसवें भागकी वृद्धि होती गई है। इस आयुके लानेके लिये यह नियम है कि आखिरी पटलकी उत्कृष्ट आयुमेंसे चौथा पटलकी उत्कृष्ट आयुको घटा दो और जो शेष रहे उसमें नौका भाग दे दो। अनन्तर जिस पटलकी उत्कृष्ट आयु लाना हो उसकी संख्यासे गुणा कर दो तो उस पटलकी उत्कृष्ट आयु आ जाती है। यहां नौका इसलिये भाग दिलाया कि प्रारम्भके चार पटलोंकी आयु अलगसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रही है इसलिये पांचवेंसे लेकर तेरहवेंतक नौ ही पटल होते हैं। इसी प्रकार अगले नरकोंके प्रत्येक पटलमें जघन्य और उत्कृष्ट आयु ले आना चाहिये। उदाहरणार्थं दूसरे नरकमें ग्यारह पटल हैं।

अब प्रथम नरककी उत्कृष्ट आयु एक सागरको दूसरे नरककी उत्कृष्ट आयु तीन सागरमेंसे घटा दो, शेष बचे दो सागर भो इसमें ग्यारहका भाग दे दो। अनन्तर जिस पटलकी आयु लाना हो उससे इस लब्धको गुणा कर दो और उसे प्रथम नरककी उत्कृष्ट आयुमें जोड़ दो तो इस प्रकार उस पटलकी उत्कृष्ट आयु आ जायगी। मान लो हमें दूसरे नरकके तीसरे पटलकी उत्कृष्ट आयु जानना है तो हम पूर्वोक्त विधिके अनुसार यह क्रिया करेंगे—

३–१–२ सागर १÷११=$\frac{२}{११}$ सागर, $\frac{३}{११}$×३=$\frac{६}{११}$ सागर, १+$\frac{६}{११}$=१$\frac{६}{११}$ सागर। सब यहा तीसरे पटलकी उत्कृष्ट आयु होगी।

इसी क्रमसे सातों नरकोंके सब पटलोंकी उत्कृष्ट आयु ले आना चाहिये, तथा अपनेसे पूर्ववर्ती पटलकी जो उत्कृष्ट आयु है वही उससे अगले पटलकी जघन्य आयु जानना॥

२३-शंका—विदेह क्षेत्रका विस्तार ३३६८४$\frac{४}{१९}$ योजन है और मध्यम लम्बाई एक लाख योजन है। इसके ठीक मध्यमें सुमेरु पर्वत है। सुमेरुके पाससे दो गजदंत पर्वत गोलाकार निषेधसे मिले हैं। इसीप्रकार उत्तरकी ओरके गजदंत पर्वत नीलसे मिले हैं। इससे विदेह क्षेत्र चार भागोंमें बट जाता है। दक्षिणकी ओर गजदंतके मध्य क्षेत्रको देवकुरु और उत्तरकी ओर गज-दंतोंके मध्यके क्षेत्रको उत्तरकुरु कहते हैं। तथा पूर्व दिशाका सब क्षेत्र पूर्व विदेह और पश्चिम दिशाका सब क्षेत्र पश्चिम विदेह कहलाता है। पहले और तीसरे और चौथे भागके दो दो भाग और हो जाते हैं। इस प्रकार तीसरे और चौथे भागके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुल चार भाग हुए। इन चार भागोंमेंसे भी प्रत्येक भागके नदियों और पर्वतोंके कारण आठ आठ भाग हो जाते हैं। ये कुल बत्तीस हुए। यही बत्तीस विदेह हैं। इनमें भरत और ऐरावत क्षेत्रके समान आर्य और म्लेच्छ खण्ड स्थित हैं। विभूतिवाले व तीर्थंकर आर्य खण्डोंमें उत्पन्न होते हैं। जम्बूद्वीपमें कुल चौंतीस ढाईद्वीपमें एकसौ सत्तर आर्यखण्ड हुए। तीर्थंकरोंकी उत्कृष्ट संख्या १७० बतलाई है वह इसी अपेक्षासे बतलाई है। विदेहोंमें जो सीमंधर आदि बीस तीर्थंकर कहे गये हैं वे ढाईद्वीपके बीस महाविदेहोंकी अपेक्षासे कहे गये जानना चाहिये। क्योंकि पूर्वोक्त विभागानुसार जम्बूद्वीपके चार महाविदेह हुए। अतः ढाईद्वीपके बीस महाविदेह होते हैं। विशेष विधि त्रिलोकप्रज्ञप्ति आदि ग्रन्थोंसे जान लेना चाहिये।

२४-शंका—तीन लोकमें अकृत्रिम चैत्यालय कहां कहां हैं?

२४-समाधान—चित्रा पृथिवीके नीचे भवनवासियोंके भवनोंमें सात करोड़ बहत्तर लाख अकृत्रिम चैत्यालय हैं। मध्यलोकमें तेरहवें द्वीप तक चारसौ अठावन अकृत्रिम चैत्यालय हैं। व्यन्तर देवोंके भवनोंमें और ज्योतिषी देवोंके विमानोंमें असंख्यात चैत्यालय हैं। और ऊर्ध्वलोकके चौरासी लाख सत्तानवें हजार तेईस अकृत्रिम चैत्यालय हैं। मध्यलोकके चैत्यालय मेरु, कुलाचल, विजयार्ध, शाल्मलीवृक्ष, जम्बूवृक्ष, वक्षारगिरि, चैत्यवृक्ष, रतिकर, दधिमुख, अञ्जनगिरि, रुचकगिरि, कुण्डलगिरि, मानुषोत्तर और इष्वाकार पर्वतों पर स्थित हैं।

२५-शंका—आर्य म्लेच्छोंका विशद वर्णन क्या है?

२५-समाधान—जो स्वयं गुणवाले हैं और गुणवालोंकी संगति करते हैं वे आर्य कहलाते हैं, और शेष म्लेच्छ। आर्योंके मुख्यतः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दो भेद हैं—ऋद्धि प्राप्त और ऋद्धि रहित। आगममें जो बुद्धि आदि ऋद्धियां बतलाई हैं, तप आदिकसे वे जिनके उत्पन्न हो जाती हैं वे ऋद्धिप्राप्त आर्य हैं। तथा ऋद्धिरहित आर्य पांच प्रकारके बतलाये हैं।

क्षेत्रार्य, जात्यार्य, कर्मार्य, चारित्रार्य, और दर्शनार्य। काशी आदि देशोंमें पैदा हुए क्षेत्रार्य हैं। इक्ष्वाकु आदि जातियोंमें पैदा हुए जात्यार्य हैं। असि आदि षट्कर्मोंसे आजीविका करनेवाले कर्मार्य हैं। ये तीन प्रकारके होते हैं—अविरति, श्रावक और मुनि, इनमें मुनि असि आदि कर्म नहीं करते। इसी प्रकार चारित्रार्य और दर्शनार्योंका स्वरूप समझना चाहिये। जो हीन हैं, जिसमें कर्मादि षट्कर्म व्यवस्था नहीं पाई जाती वे म्लेच्छ कहलाते हैं। ये दो प्रकारके हैं—अन्तर्द्वीपज और कर्मभूमिज। लवण समुद्र और कालोदधि समुद्रके अन्तर्द्वीपोंमें जो निवास करते हैं ऐसे कुभोगभूमियां मनुष्य अन्तर्द्वीपज म्लेच्छ कहलाते हैं। तथा कर्मभूमिमें पैदा हुए शक, यवनादिक कर्मभूमिज म्लेच्छ कहलाते हैं। लोकानुयोगके ग्रन्थोंमें म्लेच्छ खण्डोंमें निवास करनेवाले मनुष्योंको भी म्लेच्छ बतलाया है। इसप्रकार म्लेच्छ मनुष्य तीन प्रकारके हो जाते हैं।

चौथा अध्याय—

२६-शंका—अन्यत्र जो बारह स्वर्गोंकी मान्यता है उसका प्रकृत मान्यतासे कैसे मेल बैठता है?

२६-समाधान—इन्द्र आदि दस प्रकारके देवोंकी कल्पना होनेसे स्वर्गोंको कल्प कहते हैं। अब जब इन्द्र आदि दस प्रकारके देवोंकी कल्पना है जिनमें वे कल्प कहलाते हैं यह अर्थ मुख्य रूपसे विवक्षित हो जाता है तो कल्प सोलह प्राप्त होते हैं। किन्तु इन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सोलह कल्पोंके इन्द्र बारह ही हैं। इसलिये जब इनकी मुख्यतासे विवक्षा हो जाती है तब कल्प बारह प्राप्त होते हैं।

त्रिलोकसारकी गाथा ४५२ और ४५३ में जो सोलह और ४५४ में बारह कल्प बतलाये हैं वहां भी यही विवक्षा मुख्य रखी है। इस प्रकार सोलह स्वर्गोंकी मान्यताके साथ बारह स्वर्गोंकी मान्यताका सहज मेल बैठ जाता है। यह विवक्षाभेद है, मान्यताभेद नहीं।

पांचवां अध्याय—

२७-शंका—छह द्रव्योंका अस्तित्व किसप्रकार सिद्ध होता है?

२७-समाधान—आत्माका अस्तित्व अनुभवगम्य है। भौतिक या जड़ पदार्थोंसे आत्मा भिन्न है यह अनुभवसे जाना जाता है। चेतन और अचेतनका विभाग आत्माके अस्तित्व पर ही निर्भर है। ज्ञान और दर्शन आदिका अन्वय आत्माको छोड़कर अन्यत्र नहीं प्रतीत होता, इससे मालूम पड़ता है कि आत्मा है। रूप, रस, आदि गुणवाला पुद्गल तो स्पष्ट ही है। अब रहे धर्मादिक चार द्रव्य सो इनका अस्तित्व इनके कार्योंसे जाना जाता है। धर्मद्रव्यका कार्य गमन करनेवाले जीव और पुद्गलोंके गमनमें सहायता करना है। अधर्म द्रव्यका कार्य ठहरनेवाले जीव और पुद्गलोंके ठहरनेमें सहायता करना है। आकाश द्रव्यका कार्य सबको अवकाश देना है और काल द्रव्यका कार्य सबके परिणमनमें सहायता करना है। कारण दो प्रकारके होते हैं—साधारण कारण और असाधारण कारण। जो सबके लिए समान कारण हो उसे साधारण कारण कहते हैं। और प्रत्येक कार्यके अलग अलग कारणको असाधारण कारण कहते हैं। ये धर्मादिक द्रव्य गति आदि कार्यके साधारण कारण हैं इसलिये इनका अस्तित्व सिद्ध होता है। इस प्रकार द्रव्य छह हैं यह सिद्ध होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२८-शंका—मूर्ति और आकारमें क्या भेद है?

२८-समाधान—रूप रसादिकको मूर्ति कहते हैं और वस्तुके स्वरूपको आकार कहते हैं। पुद्गल द्रव्य मूर्त भी है और साकार भी। अन्य द्रव्य साकार तो हैं किन्तु मूर्त नहीं। आकारका अर्थ संस्थान भी है किन्तु यह अर्थ यहां विवक्षित नहीं।

२९-शंका—वर्तना और परिणामोंमें क्या अन्तर है?

२९-समाधान—बदल करानेको वर्तन कहते हैं। जैसे धर्मादिक द्रव्य पूर्व पर्यायका त्याग करके नवीन पर्यायकी उत्पत्तिके प्रति यद्यपि स्वयं व्यापार करते हैं परन्तु उनका यह व्यापार बाह्य निमित्तके बिना नहीं बनता अतः उनमें बदल कराना कालका कार्य है। इस प्रकार यहां वर्तनाका स्वरूप बदल कराना प्राप्त होता है, जो कालका मुख्य धर्म है और परिणाम द्रव्यकी उस अवस्थाको कहते हैं जो एक अवस्थाका त्याग करके दूसरी अवस्था रूप हो जाती है और हलचल क्रियासे रहित है। तात्पर्य यह है कि वर्तना कारण है और परिणाम कार्य। वर्तना कालद्रव्यका स्वभाव है और परिणाम प्रत्येक द्रव्यकी प्रति समय होनेवाली पर्याय। इस प्रकार इन दोनोंमें अन्तर है।

३०-शंका—परमाणुका क्या स्वरूप है?

३०-समाधान—जिसका आदि, अन्त और मध्य यह कुछ भी नहीं, जिसे इन्द्रियोंसे ग्रहण नहीं किया जा सकता और जो अप्रदेशी है अर्थात् एक प्रदेशको छोड़कर जिसके द्वितीयादिक प्रदेश नहीं पाये जाते उसे परमाणु कहते हैं। यह द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा परमाणुका स्वरूप बतलाया है। किन्तु पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षा विचार करने पर तो परमाणुका भी आदि मध्य और अन्त प्राप्त होता है तो भी उनका विभाग नहीं किया जा सकता इसलिये उनके आधारभूत द्रव्यको परमाणु कहते हैं। इस लक्षणके करने पर परमाणुके और सब विशेषण पूर्ववत् हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३१-शंका—द्व्यणुकादि स्कन्धोंकी उत्पत्ति कैसे होती है?

३१-समाधान—दो या दोसे अधिक परमाणुओंका संयोग स्निग्ध या रूक्ष गुणके कारण होकर द्व्यणुकादि स्कन्धोंकी उत्पत्ति होती है। 'द्व्यधिकादिगुणानां तु' इस सूत्रमें गुण शब्द अविभाग प्रतिच्छेदका वाची है। गुणका वह अंश जिसमें बुद्धिसे खण्डकल्पना सम्भव नहीं, अविभाग प्रतिच्छेद कहलाता है। जब कोई परमाणु जघन्य गुणवाला अर्थात् एक अविभाग प्रतिच्छेद-वाला होता है तो उसका अन्य परमाणुसे किसी भी हालतमें बन्ध नहीं होता। इसी प्रकार समान गुणवालोंका परस्पर बन्ध नहीं होता, किंतु दो अधिक गुणवालेका दो गुणहीन गुणवालेके साथ बन्ध हो जाता है।

इससे यह फलित हुआ कि स्निग्ध गुणवालेका रूक्ष गुणवालेके साथ बन्ध होता है। स्निग्ध गुणवालेका स्निग्ध गुणवालेके साथ बन्ध होता है। रूक्ष गुणवालेका स्निग्ध गुणवालेके साथ बन्ध होता है और रूक्ष गुणवालेके रूक्ष गुणवालेके साथ भी बन्ध होता है। किंतु यह बन्ध परस्पर दो अधिक गुणोंके होनेपर ही होता है। और बन्ध हो जानेपर जो अधिक गुणवाला होता है तद्रूप दूसरा परिणाम जाता है। अब यह प्रश्न होता है कि दो परमाणुओंका बन्ध सर्वात्मना होता है या एकदेशसे होता है? इसका यह समाधान है कि द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा कथंचित् सर्वात्मना बन्ध होता है तो भी वे दो परमाणु एक नहीं हो जाते क्योंकि तब वे दोनों परमाणु द्व्यणुक स्कन्धके अवयव हो जाते हैं। और पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षा कथंचित् एकदेशेन बन्ध होता है। यदि सर्वथा सर्वात्मना बन्ध मान लिया जाय तो सब पुद्गल द्रव्य एक परमाणुपनेको प्राप्त हो जायगा। और सर्वथा एकदेशेन बन्ध माना जाय तो बन्धके होनेपर हीन गुणवाले परमाणुका अधिक गुणवाले परमाणुरूपसे परिणमन हो जाता है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह कथन नहीं बनसकता है। इस प्रकार द्व्यणुकादि स्कन्धोंकी उत्पत्ति किस प्रकार होती है संक्षेपमें इसका विचार किया।

३२–शंका—सूत्रकारके द्वारा उक्त द्रव्यके दोनों लक्षणोंका समन्वय किस प्रकार होता है?

३२–समाधान—जब जिसमें गुण और पर्याय पाये जाते हैं उसे द्रव्य कहते हैं। द्रव्यका यह लक्षण किया जाता है तब गुण अन्वयी होनेसे द्रव्यके ध्रौव्यभावको सूचित करता है और पर्याय व्यतिरेक होनेसे द्रव्यके उत्पाद और व्ययभावको सूचित करता है। इसी प्रकार 'जिसका उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य है उसे सत् कहते हैं' सत्का यह लक्षण किया जाता है तब भी उक्त बात ही प्राप्त होती है। इस प्रकार तत्त्वतः विचार करनेपर इन दोनों लक्षणोंका अभिप्राय एक ही है इसलिए इनका समन्वय हो जाता है।

छठा अध्याय—

३३–शंका—द्रव्ययोग और भावयोगका क्या स्वरूप है?

३३–समाधान—आत्मप्रदेशोंके परिस्पन्दको द्रव्ययोग कहते हैं। और इसके पैदा करनेकी शक्तिको भावयोग कहते हैं। यह योग निमित्तके भेदसे तीन प्रकारका है—मनोयोग, वचनयोग और काययोग। वीर्यान्तराय कर्मके क्षयोपशमके रहते हुए शरीर नामकर्मके उदयसे औदारिकादि कायवर्गणाओंमेंसे किसी एक प्रकारकी वर्गणाओंके आलम्बनसे जो आत्मप्रदेश परिस्पन्द होता है, वह द्रव्य काययोग है और आत्मामें जो इसको पैदा करनेकी शक्ति है वह भाव काययोग है। वचनवर्गणाओंका अवलम्बन व वचनलब्धिके रहते हुए वचनोच्चारणके सन्मुख हुए आत्माके जो आत्मप्रदेश परिस्पन्द होता है वह द्रव्यवचनयोग है और आत्मामें जो इसे पैदा करनेकी शक्ति है वह भाव वचनयोग है। मनो-वर्गणाओंके आलम्बनसे मानस परिणामके सन्मुख आत्माके जो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्मप्रदेश परिस्पन्द होता है वह द्रव्य मनोयोग है और आत्मामें जो इसे पैदा करनेकी शक्ति है वह भाव मनोयोग है।

३४-शंका—अजीवाधिकरणका रहस्य क्या है ?

३४-समाधान—आत्माके आस्रवरूप परिणामोंके होनेमें बाह्य चेतन और अचेतन पदार्थ निमित्त होते हैं। वहां अधिकरणसे इन्हींको ग्रहण किया है। जिससे आत्मा आस्रवके सन्मुख होता है वह अधिकरण कहलाता है। वह अधिकरण दो प्रकारका है—जीवाधिकरण और अजीवाधिकरण। जीवाधिकरणमें जीवकी सब प्रवृत्तियोंको ग्रहण किया है। मुख्यतः उन प्रवृत्तियोंके एकसौ आठ भेद हो सकते हैं जो "आद्यं संरम्भ" इत्यादि सूत्र द्वारा गिनाये ही हैं। अजीवाधिकरणमें हिंसादिके प्रयोजक जड़ पदार्थोंको ग्रहण किया है। तात्पर्य यह है कि जिन जिन बाह्य पदार्थोंके निमित्तसे आत्माके आस्रवरूप परिणाम होते हैं या कर्मोंका आस्रव होता है वे सब अधिकरणमें लिये जाते हैं। अब यदि वे चेतन होते हैं तो उनका ग्रहण जीवाधिकरणमें किया जाता है और अचेतन होते हैं तो उनका ग्रहण अजीवाधिकरणमें किया जाता है। इस प्रकार अजीवाधिकरणसे उन जड़ पदार्थोंका ग्रहण करना चाहिये जो निरन्तर आत्माके परिणामोंको मलिन करते रहते हैं जिससे कर्मोंका आस्रव होता है। प्रकृतमें अजीवाधिकरणका यही रहस्य है।

३५-शङ्का—केवलीका अवर्णवाद क्या है ?

३५-समाधान—जिसमें जो दोष न हो उसका उसमें कथन करना अवर्णवाद कहलाता है। केवलीके कवलाहार नहीं तब भी केवलीके कवलाहारका कथन करना केवलीका अवर्णवाद है। बात यह है कि जब यह जीव क्षपकश्रेणी पर चढ़कर बारहवें गुणस्थानमें प्रविष्ट होता है तब ध्यानरूप वह्निसे इसके शरीरकी शुद्धि हो जाती है। शरीरमें सब निगोदिया जीवका अभाव हो जाता है। तेरहवें गुणस्थानमें तो इसके आश्रयसे एक भी निगोदिया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीव नहीं रहता। इसके प्रवृत्तिका यह भाग समाप्त हो जाता जिससे शरीरमें मलका संचय होकर उसमें निगोदिया जीव पैदा होते हैं। सातिशय पुरुषविशेषको यदि छोड़ दिया जाय तो यह निश्चय है कि जो आहार पानीको ग्रहण करेगा उसके शरीरमें मलमूत्रका संचय अवश्य होगा और इससे उसके शरीरमें कृमि व निगोदिया जीवोंकी भी उत्पत्ति होगी। चूंकि केवलीके शरीरमें इस प्रकारके जीवोंका निषेध किया है।

इससे ज्ञात होता है कि केवलीके कवलाहार नहीं होता। इतर संसारी जीवोंके शरीरमें त्रस और निगोदिया जीव भरे पड़े हैं। वे निरन्तर शरीरका शोषण कर रहे हैं जिससे शरीरमें उष्णता होकर आहार, पानी आदिकी आवश्यकता पड़ती है। पर केवलीके शरीरमें इस प्रकारकी उष्णताका कारण नहीं रहा। उनके शरीरका शोषण अब अन्य त्रस व निगोदिया जीवोंके कारण नहीं होता। अतः शरीरमें आन्तर उष्णता उत्पन्न होकर उनके शरीरका अपक्षय नहीं होता। और इसलिये प्रति समय उनके शरीरके जितने परमाणु निर्जीर्ण होते हैं उतने नवीन परमाणुओंका ग्रहण हो जानेसे कवलाहारके बिना भी उनके शरीरकी स्थिति बनी रहती है। जिस प्रकार कर्मवर्गणाओंके आने और जानेमें कार्मण शरीरकी स्थिति होती है उसी प्रकार अब उनके नोकर्म वर्गणाओंके आने और जानेसे शरीरकी स्थिति होती है। माना कि केवलीके असाताका भी उदय होता है। भूख या प्यास आदिका पैदा करना असाताका काम नहीं है। ये तो अपने कारणोंसे पैदा होते हैं।

हां असाताके उदय या उदीरणामें ये भूख व प्यास आदि नोकर्म हो सकते हैं। चूंकि जिन कारणोंसे हम संसारी जनोंको भूख व प्यास आदिकी बाधा होती है वे कारण केवली जिनके नहीं पाये जाते, अतः उन्हें भूख व प्यास आदिकी बाधा नहीं होती। और चूंकि उन्हें भूख व प्यास आदिकी बाधा नहीं होती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसलिये उन्हें कवलाहार आदिकी आवश्यकता नहीं पड़ती। इससे निश्चित होता है कि केवलीके कवलाहारका कथन करना अवर्णवाद है। इसी सबबसे शास्त्रकारोंने कवलाहारको केवलीका अवर्णवाद बतलाया है।

३६-शंका—अकाम निर्जराका क्या स्वरूप है?

३६-समाधान—कायक्लेश आदिके जिन साधनोंसे कर्मोंकी निर्जरा तो अधिकतासे हो किंतु आत्माका विकाश न होकर वह संसारमें ही परिभ्रमण करता रहे उस निर्जराको अकाम निर्जरा कहते हैं। यह जीव संसारमें अपनी इच्छाके बिना विविध प्रकारके कष्ट सहता है। कभी यह जेलखानेमें डाल दिया जाता है, कभी इसका आहार पानी रोक दिया जाता है। इससे उदयप्राप्त कर्मोंकी तीव्र उदीरणा होकर वे निर्जीर्ण होने लगते हैं और अनुदयप्राप्त कर्मोंकी भी यथायोग्य उदयप्राप्त कर्मोंके द्वारा निर्जरा होने लगती है। इसप्रकार बिना इच्छाके जो कष्ट सहा जाता है और उससे जो कर्मोंकी निर्जरा होती है उसे अकाम निर्जरा कहते हैं।

३७-शंका—सम्यक्त्व तो आत्माका गुण है वह आयुकर्मके आस्रवका कारण कैसे हो सकता है?

३७-समाधान—सम्यक्त्वके रहनेपर तिर्यञ्च और मनुष्योंके देवायुका ही आस्रव होता है यह बतलानेके लिये सम्यक्त्वको भी आस्रवके कारणोंमें गिना दिया है। सराग संयम और संयमासंयमको भी आस्रवके कारणोंमें गिनाया है। यहां भी इसीप्रकार समझ लेना चाहिये। अन्यत्र जहां भी आत्मपरिणाम आस्रवके कारण बतलाये हों वहां यही समझना चाहिये कि उन परिणामोंके होनेपर ही जीवके उस प्रकारकी योग्यता होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सातवां अध्याय—

३८–शंका—अतिचार और अनाचारोंमें क्या अन्तर है?

३८–समाधान—जिस व्रतकी जो मर्यादा है उसका अतिक्रम करके आचरण करनेको अतिचार कहते हैं और व्रतके विरुद्ध आचरणको अनाचार कहते हैं। अतिचारके होनेपर व्रत सदोष हो जाता है और अनाचारके होनेपर व्रतका भंग हो जाता है।

तात्पर्य यह है कि जब व्रतकी रक्षाकी भावना रहते हुए मर्यादाका उल्लंघन होता है तब अतिचार दोष लगता है और जब जीव व्रतकी रक्षाकी भावनाका त्याग करके विरुद्ध आचरण करने लगता है तब अनाचार होता है। अतिचारमें एकदेश व्रतका भंग है और अनाचारमें व्रतका पूरा भंग है। एकदेश व्रतका भंग कभी क्रिया द्वारा और कभी भावना द्वारा होता है और सर्वदेश व्रतका भंग व्रतकी भावना और तद्रूप क्रिया इन दोनोंके त्यागसे होता है। इस प्रकार अतिचार और अनाचारमें यही अन्तर है।

३९—शंका—उपभोग परिभोग परिमाण व्रत और उसके अतिचारोंका विशद अभिप्राय क्या है?

३९–समाधान—बारह व्रतोंका स्वीकार यावज्जीवनके लिये किया जाता है। इन बारह व्रतोंमें उपभोगपरिभोग परिमाण व्रतका भी अंतर्भाव है इसके स्वीकार करनेके पश्चात् वह सदाकाल रहता है यह निश्चित होता है। यद्यपि उपभोगपरिभोगकी वस्तुओंका त्याग दो प्रकारका होता है–कुछका यावज्जीवनके लिये और कुछका नियतकालके लिये। तो भी उपभोगपरिभोग परिमाण-व्रत यह आत्माका परिणाम है अतः उपभोगपरिभोगकी वस्तुओंके नियतकालिक त्यागमें निमित्त पड़ने पर भी वह व्रतरूप परिणाम सदा बना रहता है। देशावकाशिक व्रत आदिमें भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यही क्रम जानना चाहिये। अब रही इसके अतिचारोंकी बात, सो इस विषयमें मतभेद है तो भी प्रकृतमें यह विचार करना है कि तत्त्वार्थसूत्रमें इसके अतिचार किस अभिप्रायसे बतलाये हैं। मेरे ख्यालसे एक तो जिस श्रावकके उपभोगपरि-भोग-परिमाण व्रतमें सचित्त आहारका त्याग भी गर्भित है उसकी प्रमुखतासे ये अतिचार गिनाये हैं। दूसरे श्रावकके घर अतिथि आते भी हैं। अतः यदि श्रावक 'आहार बनाते समय ये दोष उत्पन्न करता है तो भी ये अतिचार हो जाते हैं, क्योंकि इन दोषोंके कारण वह आहार अतिथिके योग्य नहीं रहता, और ऐसा करनेसे आहार तैयार करनेवाले श्रावकके परिणाम भी निर्मल नहीं रहते। यही सबब है कि सचित्ताहार आदिको अतिचारोंमें गिनाया है। चारित्रसारमें भी यही युक्ति दी है कि इनके कारण अतिथिका उपयोग इन सचित्त आदिके विषयमें जाता है।

आठवां अध्याय—

४०-शंका—बन्धतत्त्वको चार भागोंमें ही क्यों बांटा गया ?

४०-समाधान—जब कोई एक पदार्थ किसी दूसरे पदार्थको आवृत्त करता है या उसकी शक्तिका घात करता है तब आवरण करनेवाले पदार्थमें आवरण करनेका स्वभाव, आवरण करनेका काल, आवरण करनेकी शक्तिका हीनाधिक भाव और आवरण करनेवाले पदार्थका परिमाण ये चार अवस्थाएं एकसाथ प्रकट होती हैं। यही बात प्रकृतमें समझना चाहिये। प्रकृतमें आत्मा आव्रियमाण है और कर्म आवरण। अतः कर्मकी भी बन्धके समय उक्त चार अवस्थाएं प्रकट होती हैं जिन्हें प्रकृतिबन्ध, स्थिति-बन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्ध कहते हैं। ये चारों अवस्थाएं कर्मबन्धके प्रथम समयमें ही सुनिश्चित हो जाती हैं।

उदाहरणार्थ जिस समय हम लालटेनको वस्त्रसे ढकते हैं उसी समय वस्त्रमें चार अवस्थाएं स्पष्टतः प्रतिभासित होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१-वस्त्रका स्वभाव लालटेनके प्रकाशको आवृत करना, २-निश्चित कालतक लालटेनके प्रकाशको आवृत्त करे रहना, ३-लालटेनके प्रकाशको आवृत करनेकी शक्तिका वस्त्रमें हीनाधिक रूपसे पाया जाना और ४-आवृत करनेवाले वस्त्रका परिमाण।

४१-शंका—विहायोगति नामकर्मका उदय किसके होता है?

४१-समाधान—जिस कर्मके उदयसे जीव आकाशमें गमन करता है उसे विहायोगति नामकर्म कहते हैं। आकाश सर्वत्र है अतः पृथ्वी आदिपर गमन करना भी आकाशमें गमन करना है। मुख्यतः नरकगति आदिके वारण करनेके लिए यहां 'विहायस्' उपपद दिया है। वैसे पर्याप्त हो जानेपर जो प्राणधारीका गमन होता है उसमें विहायोगति नामकर्मका उदय कारण है।

तात्पर्य यह है कि पर्याप्त अवस्थामें त्रस जीवोंके विहायोगति नामकर्मका उदय होता है।

४२-शंका—बन्धे हुए कर्मोंमें अनुभागका विभाग किस क्रमसे होता है?

४२-समाधान—घातिया कर्मोंका अनुभाग चार भागोंमें बटा है—लता, दारु, अस्थि और शैल। इनमेंसे लतारूप शक्ति और दारुका अनन्तवां भाग देशघाति अनुभाग है और शेष सर्वघाति अनुभाग है। सम्यक्त्व प्रकृतिमें देशघाति अनुभाग पाया जाता है। सम्यग्मिथ्यात्वमें दारुका अनन्तवां भाग सर्वघाति अनुभाग पाया जाता है। मिथ्यात्वमें दारुका अनन्त बहुभाग, अस्थि और शैलरूप अनुभाग पाया जाता है। ज्ञानावरणकी चार देशघाति, दर्शनावरणकी तीन देशघाति, पांच अन्तराय, चार संज्वलन और पुरुषवेद इनमें लता, दारु, अस्थि और शैल या लता और दारु, या केवल लतारूप चार प्रकारका अनुभाग पाया जाता है।

सम्यग्मिथ्यात्वके बिना शेष सब सर्वघाति, प्रकृतियोंमें शैल,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अस्थि और दारुका अनन्त बहुभाग या अस्थि व दारुका अनन्त बहुभाग या दारुका अनन्त बहुभाग इस प्रकार तीन प्रकारका अनुभाग पाया जाता है। तथा पुरुषवेदके बिना शेष आठ नौ कषायोंमें शैल, अस्थि, दारु और लता या अस्थि दारु और लता या दारु और लता इस तरह तीन प्रकारका अनुभाग पाया जाता है।

अब रहे अघातिया कर्म सो इनके पुण्यप्रकृति और पाप-प्रकृति इस तरह दो भेद हैं। पुण्यप्रकृतियोंका अनुभाग गुड़, खांड, शर्करा और अमृतके समान माना है, और पापप्रकृतियोंका अनुभाग नीम, कांजीर, विष और हलाहलके समान माना है। यहां भी अनुभागका तीन प्रकारसे परिणमन जानना। अर्थात् पुण्य प्रकृतिमें गुड़, खांड, शर्करा और अमृतरूप या गुड़ और शर्करा रूप या गुड़ और खांड रूप अनुभाग होता है। और पाप प्रकृतियोंमें नीम, कांजीर, विष और हलाहल रूप या नीम, कांजीर और विषरूप या नीम और कांजीरका अनुभाग होता है।

४३-शंका—प्रदेश बन्धका विभाग किस क्रमसे होता है?

४३-समाधान—यदि आयु कर्मका भी बन्ध हो रहा है तो आयुकर्मको सबसे थोड़ा द्रव्य मिलता है। नाम और गोत्रमें प्रत्येकको इससे अधिक द्रव्य मिलता है तो भी इन दोनों कर्मोंका द्रव्य समान रहता है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायमें प्रत्येकको इससे अधिक द्रव्य मिलता है तो भी इनका द्रव्य परस्पर समान होता है। इससे मोहनीय कर्मको अधिक द्रव्य मिलता है और इससे वेदनीय कर्मको अधिक द्रव्य मिलता है। घातिया कर्मोंको जो द्रव्य मिलता है उसमें सर्वघाति द्रव्य सब घातिद्रव्यका अनन्तवां भाग होता है और देशघाति द्रव्य अनन्त बहुभाग होता है। इससे भी देशघाति द्रव्यका बटवारा देशघाति प्रकृतियोंमें ही होता है, किन्तु सर्वघाति द्रव्यका बटवारा देशघाति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और सर्वघाति दोनों प्रकारकी प्रकृतियोंमें होता है। परन्तु नौ नौकषायोंको देशघाति द्रव्य ही प्राप्त होता है, सर्वघाति नहीं। इस प्रकार यह प्रदेशबन्ध विभागका क्रम जानना।

४४-शंका--कर्मोंके जीवविपाकी और पुद्गलविपाकी इसप्रकार भेद करनेका कारण क्या है?

समाधान—जीवविपाकी कर्मोंके उदयसे जीवकी अवस्थाओंका निर्माण होता है और पुद्गलविपाकी कर्मोंके उदयसे शरीर और उसकी सब अवस्थाओंका निर्माण होता है। आगममें जो गति आदि चौदह मार्गणारूप भेद किये हैं वे सब जीवविपाकी कर्मोंके उदयादिके कार्य हैं। इसलिये जीवविपाकी कर्मोंका नोआगमभाव निक्षेप भी बन जाता है। क्योंकि जो आगमभावमें कर्मफलका भोगनेवाला जीव लिया जाता है, परन्तु पुद्गलविपाकी कर्मोंका नोआगम भावनिक्षेप नहीं प्राप्त होता, क्योंकि उनका फल जीवमें नहीं होता है। इसी सबबसे पुद्गलविपाकी कर्मोंके नोआगमभावका निषेध किया है। यही सबब है कि कर्मोंके जीवविपाकी और पुद्गलविपाकी ये दो भेद किये गये हैं।

नौवाँ अध्याय—

४५-शंका—समिति संवरका कारण क्यों है?

४५-समाधान—समिति अशुभ प्रवृत्तिके निरोधका कारण है और शुभ प्रवृत्तिको संकुचित करती है इस प्रकार इसमें प्रवृत्तिकी अपेक्षा निवृत्तिकी प्रधानता है अतः समितिको संवरका कारण बतलाया है।

४६-शंका—जब परीषहजय निर्जराका कारण है तो परीषहोंको बन्धका कारण मानना पड़ता है और ऐसी हालतमें बन्धके कारणोंमें परीषहोंको अलगसे गिनना चाहिये।

४६-समाधान—बन्धके कारणोंमें योगको छोड़कर शेष सारा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिवार मोहका है। योगको बन्धके कारणोंमें इसलिये गिनाया कि उसके निमित्तसे आत्मा कर्मोंको ग्रहण करता है परन्तु कर्मोंमें स्थिति और अनुभागका मुख्य कारण तो कषाय ही है। अब देखना यह है कि किस कर्मके उदयसे कितनी परीषह होती है। ज्ञानावरणसे ज्ञान और अज्ञान परीषह होती है। दर्शनमोहनीयसे अदर्शन परीषह होती है। अन्तराय कर्मसे अलाभ परीषह होती है। चारित्रमोहनीयसे नाग्न्य, अरति, स्त्री, निषद्या, आक्रोश, याचना और सत्कार पुरस्कार परीषह होती है। तथा शेष परीषह वेदनीयके होने पर होती हैं। इस प्रकार इन परीषहोंके निमित्त हैं तो भी इनका कार्य मोहनीयके सद्भावमें ही होता है, मोहनीयके अभावमें नहीं। इस बातको बतलानेके लिये सूत्रकारने बन्धके कारणोंमें परीषहका अलगसे निर्देश नहीं किया। और कारणके सद्भावकी अपेक्षा परीषहोंका सद्भाव बतलानेके लिये जहां तक उनके कारण पाये जाते हैं वहां तक उनका निर्देष किया। इस प्रकार सबसे बड़ी परीषह मोहनीयका उदय है।

४७-शंका—भाषासमिति और सत्यधर्ममें क्या अन्तर है?

४७-समाधान—भाषासमितिमें प्रवृत्ति करनेवाला मुनि, साधु और असाधुमें भाषा व्यवहार करता हुआ हित, मित और प्रिय ही बोलता है यह तो भाषासमिति है। किन्तु सत्य धर्ममें इस प्रकार बोलनेका कोई नियम नहीं है। इसमें तो वे सब बातें समाविष्ट हैं जो दीक्षित और उनके भक्तोंके लिए ज्ञान और चारित्रका शिक्षण देते समय कही जाती है। भाषासमिति और सत्यधर्ममें यही अन्तर है।

४८-शंका—जिनेन्द्रदेवमें ग्यारह परीषह बतलानेका क्या कारण है?

४८-समाधान—वेदनीयकर्म मोहनीय कर्मके बिना अपना काम करनेमें पंगु है। आठ कर्मोंमें वेदनीय कर्मका पाठ जो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घातिया कर्मोंके मध्यमें किया है, वह इसी प्रयोजनके दिखलानेके लिये किया है। चूंकि मोहनीय कर्मका समूल नाश दशवें गुणस्थानके अन्तमें हो जाता है इसलिए ग्यारहवें आदि गुणस्थानोंमें तत्त्वतः कोई परीषह नहीं पाई जाती। तब भी जिन परीषहोंके कारण ग्यारहवें आदि गुणस्थानोंमें विद्यमान हैं, कारणकी अपेक्षा सद्भाव वहां बतलाया। चूंकि जिनेन्द्रदेवके वेदनीयकर्मका उदय है और वेदनीयकर्मके सद्भावमें ग्यारह परीषह होती हैं इसलिए जिनेन्द्रदेवके ग्यारह परीषह कही।

४९-शंका—परीषह और उपसर्गमें क्या अन्तर है?

४९-समाधान—परीषह व्यापक है और उपसर्ग व्याप्य। उपसर्ग परनिमित्तसे ही होता है और परीषहके होनेमें ऐसा कोई नियम नहीं। यही सबब है कि उपसर्गजयको अलगसे संवरका कारण नहीं कहा। उपसर्गको परीषहमें ही सम्मिलित कर लिया गया है। यही इन दोनोंमें अन्तर है।

५०-शंका—परीषह और कायक्लेशमें क्या अन्तर है?

५०-समाधान—जो अन्तरंग या बाह्य निमित्तसे साधुकी इच्छाके बिना अपने आप प्राप्त होती हैं वे परीषह हैं और कायक्लेश स्वयंकृत होता है। इस प्रकार इन दोनोंमें यही अन्तर है।

५१-शंका—आलोचना, प्रतिक्रमण और तदुभयमें क्या अन्तर है?

५१-समाधान—आलोचनाके दस दोषोंसे रहित होकर गुरुके समक्ष प्रमादका निवेदन करना आलोचना नामका प्रायश्चित्त कहलाता है। मेरा दोष मिथ्या होओ इसप्रकार प्रतीकारका व्यक्त करना प्रतिक्रमण नामका प्रायश्चित्त कहलाता है। और जिसमें आलोचना तथा प्रतिक्रमण ये दोनों किये जाते हैं उसे तदुभय नामका प्रायश्चित्त कहते हैं। यद्यपि सभी प्रतिक्रमण आलोचनापूर्वक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होते हैं इसलिये प्रतिक्रमण और तदुभयमें कोई भेद नहीं रहता है तो भी इनके भेदका कारण यह है कि प्रतिक्रमण नामके प्रायश्चित्तको शिष्य करता है जो गुरुके सामने दोषोंके निवेदन कर देनेपर उनकी आज्ञासे किया जाता है और तदुभय नामके प्रायश्चित्तको स्वयं गुरु करता है। इस प्रकार इन तीनोंमें अन्तर जानना चाहिये।

५२-शंका—धर्मध्यान और शुक्लध्यान कहांसे कहां तक?

५२-समाधान—सर्वार्थसिद्धिमें बतलाया है कि अविरत, देशविरत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीवोंके चारों प्रकारका धर्मध्यान होता है। तथा शुक्लध्यानके चार भेदोंमेंसे पृथक्त्व वितर्क वीचार नामका पहला ध्यान उपशम श्रेणीके सब गुणस्थानोंमें और क्षपक श्रेणीके दसवें गुणस्थान तक होता है। एकत्व-वितर्क वीचार नामका दूसरा ध्यान क्षीणमोह गुणस्थानमें होता है। सूक्ष्मक्रिया-प्रतिपाति नामका तीसरा ध्यान सयोगकेवलीके काययोगके सूक्ष्म हो जानेपर होता है और व्युपरतक्रिया निवृत्ति नामका चौथा ध्यान अयोगकेवलीके होता है। किंतु धवला टीकामें बतलाया है कि धर्मध्यान चौथे गुणस्थानसे लेकर दसवें गुणस्थान तक होता है। शुक्लध्यानका पहला भेद ग्यारहवें गुणस्थानमें होता है और दूसरा भेद बारहवें गुणस्थानमें होता है। पहला भेद बारहवेंके आरम्भमें भी पाया जाता है। इतने अन्तरको छोड़कर शेष कथन सर्वार्थसिद्धिके समान है। इस मतभेदका कारण यह है कि वीरसेनस्वामीने बतलाया है कि सकषाय अवस्थामें धर्मध्यान और कषायरहित अवस्थामें शुक्लध्यान होता है। किंतु सर्वार्थसिद्धिकारने धर्मध्यान और शुक्लध्यानमें इसप्रकार अन्तर नहीं माना है। उनके मतसे श्रेणी आरोहणके पूर्वतक धर्मध्यान और श्रेणीमें शुक्लध्यान होता है। तत्त्वतः यह विवक्षाभेद है।

५३-शंका—गुणश्रेणी निर्जराका क्या कारण है?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५३-समाधान—सम्यग्दर्शनादिक गुण गुणश्रेणी निर्जराका कारण है।

५४-शंका—पुलाकादि मुनियोंमें किन कारणोंसे भेद होता है?

५४-समाधान—ये सब मुनि निर्ग्रन्थ हैं, केवल चारित्रकी न्यूनाधिकताके कारण इनमें भेद हैं। जो उत्तर गुणोंको नहीं पालते किन्तु मूल गुणोंमें भी पूर्णताको नहीं प्राप्त हैं वे पुलाक मुनि कहलाते हैं। पुलाक पयालको कहते हैं। वह जैसा सार भाग रहित होता है उसी प्रकार इन मुनियोंको जानना चाहिए। जो व्रतोंको तो पूरी तरह पालते हैं किन्तु शरीर और उपकरणोंको संस्कारित करते रहते हैं, ऋद्धि और यशकी अभिलाषा रखते हैं आदि वे बकुश मुनि कहलाते हैं।

कुशील मुनि दो प्रकारके हैं—प्रतिसेवनाकुशील और कषाय-कुशील। जो मूलगुणों और उत्तरगुणोंको पालते तो हैं पर कदाचित् उत्तरगुणोंकी विराधना कर लेते हैं वे प्रतिसेवनाकुशील मुनि कहलाते हैं। जो ग्रीष्मकालमें जंघाप्रक्षालन आदिके कारण अन्य कषायके उदयके आधीन होते हुए भी संज्वलन कषाययुक्त हैं वे मुनि कषायशील मुनि कहलाते हैं। जिनके अन्तर्मुहूर्तमें केवलज्ञान प्राप्त होनेवाला है वे निर्ग्रन्थ मुनि कहलाते हैं। जिन्होंने घातिया कर्मोंका नाश कर दिया है वे स्नातक मुनि कहलाते हैं। इस प्रकार ऊपर जो इनके लक्षण दिये हैं इन्हींसे इनके भेदका कारण ज्ञात हो जाता है।

दसवां अध्याय—

५५-शंका—मोक्षमें भव्यत्व भावका नाश क्यों हो जाता है?

५५-समाधान—भव्यत्व और अभव्यत्व योग्यता-विशेषसे सम्बन्ध रखते हैं। ये जीवके स्वभाव नहीं। यदि इन्हें स्वभाव मान लिया जाय तो जिस प्रकार स्वभाव भेदसे पांच अचेतन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्रव्य माने हैं उसी प्रकार स्वभाव भेदसे दो चेतन द्रव्य हो जायेंगे। परन्तु ऐसा नहीं है क्योंकि शक्तिकी अपेक्षा सबकी योग्यता समान मानी है। यह भेद तो केवल व्यक्ति होने और न होनेकी अपेक्षा किया गया है। अब जिसके व्यक्ति हो जाती है उसके भव्यत्व भावके माननेका कारण नहीं। जब तक पूर्व अवस्था अर्थात् कारण अवस्था है तभीतक भव्यत्व भावका व्यवहार होता है, कार्य अवस्थामें नहीं। उदाहरणार्थ विवक्षित मिट्टीमें घट बननेकी योग्यता तभीतक कही जाती है जबतक उसका घट रूपसे परिणमन नहीं हुआ। घट अवस्थाके उत्पन्न हो जानेपर तो 'इस मिट्टीमें घट बननेकी योग्यता है' यह व्यवहार समाप्त हो जाता है। इसी प्रकार प्रकृतमें जानना चाहिये। भव्यत्व और अभव्यत्व भावको जो पारिणामिक कहा है सो उसका कारण यह है कि इन भावोंके होनेमें कर्मोंके उदयादिकी अपेक्षा नहीं पड़ती। इसी कारण मोक्षमें भव्यत्व भावका अभाव बतलाया है।

५६–शंका—मुक्त जीवोंका निवास कहां है?

५६–समाधान—लोकाग्रमें मनुष्यलोकके ठीक बराबर उसकी सीधमें सिद्धलोक है इसका ऊपरी भाग अलोकाकाशसे लगा हुआ है। और तनुवातवलयसे व्याप्त है वहीं सिद्ध जीवोंका निवास है। आठवीं पृथिवी जिसे सिद्धशिला कहते हैं सिद्धलोकसे बहुत नीचे है। सिद्ध जीवोंका इससे स्पर्श नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लक्षण-संग्रह

शब्द	अध्याय	सूत्र	शब्द	अध्याय	सूत्र
अकामनिर्जरा	६	१२	अधोव्यतिक्रम	७	३०
अक्षिप्र	१	१६	अन्तर	१	८
अगारी	७	२०	अनिःसृत	१	१६
अगृहीत मिथ्यादर्शन	८	२	अनुक्त	१	१६
अघातिया	८	४	अनुगामी अवधिज्ञान	१	२२
अङ्गोपाङ्ग	८	११	अननुगामी ,,	१	२२
अचक्षुदर्शन	८	७	अनवस्थित ,,	१	२२
अचौर्याणुव्रत	७	२०	अनीक	४	४
अजीव	१	४	अनर्पित	५	३२
अज्ञातभाव	६	६	अनाभोग	६	५
अज्ञान	८	१	अनाकांक्षा	६	५
अज्ञान परीषहजय	९	९	अनुमत	६	८
अण्डज	२	३३	अनुभोगनिक्षेपा०	६	९
अणु	५	२५	अन्तराय	६	१०
अणुव्रत	७	२	अनुवीचिभाषण	७	५
अतिथिसंविभागव्रत	७	२१	अनृत–असत्य	७	१४
अतिचार	७	२३	अनगारी	७	२० टि०
अतिभारारोपण	८	२५	अनर्थदण्डव्रत	७	२१
अदर्शन परीषहजय	९	९	अन्यदृष्टिप्रशंसा	७	२३
अधिगमजसम्यग्दर्शन	१	३	अन्नपाननिरोध	७	२५
अधिकरण क्रिया	६	५	अनङ्गक्रीडा	७	२८
अधिकरण	६	६	अनादर	७	३३
अध्रुव	१	६	अनुभागबन्ध	८	३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

शब्द	अध्याय	सूत्र
अन्तराय	८	४
अनुजीविगुण	७	४ टि०
(टिप्पणी)अनंतानुबंधी	८	९
अन्तर्मुहूर्त	८	२० टि०
अनुभवबन्ध	८	२१
अनुप्रेक्षा	९	२
अनित्यानुप्रेक्षा	९	७
अनशन	९	२५
अनुप्रेक्षा	९	२५
अनिष्टसंयोगजआर्त०	९	२०
अनन्त वियोजक	९	४५ टि०
अन्तर	१०	९
अप्रत्याख्यान	६	५
अप्रत्यवेक्षितनिक्षेपा०	६	९
अपध्यान	७	२१
अपरिगृहीतेत्वरिकागमन	७	२८
अप्रत्यवेक्षिताप्रमा०	७	३४
अप्रत्यवेक्षिताप्रमा०	७	३४
अप्रत्याख्यानावरण	८	९
अपर्याप्त नामकर्म	८	११
अपर्याप्तक	८	११
अपायविचय	९	३६
अब्रह्मकुशील	७	१६
अभिनिबोध	१	१३
अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग	६	२४
अभिषवाहार	७	३५
अमनस्क	२	११
अयशःकीर्ति	८	११
अरति	८	९
अरति परिषहजय	९	९
अर्थ संक्रांति	९	४४
अर्थावगाह	१	१८
अर्पित	५	३२
अर्हद्भक्ति	६	२४
अल्पबहुत्व	१	९
अलाभ परीषहजय	९	९
अल्पबहुत्व	१०	९
अवधिज्ञान	१	९
अवग्रह	१	१५
अवाय	१	१५
अवस्थित	१	२२
अविग्रहगती	२	२७
अवर्णवाद	६	१३
अविरति	८	१
अवधिज्ञानावरण	८	६
अवधिदर्शनावरण	८	७
अविपाक निर्जरा	८	२३
अवमोदर्य	९	१४
अवगाहन	१०	९
अशुभ योग	६	३
अशरणानुप्रेक्षा	९	७
अशुचित्वानुप्रेक्षा	९	७
अशुभ	८	११
अस्तिकाय	५	१ टि०

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्द	अध्याय	सूत्र
असमीक्ष्याधिकरण	७	३२
असद्वेद्य	८	८
असंप्राप्तसृपाटिका सं०	८	११
अस्थिर	८	११
अहिंसाणुव्रत	७	२०
आक्रन्दन	६	११
आक्रोश	९	२
आचार्यभक्ति	६	२४
आचार्य	९	२४
आज्ञा व्यापादिकी	९	३५
आज्ञा विचय	९	३६
आत्मरक्ष	४	४
आतप	८	११
आदाननिक्षेपणसमिति	७	४
आदेय	८	११
आदान निक्षेप	९	५
आनयन	७	३१
आनुपूर्व्य	८	११
आभियोग्य	४	४
आभ्यंतरोपधि व्युत्सर्ग	९	३६
आम्नाय	९	२५
आयु	३	३६
आरम्भ	६	८
आर्तध्यान	९	३३
आलोकितपानभोजन	७	४
आलोचना	९	२२
आवश्यकापरिहाणि	६	२४

शब्द	अध्याय	सूत्र
आसादन	६	१०
आस्रव	१	४
आस्रवानुप्रेक्षा	९	७
आस्रव	६	१
आहार	२	२७
आहारक	२	३६
इष्टवियोगज आर्तध्यान	९	३१
इन्द्रिय	२	१४
इन्द्र	४	४
ईर्यापथ आस्रव	६	४
ईर्यापथ क्रिया	६	५
ईर्यासमिति	७	४
ईर्या	९	५
ईहा	१	१५
उच्छ्वास	८	११
उच्चगोत्र	८	१२
उत्सर्पिणी	३	२७
उत्पाद	५	३०
उत्तम क्षमा	९	६
उत्तम मार्दव	९	६
उत्तम आर्जव	९	६
उत्तम शौच	९	६
उत्तम सत्य	९	६
उत्तम संयम	९	६
उत्तम तप	९	६
उत्तम त्याग	९	६
उत्तम आकिञ्चन्य	९	६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्द	अध्याय	सूत्र	शब्द	अध्याय	सूत्र
उत्तम ब्रह्मचर्य	९	६	कर्मयोग	२	२५
उत्सर्ग	९	५	कर्मभूमि	३	३७
उदय–औदयिक भाव	२	१	कल्पोपपन्न	४	१७
उद्योत	८	११	कल्पातीत	४	१७
उपशम औपशमिकभाव	२	१	कल्प	४	२३
उपयोग	२	८	कषाय	६	४
उपकरण	२	१७	कृत	६	८
उपयोग	२	१८	कन्दर्प	७	३२
उपपाद जन्म	२	३१	कषाय	८	१
उपकरण–संयोग	६	९	कषाय कुशील	९	४६
उपघात	६	१०	काल	१	८
उपभोग परिभोग प०	७	२१	कार्मण शरीर	२	३६
उपघात	८	११	काययोग	६	१
उपस्थापन	९	२२	कायिकी क्रिया	६	५
उपचार विनय	९	२३	कारित	६	८
उपाध्याय	९	२४	काय निसर्ग	६	९
ऊर्ध्वव्यतिक्रम	९	३०	कारुण्य	७	११
ऋजुमति मनःपर्यय	१	२३	कांक्षा	७	२३
ऋजुसूत्र	१	३३	कामतीव्राभिनिवेश	७	२८
एकविध	१	१६	काययोग दुष्प्रणिधान	७	३३
एकान्त मिथ्यात्व	८	१	कालातिक्रम	७	३६
एकत्वानुप्रेक्षा	९	७	कायक्लेश	९	१९
एकत्ववितर्क	९	४२	काल	१०	९
एवंभूत नय	१	४३	किल्विषक	४	४
एषणासमिति	९	५	क्रिया	५	२२
औपशमिक सम्यक्त्व	२	३	कीलक संहनन	८	११
औपशमिक चारित्र	२	३	कुप्य-प्रमाणातिक्रम	७	२९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्द	अध्याय	सूत्र
कुब्जक संस्थान	८	११
कुल	९	२४
कुशील	९	४६
कूटलेखा क्रिया	७	२६
कृत	६	८
केवलज्ञान	१	९
केवलज्ञान	२	४
केवलदर्शन	२	४
केवली का अवर्णवाद	६	१३
केवलज्ञानावरण	८	६
केवलदर्शनावरण	८	७
क्रोध प्रत्याख्यान	७	५
कोडाकोडी	८	१४टि.
कौत्कुच्य	७	३२
क्षय क्षायिकभाव	२	१
क्षयोपशम–क्षयोपश०	२	१
क्षयोपशम दानादि	२	४
क्षायिक सम्यक्त्व	२	४
क्षायिक चारित्र	२	४
क्षायोपशमिक सम्यक्त्व	२	५
क्षायोपशमिक चारित्र	२	५
क्षान्ति	३	१२
क्षिप्र	१	१६
क्षुधापरीषह जय	९	९
क्षेत्र	१	८
क्षेत्र	१०	९

शब्द	अध्याय	सूत्र
क्षेत्रवास्तुप्रमाणातिक्रम	७	२९
क्षेत्रवृद्धि	७	३०
गर्भजन्म	२	३१
गति नामकर्म	८	११
गन्ध	८	११
गण	९	२४
गति	१०	९
ग्लान	९	२०
गुणप्रत्यय	१	२१
गुण	५	३८
गुण	५	३४
गुण	५	४१
गुणव्रत	७	२०टि.
गुप्ति	४	२
गुणस्थान	४	१०टि.
गृहीत मिथ्यात्व	८	१
गोत्र	८	४
घातियाकर्म	८	४
चक्षुदर्शनावरण	८	७
चर्यापरिषहजय	९	२
चारित्र	९	२
चारित्र विनय	९	२३
चारित्र	१०	९
चिन्ता	१	१३
छेद	७	२५
छेदोपस्थापना	९	१८
छेद	९	२२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्द	अध्याय	सूत्र
जघन्य गुणसहित परमाणु	५	३४
जरायुज	२	३२
जाति नामकर्म	८	३१
जीव	१	४
जीविताशंसा	७	३७
जुगुप्सा	८	९
ज्ञातभाव	६	६
ज्ञानोपयोग	२	९ टि.
ज्ञानावरण	८	४
ज्ञानविनय	९	२३
ज्ञान	१०	९
तदाहृतादान	७	१७
तदुभय	९	२२
तन्मनोहरांग निरीक्षण	७	७
तप	९	२२
तपस्वी	९	२४
ताप	६	११
तिर्यंञ्च	४	२७
तिर्यग्व्यतिक्रम	७	३७
तीव्रभाव	६	६
तीर्थंकरत्व	८	११
तीर्थ	१०	९
तृषा परीषहजय	९	९
तृणस्पर्श परीषहजय	९	९
तैजस शरीर	२	३६
त्रस	२	१४
त्रस	८	१

शब्द	अध्याय	सूत्र
त्रायस्त्रिंश	४	४
दर्शनोपयोग	२	९ टि.
दर्शन क्रिया	६	५
दर्शनविशुद्धि	६	२४
दर्शनावरण	८	४
दर्शनविनय	९	२३
दंशमशक परीषहजय	९	९
द्रव्य	१	५
द्रव्यार्थिक नय	१	६
द्रव्य	५	२९
द्रव्येन्द्रिय	२	१७
द्रव्य	५	२९
द्रव्य विशेष	५	३९
द्रव्यसंवर	९	९
दातृविशेष	७	३९
दानान्तराय आदि	८	१३
दान	७	३८
दासीदास-प्रमाणातिक्रम	७	२९
दिग्व्रत	७	२१ टि.
दुःप्रमृष्ट निक्षेपाधिकरण	६	९
दुःख	६	११
दुःश्रुति	७	२१
दुःस्वर	८	११
दुर्भग	८	११
दुःपक्वाहार	७	३५
देव	४	३
देवका अवर्णवाद	६	११

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्द	अध्याय	सूत्र
धनधान्य प्रमाणातिक्रम	७	२९
धर्मका अवर्णवाद	६	१३
धर्म	९	२
धर्मानुप्रेक्षा	९	७
धर्मोपदेश	९	२५
धारणा	१	१५
ध्यान	९	२०
ध्यान	९	२७
ध्रुव	१	१६
ध्रौव्य	५	३१
नय	१	५
नपुंसकवेद	८	९
नरकायु	८	१०
नरकगत्यानुपूर्व्य आदि	८	११
नाम	१	५
नाम	८	४
नाराच संहनन	८	११
नाग्न्य परीषहजय	९	९
निसर्गज सम्यग्दर्शन	१	३
निर्जरा	१	४
निक्षेप	१	५
निर्देश	१	७
निःसृत	१	१६
निर्वृत्ति	२	१०
निश्चय कालद्रव्य	५	४०
निसर्ग क्रिया	६	५
निर्वर्तना	६	९

शब्द	अध्याय	सूत्र
निक्षेप	६	९
निसर्ग	६	९
निह्नव	६	१०
निदान शल्य	६	१८
निदान	७	३७
निद्रा	८	७
निद्रानिद्रा	८	७
निर्माण	८	११
निर्वृत्यपर्याप्तिक	८	११ टि.
निर्जरानुप्रेक्षा	९	७
निषद्या परीषहजय	९	९
निदान आर्तध्यान	९	३१
निर्ग्रन्थ	९	४६
नीचगोत्र	८	१२
नैगम नय	१	३३
न्यासापहार	७	२४
न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान	८	११
परोक्षप्रमाण	१	६
परिणाम	५	२२
परिणाम पर्याय	५	४२
परिदेवन	६	११
परोपरोधाकरण	७	६
परिग्रह	७	१७
परिग्रहपरिमाणव्रत	७	२०
परविवाहकरण	७	२८
परिगृहीतेत्वरिकागमन	७	२८
परव्यपदेश	७	३६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्द	अध्याय	सूत्र
परघात	८	११
परिषहजय	९	२
परिहारविशुद्धि	९	१८
परिहार	९	२२
परिग्रहानन्दी रौद्रध्यान	९	३५
परत्वापरत्व	५	२२
पर्याप्तक	८	११टि.
पर्याप्ति नामकर्म	८	११
पर्याय	५	३२
पर्यायार्थिक नय	१	६
प्रमाण	१	५
प्रत्यक्ष प्रमाण	१	४
प्रकीर्णक	४	४
प्रवीचार	४	७
प्रदेश	५	८
प्रदोष	६	१०
प्रवचन भक्ति	६	२४
प्रवचन वत्सलत्व	६	२४
प्रमोद	७	११
प्रमादचर्या	७	२१
प्रतिरूपक व्यवहार	७	२७
प्रमाद	८	१
प्रकृतिबन्ध	८	३
प्रदेशबन्ध	८	३
प्रतिजीवि गुण	८	४
प्रचला	८	७
प्रचलाप्रचला	८	७
प्रत्या० क्रो. मा.	८	९
प्रत्येक शरीर	८	११
प्रदेशबन्ध	९	२४
प्रज्ञापरिषहजय	९	९
प्रतिक्रमण	९	२२
प्रच्छना	९	२५
प्रतिसेवना कुशील	९	४६
प्रत्येकबुद्धबोधित	१०	९
पारिषद	४	४
पाप	६	३
पारितापिकी क्रिया	६	५
पारिग्रहिकी क्रिया	६	५
पापोपदेश	५	२१टि.
पात्रविशेष	६	३९
प्रायश्चित्त	९	२०
प्रयोग क्रिया	६	५
प्रादोषिकी क्रिया	६	५
पारितापिकी क्रिया	६	५
प्राणातिपातिकी क्रिया	६	५
पारिग्रहकी क्रिया	६	५
आरम्भ क्रिया	६	५
पुँवेद	८	९
पुद्गल	५	२२
पुद्गलक्षेप	७	३१
पुण्य	६	३
पुरस्कार	९	५
पुलाक	९	४६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्द	अध्याय	सूत्र
पूर्वरतानुस्मरण योग	७	७
पृथक्त्ववितर्क	९	४२
प्रेष्यप्रयोग	७	३१
पोत	२	३३
प्रोषधोपवास	७	२१
बकुश	९	४६
बन्ध	१	४
बन्ध	५	३३
बन्ध	७	२५
बन्ध तत्त्व	८	२
बन्धन	८	११
बहु	१	१६
बहुविध	१	१६
बहुश्रुतभक्ति	६	२४
बादर	८	११
बालतप	६	१२
बाह्योपधि व्युत्सर्ग	९	२६
बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा	९	७
भक्तपानसंयोग	६	९
भय	७	९
भवप्रत्यय	१	२१
भाव	१	५
भाव	१	८
भावेन्द्रिय	२	१८
भावना	७	३
भावसंवर	९	१
भाषासमिति	९	५

शब्द	अध्याय	सूत्र
भीरुत्व प्रत्याख्यान	७	५
भूतव्रत्यनुकम्पा	६	११
भैक्ष्यशुद्धि	७	६
भोगभूमि	३	टि.
भोग	७	२१ टि.
मतिज्ञान	१	९
मतिज्ञान	१	९
मति	१	१३
मतिज्ञानावरण	८	६
मन्दभाव	६	६
मनोनिसर्ग	६	१०
मनोवाग्गुप्ति	७	८
मनोयोग दुष्प्रणिधान	७	३८
मनःपर्यय ज्ञान	१	९
मनःपर्यय ज्ञानावरण	८	६
मनोज्ञ	९	२४
मरणाशंसा	७	३७
मलपरीषहजय	७	९
महाव्रत	७	२
मायाक्रिया	६	५
मात्सर्य	६	२४
मार्ग प्रभावना	७	२४
माध्यस्थ्य	७	११
मायाशल्य	७	१८
मात्सर्य	७	२६
मिथ्यात्व क्रिया	६	५
मिथ्यादर्शन क्रिया	६	५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्द	अध्याय	सूत्र	शब्द	अध्याय	सूत्र
मिथ्यात्वशल्य	७	१८	रोग परीषहजय	९	९
मिथ्योपदेश	७	२६	लब्धि	२	१८
मिथ्यादर्शन	८	१	लब्धि	२	४७
मिथ्यात्वप्रकृति	८	९	लब्ध्यपर्याप्तक	८	११ टि.
मुक्त	२	१०	लिङ्ग	१०	९
मुहूर्त	८	१८ टि.	लेश्या	२	२ टि.
मूलगुणनिर्वर्तना	६	९	लोकपाल	४	४
मूर्च्छा	७	१७	लोकानुप्रेक्षा	९	५
मृषानन्दी रौद्रध्यान	९	३५	लोभ प्रत्याख्यान	७	५
मन्त्री	७	११	लौकान्तिक देव	४	२४
मोक्ष	१	४	वर्धमान	१	२१
मोक्ष	१०	२	वर्तना	५	२२
मोहनीय	८	४	वचनयोग	६	१
मौखर्य	७	३२	वज्रर्षभनाराच संहनन	८	११
म्लेच्छ	३	३६	वज्रनाराच संहनन	८	११
यथाख्यात चरित्र	८	९	वध	८	११
यथाख्यात चारित्र	९	१८	व्रत	७	१
यशःकीर्ति	९	११	वध	७	२५
याचना परीषहजय	९	९	वर्ण	८	११
योग	६	१३	वाङ्निसर्ग	६	९
योग	८	१	वाग्गुप्ति	७	४
योग संक्रान्ति	९	४	वामनसंस्थान	८	११
रति	८	९	वाग्योगदुष्प्रणिधान	८	३३
रस	८	११	वाचना	९	२५
रस परित्याग	९	१९	विधान	१	७
रहोभ्याख्यान	७	२६	विपुलमति	१	२३
रूपानुपात	७	३१	विग्रहगति	२	८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्द	अध्याय	सूत्र	शब्द	अध्याय	सूत्र
विग्रहवती	२	२७	व्यञ्जनावग्रह	१	१८
निवृतयोनि	२	३२	व्यवहारनय	१	३३
विमान	४	१६	व्यय	५	३०
विदारणक्रिया	६	५	व्युत्सर्ग	९	२०
विसंवादन	६	२२	व्युत्सर्ग	९	२२
विनयसंपन्नता	६	२४	व्युपरतक्रियानिवर्ति	९	४३
विमोचितावास	७	६	व्यञ्जनसंक्रान्ति	९	४४
विचिकित्सा	७	२३	शब्दनय	१	३३
विनय	९	२९	शक्तितस्त्याग	६	२४
विवेक	९	२२	शक्तितस्तप	६	२४
विपाकविचय	९	३६	शल्य	७	१८
विरुद्ध राज्यातिक्रम	७	२७	शब्दानुपात	८	३१
विधिविशेष	७	३९	शरीर नामकर्म	८	११
विपरीत मिथ्यात्व	८	१	शय्यापरीषह जय	९	९
विहायोगति	८	११	शङ्का	७	३३
विविक्त शय्यासन	९	१९	शिक्षाव्रत	७	२१टि
वीर्यभाव	६	६	शीलव्रतेष्वनतिचार	६	२४
वीचार	९	४४	शीतपरीषह जय	९	९
वृत्तिपरिसंख्यान	९	१९	शुभोपयोग	६	३
वृष्येष्टरसत्याग	७	७	शून्यागारवास	७	६
वेदनीय कर्म	८	४	शैक्ष्य	९	२४
वेदनाजन्य आर्तध्यान	९	३२	शोक	६	११
वैक्रियिक शरीर	२	३६	शोक	८	९
वैमानिक	४	१६	शौच	६	१२
वैयावृत्यकरण	६	४२	श्रुत	१	९
वैयावृत्य	९	२०	श्रुतका अवर्णवाद	६	१३
वैनयिक मिथ्यात्व	८	१			

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्द	अध्याय	सूत्र	शब्द	अध्याय	सूत्र
श्रुतज्ञानावरण	८	६	सराग संयमादियोग	६	१२
श्रेणि	२	१५	संघका अवर्णवाद	६	१३
सम्यग्ज्ञान	१	१	संवेग	६	२४
सम्यक्चारित्र	१	१	सधर्माविसम्वाद	७	६
सम्यग्दर्शन	१	२	सत्याणुव्रत	७	२०
संवर	१	४	सल्लेखना	७	२२
सत्	१	८	सचित्ताहार	७	३५
संज्ञा	१	१३	सचित्त सम्बन्धाहार	७	३५
संग्रहनय	१३	३	सचित्त सम्मिश्राहार	७	३५
समभिरूढ नय	१	३३	सचित्त निक्षेप	७	३६
संयमासंयम	२	३३	संशय मिथ्यात्व	८	१
संसारी	२	१०	सद्वेद्य	८	८
समनस्क	२	११	सम्यङ्मिथ्यात्व	८	९
संज्ञा	२	१४	संज्वलनक्रो.मा.मा.लोभ.	८	९
सम्मूर्च्छन जन्म	२	३१	संघात	८	११
सचित्तयोनि	२	३२	संस्थान	८	११
संवृतयोनि	२	३२	समचतुरस्र संस्थान	८	११
समुद्घात	२	१६ टि	संहनन	८	११
समय	५	४४	सविपाकनिर्जरा	८	२३
सम्यक्त्व क्रिया	६	५	संवर	९	१
समादान क्रिया	३	५	समिति	९	१
सत्	५	३०	संसारानुपेक्षा	९	७
समन्तानुपात क्रिया	६	५	संवरानुपेक्षा	९	७
समरम्भ	६	८	सत्कारपुरस्कारपरीषहजय	९	९
समारम्भ	६	८	सत्कार	९	९
सहसा निक्षेपाधिकरण	६	९	संघ	९	२४
संयोग निक्षेपाधिकरण	६	९	संस्थान	९	३६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्द	अध्याय	सूत्र
संख्या	१०	९
साधन	१	७
सामानिक	४	४
साम्परायिक आस्रव	६	४
साधुसमाधि	६	२४
सामायिक	७	२१
साकार मन्त्रभेद	७	२६
साधारण शरीर	८	११
सामायिक	९	१८
साधु	९	२४
सुखानुबन्ध	७	३७
सुभग	८	११
सुस्वर	८	११
सूक्ष्म	८	११
सूक्ष्मसाम्पराय	८	१८
स्थापना	१	५
स्वामित्व	१	७
स्थिति	१	७
स्पर्शन	१	८
स्मृति	१	१३
स्थावर	२	१३
स्कन्ध	५	२५
स्पर्शन क्रिया	६	५
स्वहस्त क्रिया	६	५
स्त्रीरागकथाश्रवण त्याग	७	७
स्वशरीरसंस्कार त्याग	७	७
स्तेय—चोरी	७	१५
स्तेनप्रयोग	७	३७
स्मृत्यन्तराधान	७	३०
स्मृत्यनुपस्थान	७	३३
स्मृत्यनुपस्थान	७	३४
स्थितिबन्ध	८	३
स्त्यानगृद्धि	८	७
स्त्रीवेद	८	९
स्वरूपाचरण चारित्र	८	९
स्वाति संस्थान	८	११
स्पर्श	८	११
स्थावर नामकर्म	८	११
स्थिर	८	११
स्त्रीपरीषहजय	९	९
स्वाध्याय	९	२०
स्तेयानन्दी रौद्रध्यान	९	३५
स्नातक	९	४३
हास्य प्रत्याख्यान	७	५
हास्य	८	९
हिरण्यसुवर्णप्रमाणातिक्रम	७	२९
हिंसा	७	१३
हिंसादान	७	२१
हिंसानन्दी रौद्रध्यान	९	३५
हीनाधिकमानोन्मान	७	२७
हीयमान अवधि	१	२१
हुण्डक संस्थान	८	११

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रश्नपत्र

दानवीर माणिकचन्द दि० जैन परीक्षालय—बम्बई

मोक्षशास्त्र [समय ३ घण्टा

१—निम्नलिखित ५ सूत्रोंका स्पष्ट अर्थ लिखिये। २०

१ तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम्।

२ ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः ॥

३ तदभावाव्ययं नित्यम्।

४ तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य ॥

५ तदविरतदेशविरतप्रमत्तसंयतानाम्।

६ तदनन्तरमूर्ध्वं गच्छत्यालोकान्तात् ॥

२—निम्नलिखितमेंसे १० शब्दोंकी परिभाषा समझाकर लिखिये— २०

अभिनिबोध, अनिःसृत, आहारक शरीर, आभियोग, आस्रादन, अपायावद्यदर्शनम्, अपरिगृहीतेत्वरिका गमन, अप्रत्याख्यानावरण, अदर्शन, आम्नाय, अपायविचय।

३—४, ७, ११, १३ वें स्वर्गोंमें रहनेवाले देवोंकी जघन्योत्कृष्ट स्थिति लिखकर, तुम्हारे भाव जन्म शरीर, संस्थान व संहनन, कितने२ कौन कौन होते हैं स्पष्ट समझाकर लिखिये। २०

४—किन्हीं ५ के उत्तर समझाकर लिखिये २०

१ अनाहारकका लक्षण लिख, जीव अनाहारक कबतक क्यों रहता है लिखें।

२ देवोंमें प्रवीचार कहांतक कैसे२ सम्भव है? व कहां तक सम्भव नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३ रौद्रध्यानका लक्षण लिख, इसके स्वामी कौन२ हैं ?
४ परीषहका लक्षण लिख, परीषह क्यों सहन की जाती हैं लिखिये ।
५ साधुओंके भेदोंमें कुशील साधु मिथ्या हैं या सांचे ।
६ मुक्त जीवोंके ऊर्ध्वगमनके कितने कारण हैं उदाहरण सहित लिखें ।

५—सप्तनयोंपर या सम्यग्ज्ञान पर दो पृष्ठों पर एक लेख लिखिये । २०

अथवा

जहां तुम रहते हो उस लोकका नक्शा खींचकर स्वर्गनरक बनाकर—प्रथम नरकके कितने भाग होते हैं और उनमें कौन कौन रहते हैं स्पष्ट लिखें ।

प्रश्नपत्र

भा० दि० जैन महासभा परीक्षाबोर्ड

मोक्षशास्त्र पूर्ण

समयो होरात्रयम्] प्रवेशिका तृतीय खण्ड [पूर्णाङ्क १००

प्रश्न १ किन्हीं ८ शब्दोंकी परिभाषा लिखिये । २०
संज्ञा, संग्रहनय, संयमासंयम, सम्मूर्च्छनजन्म, संघात, साकारमंत्रभेद, संहनन, संस्थानविचय, सूक्ष्म साम्पराय चारित्र, सूक्ष्म क्रियाप्रतिपाति ध्यान ।

प्रश्न २. किन्हीं ५ सूत्रोंका अर्थ करो । २०
(च) परतः परतः पूर्वापूर्वानन्तरा ।
(छ) भेद संघातेभ्य उत्पद्यन्ते ।
(ज) परात्मनिन्दा प्रशंसे सदसद् गुणोच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(झ) हिंसादिष्विहामुत्रापायावद्य दर्शनम्।
(ञ) विपरीतं मनोज्ञस्य।
(ट) वीचारोऽर्थ व्यञ्जनयोग संक्रांतिः।
(ठ) एकाश्रये सवितर्के वीचारे पूर्वे।

प्रश्न ३. घातियां कर्मोंकी, तथा ३-६-१०-१४ वें स्वर्गोंमें रहनेवाले देवोंकी जघन्योत्कृष्ट स्थिति लिखकर वैमानिक देवोंमें हीनाधिकताके कारण ससूत्र लिखो। २०

प्रश्न ४. अचौर्याणुव्रतकी भावनाएं व अनर्थदण्डव्रतके अतिचार लिखकर, परमाणुओंमें बन्ध होनेके कौन२ कारण हैं सप्रमाण लिखिये। २०

प्रश्न ५. किसी एक विषय पर दो पेजपर निबंध लिखिये। सात तत्व अथवा सम्यक्चारित्र। २०

अथवा

जैन सिद्धान्त प्रवेशिका

प्रश्न १. मंगलाचरणका अर्थ लिखकर, द्वीन्द्रिय व असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवके कितने२ व कौन कौन शरीर, पर्याप्ति व प्राण होते हैं लिखो। २०

प्रश्न २. कर्म किसे कहते हैं, वे कितने कौन२ हैं, उन सबकी जघन्योत्कृष्ट स्थिति लिखकर सागर व अद्धापल्यकी परिभाषा समझाओ। २०

प्रश्न ३. किन्हीं ८ शब्दोंके स्वरूप लिखिये। २०
अनात्मभूत लक्षण, आगम प्रमाण, अस्तित्वगुण, अन्योन्याभाव, अबाध अर्धनाराच संहनन, अपकर्षण, अविरति, आभ्यन्तर निर्वृति, अप्रतिष्ठित प्रत्येक।

प्रश्न ४. निम्नलिखित प्रश्नोंके उत्तर दीजिये। २०
(१) तीर्थंकर पदवी धारी पुरुष कहां२ जन्म लेते हैं।
(२) अस्तिकाय कौन कौनसी द्रव्यें हैं व क्यों हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३) आकाशमें गमन करना, रेलगाड़ीमें बैठना, कमरेमें स्थान मिलना, इनमें किन किन द्रव्योंकी सहायता मिलती है, स्पष्ट लिखो।

(४) निर्वृत्यपर्याप्तक व लब्ध्यपर्याप्तक जीव कब क्यों होते हैं? उदाहरण देकर लिखो।

(५) कल्पातीत किसके भेद हैं। खुलासा लिखो।

प्रश्न ५. किसी एक विषयपर दो पेजमें एक लेख लिखो।
(१) हेत्वाभास (२) सप्तनय। २०

प्रश्नपत्र

श्री भा० दि० जैन महासभा परीक्षाबोर्ड

समय ३ घण्टे] मोक्षशास्त्र (पूर्वार्द्ध) [पूर्णांक १००

सूचना—छः प्रश्नोंमेंसे कोई पांच प्रश्न हल कीजिये, सबके अंक समान हैं।

१. संसारसे मुक्ति किस प्रकार हो सकती है? जीवका स्वतत्व क्या है? नाम गिनाकर स्वरूप बताइये। गर्भ समूर्च्छन और उपपाद जन्म किन प्राणियोंके होते हैं। एक गतिसे दूसरी गतिमें कौन ले जाता है। कुल भूमियां कितनी हैं और वे किनके आश्रित हैं।

२. प्रमाण, नैगमनय, स्पर्शन, लेश्या, उपयोग, वर्तना, द्रव्य, गुण, तत्व और मोक्ष इनसे आप क्या समझते हैं।

३. निम्नांकितोंमें अन्तर बताईये—
नय-निक्षेप, मति-कुमति, द्रव्येन्द्रिय-भावेन्द्रिय, मतिज्ञान-श्रुतज्ञान, चिन्ता-अभिनिबोध, संशय-ईहा, लब्धि-उपयोग।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४. आधुनिक युगमें दुःखोंका कारण बताकर विश्वशांति धर्मके द्वारा किस प्रकार हो सकती है, इस पर निबन्धके रूपमें प्रकाश डालिये।

५. पुद्गलके उपकार और प्रदेश संख्या बताकर लौकांतिक देव कहां रहते हैं और उनकी विशेषता क्या है; लिखिये। तैजस शरीर और कार्मण शरीर किसे कहते हैं, वे किनके होते हैं।

६. पांचवें नरक और आठवें स्वर्गमें कितनी जघन्योत्कृष्ट आयु है। तीसरे क्षेत्र, पर्वत और तालाबका नाम तथा वहां रहनेवाली देवी और वहांसे निकलनेवाली नदियोंके नाम बताइये।

प्रश्नपत्र

समय ३ घण्टे] मोक्षशास्त्र (उत्तरार्ध) [पूर्णांक १००

नोट—निम्नांकितोंमेंसे कोई भी पांच प्रश्न कीजिये। सभी प्रश्नोंके अंक समान हैं।

१. जबकि सम्यग्दर्शन मोक्षका मार्ग है, तब उसे देव आयुका कारण क्यों कहा? सोलहकारण भावनाओंके नाम लिखकर समझाइये कि मिथ्यादृष्टि जीव विनयसम्पन्नता आदि पन्द्रह भावनाओंका पालन कर तीर्थंकर प्रकृतिका आश्रय कर सकता है? कारण सहित लिखिये।

२. हिंसादि पंच पापोंकी व अहिंसा आदि पांच अणुव्रतोंकी व्याख्या कीजिये। अणुव्रतोंके सहायक सात शीलके नाम लिखकर समझाइये कि वे अणुव्रतोंके पालनमें किस प्रकार सहायक हैं?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३. दानका लक्षण पाठ्य पुस्तकमें आये सूत्र द्वारा स्पष्ट कीजिये व समझाईये कि उस दानमें किन किन बातोंकी विशेषतासे विशेषता आती है।

४. पुण्य और पापकी व्याख्या कर बताईये कि पुण्य प्रकृतियां एवं पाप प्रकृतियां कितनी व कौन कौनसी हैं? सामायिक व स्वाध्याय पर तुलनात्मक विवेचन कर स्वाध्यायकी उपयोगिता वर्तमानमें क्यों अधिक मानी जाती है, सयुक्तिक विवेचन कीजिए।

५. निम्नांकितोंमें किसी एक पर निबन्ध रचना कीजिये :— (१) मोक्षशास्त्रकी जीवनमें उपयोगिता (२) जैनधर्मकी विशेषता (३) भौतिक विज्ञान और आत्मज्ञान।

६. निम्नांकितोंमें अन्तर प्रदर्शित कीजिए:— मोक्षमार्ग–मोक्ष, भव्य–अभव्य, सम्यक्त्व–मिथ्यात्व, तत्व-द्रव्य, कल्पोपपन्न–कल्पातीत, नय–निक्षेप।

प्रश्नपत्र—

अ० भा० जैन परिषद् परीक्षा बोर्ड

समय ३ घण्टे] मोक्षशास्त्र पूर्वार्द्ध [पूर्णांक १००

परीक्षक—डा. राजकुमार जैन. एम. ए., पी. एच. डी.

नोट—कोईसे पांच प्रश्न कीजिए।

१—ग्रन्थकारका नाम लिखकर उसका जीवन परिचय दीजिए।

२—जम्बूद्वीपका चित्र खींचकर उसमें समस्त क्षेत्रोंको अङ्कित कीजिए।

३—मोक्षमार्गके स्वरूपकी व्याख्या कीजिए।

४—प्रमाण और नयसे क्या समझते हो? इनकी स्पष्ट व्याख्या कीजिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५—'तत्त्वार्थश्रद्धानम् सम्यग्दर्शनम्'' का अर्थ स्पष्ट कीजिये तथा सम्यग्दर्शनके महत्त्व पर प्रकाश डालिये।

६—आ० कुन्दकुन्द अथवा चामुण्डरायका जीवन परिचय दीजिए।

७—देव कितने प्रकारके होते हैं? लौकान्तिक देवोंमें अन्य देवोंकी अपेक्षा क्या विशेषताएँ हैं?

८—द्रव्यका अर्थ लिखकर उसके भेद-प्रभेदोंका वर्णन कीजिए तथा यह भी बतलाइये कि स्निग्ध और रूक्ष परमाणुओंकी बन्धकी प्रक्रियाका क्या स्वरूप है?

❀ ❀ ❀

समय ३ घण्टे] मोक्षशास्त्र पूर्ण [पूर्णांक १००

परीक्षक डॉ० राजकुमार जैन, एम० ए०, पी-एच० डी०

नोट—कोईसे पांच प्रश्न कीजिए।

१—सातों तत्त्वोंके नाम लिखकर उनकी परिभाषा लिखिए।

२—कर्म किसे कहते हैं? इनके नाम लिखो तथा यह भी बताओ कि ज्ञानावरणी और अन्तराय कर्मके बन्धके क्या कारण हैं?

३—देवगति, मनुष्यगति तथा तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धके कारण लिखो।

४—समिति किसे कहते हैं? समितिके भेद लिखकर यह बतलाईये कि दैनिक जीवनमें उनका क्या महत्व है?

५—व्रतोंके नाम लिखकर ब्रह्मचर्य व्रतपर प्रकाश डालिए।

६—सम्यक्चारित्रसे क्या समझते हो? समझाकर लिखिए।

७—निम्नलिखितमेंसे किसी एकपर निबन्ध लिखिये।

(अ) सम्यग्दर्शनका महत्त्व।

(ब) आत्मविकासकी दृष्टिसे मोक्षशास्त्रका मूल्याङ्कन,

(स) जैन धर्मकी विशेषताएँ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कृपया इस ग्रन्थको निम्नांकित तिथि पर या उसके पूर्व लौटा दें। विलम्बसे लौटानेपर ५ पैसे प्रतिदिन दण्ड देना होगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi